जय यौधेय

[एक ऐतिहासिक उपन्यास]

राहुल सांकृत्यायन

कि ता ब म ह ल

इलाहाबाद

प्राक्कथन

"जय यौधेय" ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें ई० सन्० ३५०–४०० (गुप्त संवत् ३०–८०) के भारतकी राजनीतिक, सामाजिक अवस्थाका चित्रण किया गया है। यौधेय एक बहुत ही बलशाली गण-राज्य था, जो यमुना-सतलज तथा चम्बल-हिमालयके बीचमें अवस्थित था। इतिहास और हमारे पुराने लेखकोंने इसके बारेमें बड़ा ही क्रूर मौन धारण किया है। वस्तुतः यदि उनकी चली होती तो यौधेय नाम भी हम तक न पहुँचने पाता। लेकिन सिक्कोंको क्या किया जाय, जो कि अनजाने ही धरतीके नीचे दब गये थे। और उन्होंने चिल्ला-चिल्लाकर साक्ष्य देना शुरू किया—लाशने खुद अपराधका भण्डाफोड़ किया। विस्मृत यौधेय फिर हमारे सामने प्रकट हो गये। और अब तो हिन्दू-विश्व-विद्यालयके प्रोफ़ेसर तथा भारतीय इतिहासके गंभीर गवेषक डाक्टर अलतेकर जैसे विद्वान् साफ़ शब्दोंमें कहने लगे हैं, कि भारतसे विदेशी कुषाणोंके शासनको खतम करनेका श्रेय गुप्तवंश, भारशिव-वंशको नहीं बल्कि यौधेयोंको हैं।

चौथी सदीमें अपने अभिलेखमें अशोकके पाषाण-स्तंभ (पहिले कौशांबीमें किन्तु अब इलाहाबादके क़िलेमें) पर समुद्रगुप्तने यौधेयोंका नाम स्मरण करते हुए कहा है कि उन्होंने कर-दान-आज्ञा स्वीकार और प्रणाम ("सर्वकरदानाज्ञाकरणप्रणामागमन") द्वारा मुझे परितुष्ट किया। समुद्रगुप्तके लेखसे मालूम होता है कि उसने यौधेय-गणका उच्छेद नहीं किया। लेकिन पाँचवीं सदीके आरंभसे फिर हम यौधेय-गणका नाम नहीं सुनते, इसलिए साफ़ है कि यौधेयोंका ध्वंस चंद्रगुप्त विक्रमादित्यने किया।

मैंने अपने उपन्यासमें उसी गौरवशाली यौधेय गण और उसकी ध्वंस-लीलाको चित्रित किया है। यहाँ राजाओं, राजकुमारों तथा दूसरे गुप्तवंशी अधिकारियोंके नाम देनेमें ऐतिहासिक सामग्रीका उपयोग किया है। यौधेयोंका

जातिके तौरपर नाम विस्मृत हो चुका था, तो उनके व्यक्तियोंके नामोंकी मिलनेकी आशा कहाँसे हो सकती है। समाजके चित्रणमें मैंने कालिदासके ग्रन्थों और उसी समय यात्रा करनेवाले चीनी भिक्षु फ़ाहियानको यात्रा-विवरण-का उपयोग किया है। डाक्टर अलतेकर, प्रोफ़ेसर राखालदास बनर्जी (The Age of the Imperial Guptas), और डाक्टर आर० एन० डंडेकर (A History of the Guptas)के ग्रंथों, गुप्तकालीन शिला-लेखों और सिक्कोंसे मैंने इस ग्रंथमें बहुत सहायता ली है।

यौधेयोंके सिक्के ईसापूर्व दूसरी सदीसे ई० चौथी सदी तक मिलते हैं। कुषाणों (ई० प्रथम शताब्दी)से पहिलेके सिक्कोंपर लिखा है—"यौधेयानां बहुधान्यकानां" या "भगवस्वामी ब्रह्मण्यदेवाय।" बादके सिक्कोंमें "यौधेय गणस्य जयः" या "यौधेयानां जयमंत्रशालिनां" रहता है। १५० ई०के अपने लेख (जूनागढ़)में महाक्षत्रप रुद्रदामाने शत्रुकी वीरताको स्वीकार करते हुए लिखा है—"सर्वक्षत्राविष्कृतवीरशब्द जा (तो) त्सेकानां यौधेयानां"। भरत-पुर राज्यके बयाना (तहसील)से दो मीलपर यौधेय-गणके एक महासेना-पतिका लेख खुदा हुआ है—"सिद्धं (।) यौधेय-गणपुरस्कृतस्य महाराज महासेनापतेः पु··ब्राह्मणपुरोगं चाधिष्ठानं शरीरादिकुशलं पृष्ट्वा लिखत्य-स्तिरस्मा···" (J. F. Fleet Inscriptions of the Early Gupta Kings).

प्रश्न होता है, ये वीर यौधेय क्या बिल्कुल उच्छिन्न हो गये? उस युद्धमें भारी संख्यामें वह मारे गये होंगे (जैसे कि उसी बातको उनके वंशज मेवोंपर तुगलकोंने दुहराया, मगर यौधेय कुछ बच भी गये। भावलपुर रियासतसे मुल्तान तक फैला एक इलाका जोहियावार कहा जाता, और बहुसंख्यक निवासी जोहिया (यौधेय) कहे जाते हैं। कराचीके कोहिस्तानमें जोहिया रहते हैं, बल्कि उनके सर्दारको जोहिया जो-जाम कहा जाता है। अलवर और गुडगाँवके मेव अब भी यौधेय-भूमिमें ही बसते हैं, और उनकी वीर-गाथायें सुनकर आज भी रोमांच हो उठता है। ये मुसलमान हैं, मगर यौधेय-रक्तको भूले नहीं। अब

उनकी स्त्रियाँ वह गीत गाती हैं, जिसमें नारीको कूप-पूजा करानेकेलिए मेव वीरोंके प्राणोत्सर्गका हृदय-द्रावक वर्णन है।

इनके अतिरिक्त अग्रवाल, अग्रहरी, रोहतगी, रस्तोगी, श्रीमाल, ओसवाल, वर्णवाल, गहोई (?) जैसी आजकल वैश्य मानी जानेवाली जातियाँ भी यौधेयोंकी ही सन्तान हैं, जो गणोच्छेदके बाद तलवार छोड़ तराज़ू पकड़नेपर मजबूर हुईं।

यद्यपि इस उपन्यासके शरीरमें ऐतिहासिक सामग्रीने अस्थिपंजरका काम किया है, किन्तु मांस मैंने अपनी कल्पनासे पूरा किया है।

प्रयाग
१६–८–४४

राहुल सांकृत्यायन

सूची

जय यौधेय

(१)

समुद्रगुप्त और यौधेय

मेरी सबसे पुरानी स्मृति उस समय तक जाती है, जबकि मैं चार-साढ़े चार वर्षका था। लेकिन जिस उद्देश्यसे मैं अपनी जीवनीको लिखकर छोड़ रहा हूँ, उसके लिए यह ज़रूरी है, कि मैं इसे अपने जन्मसे तीन साल पहिलेकी घटनाओंसे शुरू करूँ। खासकर उससे पचास साल बाद जो बातें होती देखी हैं, उनसे मुझे संदेह हो गया है, कि आगे आनेवाली पीढ़ियाँ शायद यौधेय नामको भी भूल जायँ और फिर जिस गण-स्वतंत्रताके लिए लाखों नर-नारियोंने हँसते-हँसते मृत्युका आलिंगन किया, उसका भी उन्हें न पता रहे। देवपुत्र शाही (कुषाण)का कमर तोड़नेवाले हम थे, लेकिन उसका श्रेय आज गुप्त-वंश लेना चाहता है। ढाई सौ बरस पहले महाक्षत्रप रुद्रदामाके दाँत हमने ऐसे खट्टे किए, कि उसने फिर कभी हमारी ओर घूम कर ताकनेकी हिम्मत न की। और उसके बाद तो उज्जयिनीके क्षत्रप, नहीं हम इसके निश्चय करने वाले थे, कि क्षत्रप-सीमाको कहाँ तक रहने देना चाहिए। शक क्षत्रपोंको निर्बल करनेमें यौधेयोंका बड़ा हाथ था, लेकिन उसके लिये भी कालिदास और दूसरे गुप्तोंको यशका भागी बनानेकी कोशिश कर रहे हैं।

मेरे जन्मसे तीन साल पहिलेकी बात है। समुद्रगुप्त—जिसने परम भट्टारक महाराजाधिराजके नामसे अपना ढिंढोरा पिटवाया—ने अपनी तीसरी विजय-यात्रा पच्छिमकी ओर की। अहिच्छत्रके अच्युत और मथुराके नाग-सेन एक बार समुद्रगुप्तके चरणोंमें अपने मुकुटको रख चुके थे, किन्तु जब वह कांचीकी ओर दिग्विजय करने गया था, उस वक्त फिर इन्होंने सिर उठाया। समुद्रगुप्त दक्खिनसे लौट कर अच्युतके ऊपर चढ़ दौड़ा, नागसेन और

कुछ दूसरे राजाओंने मदद की, मगर समुद्रगुप्तकी सेना और उसके सैनिक-कौशलके सामने वह टिक न सके। मथुरामें पहुँच कर समुद्रगुप्त यौधेयोंकी भूमि, उनकी घड़े-घड़े भर दूध देने वाली गायों और उनकी कनक-प्रसविनी खेतों, उनके सुख-समृद्धि-संपन्न गाँवों और नगरोंकी बातें सुनकर मुँहमें पानी लाये बिना नहीं रह सका। लेकिन साथ ही उसने यह भी सुना कि यौधेय अ-राजक राज्य है, वहाँ राज-काजकी, संधि-विग्रहकी हरेक बातमें सारा यौधेय जन भाग लेता। उसके ऊपर यौधेयोंने देवपुत्र (कुषाण) और महाक्षत्रपसे मुक़ाबिला करनेके लिए कुणिन्दों और आर्जुनायनोंको मिला कर एक गण-संघ स्थापित कर लिया है, जिसमें बहुत-सी बातोंमें तीनों बिल्कुल स्वतन्त्र हैं। समुद्रगुप्त ने समझा, कि ऐसे लोग एकच्छत्रके नीचे संगठित मगधराजकी महती सेनाकी फूँकसे उड़ जायँगे। लेकिन, समुद्रगुप्तने पीछे स्वीकार किया, कि यौधेयों जैसा दुर्दम शत्रु उसे अपनी तीनों विजय-यात्राओंमें नहीं मिला। यौधेयोंको अपनी जन्म-भूमिसे अत्यन्त प्रेम है, उन्हें अपनी गण-स्वतंत्रता प्राणोंसे भी प्यारी है, जवान ही नहीं बच्चे, बूढ़े और औरतों तकने खड्ग उठाया। एक समय सारी यौधेय जनता शत्रुसे भिड़नेके लिए तैयार हो गई। मरना या स्वतंत्र रहना बस यही सबका दृढ़ संकल्प था। मगध, लिच्छवि, काशी, कोसल, वत्स, पंचाल, अन्तर्वेदी तथा दूसरे देशोंके सामन्त अपने सैनिकोंके साथ परमभट्टारककी आज्ञासे आगमें पतंगेकी तरह कूदकर झुलस रहे थे। यौधेय भी मर रहे थे, लड़ाई उनकी भूमिमें पहुँच गई थी और धर्मके ठीकेदार गुप्तोंके सैनिक यौधेय ग्रामोंमें आग लगा रहे थे, तैयार खेती को जला रहे थे, और उनके सामने बच्चा-बूढ़ा जो भी मिलता, उसे वह बुरी तरह मारे बिना नहीं रहते थे। उन्होंने समझा था कि यौधेय इस तरह डर कर घुटने टेक देंगे, मगर यौधेय तो अपने सरसे क़फ़न बाँध चुके थे। उस वक्त तो समुद्रगुप्तको भी हमारे लोग बुरा-भला कह रहे थे, और उन्होंने न जाने क्या-क्या उपाधियाँ उसे दे डाली थीं, लेकिन चंद्रगुप्तने जो पीछे किया, उसे देखनेसे मालूम होता है, कि समुद्रगुप्त वीर था, साथ ही उसमें बहुत उदारता थी। उसे जैसे ही मालूम हुआ कि उसके सैनिकों ने बच्चों बूढ़ों पर हाथ छोड़ा है, घर और खेतीको जलाया है, तो इसके

लिए उसने दिलसे अफ़सोस किया। सिर्फ़ अपने बलाधिकृत (सेनापति) और संधि-विग्रहिक (युद्ध-मन्त्री)को फटकारा ही नहीं, बल्कि उसने सीधे अपने हाथसे यौधेयोंके नाम पत्र लिखा। अपने सैनिकोंके किए इन अत्याचारोंके लिए यौधेयोंसे क्षमा माँगी और कहा—लिच्छवि दौहित्र यौधेयोंका उच्छेद नहीं चाहता। देवपुत्रों और उनके पारसीक स्वामियों (सासानियों)के चंगुलसे भारतभूमिको बचानेके लिए यौधेयोंने जो काम किया, लिच्छवि दौहित्र उसे बड़ी श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखता है। यौधेयोंकी इस बहादुरीको देखकर उसे अपनी अज्जुका (माँ) कुमारदेवी का लिच्छवि-वंश याद आता है। लिच्छवि भी बहादुर क्षत्रिय हैं, उनकी वीरता सहस्र वर्षसे इतिहासमें प्रसिद्ध है। लेकिन उन्होंने आज समझा है, कि मिनान्दर और कनिष्क जैसोंके हाथमें जानेसे भारतभूमिको तभी बचाया जा सकता है, जब कि भारतके सभी राजा और गण अपनी सैनिक-शक्तिको, अपनी वीर-परम्पराको एक सूत्रमें बद्ध कर दें। लिच्छवि दौहित्र सिर्फ़ वही सूत्र बनना चाहता है, वह यौधेयोंकी एक अंगुल भूमिका अप-हरण नहीं करना चाहता। वह सिर्फ़ इतना ही चाहता है, कि विदेशी म्लेच्छों का भारतभूमिसे नाम तक मिटा देनेके लिए यौधेय खड्ग भी उस बड़े सूत्रमें बँध जाय। युद्धकी क्रूरता, और फिर वह ऐसे गणके साथ जिसे मैं अपने मातुल-कुलके सम्मान समझता हूँ ! मैं एक क्षणके लिए भी इस बंधु-घाती युद्धको जारी रखनेके लिए तैयार नहीं हूँ, यदि यौधेय बंधु हमारे साथ मिलकर विदेशियोंसे लोहा लेनेके लिए तैयार हो। मैंने अपने सेनापतियोंको सात दिनके लिए युद्ध बन्द करनेका आदेश दे दिया है और इस बीचमें मैं चाहता हूँ कि यौधेय बंधु स्वयं मिलकर लिच्छवि-दौहित्रके हृदयको जानें।

यौधेय युद्धमें अपार हानि देख कर कुछ सोचनेके लिए मजबूर थे, इस पर समुद्रगुप्तके पत्रमें इतने उदार भाव, अतएव उन्हें यौधेयगणके पुरस्कृत (गण-सभापति) मेरे पिता महाराज महासेनापति कुमार यौधेय, आर्जुनायन गणके पुरस्कृत नर वर्मा, कुणिन्दगणके पुरस्कृत रोहित और तीनोंके गण-संघके पुरस्कृत सुषेण यौधेयके समुद्रगुप्तके साथ बातचीत

ोके लिए मथुरा भेजा। समुद्रगुप्तने उनका जिस तरह स्वागत किया,
तरह उनके सामने अपने दिलको खोल कर रक्खा, और जिस तरह
शो शत्रुसे मुक़ाबिला करनेके लिए थोड़ेसे दीनारोंको सम्मिलित युद्ध-
में देनेके लिए कहा, उसे गण-पुरस्कृतोंने अनुचित नहीं समझा।
ोंने लौटकर सारी बातें गण-संस्थाके सामने रखीं और तीनों गणोंने
स्वीकार किया। यद्यपि गण-सघके पुरस्कृत महाराज महासेनापति सुषेण
य पदमें सबसे बड़े थे, किन्तु बातचीतमें मालूम हुआ कि सबसे तेज़
समझदार दिमाग़ कुमारका है, इसीलिए समुद्रगुप्त कुमार यौधेयकी
विशेष तौरसे आकृष्ट हुआ। संधि हो गई। समुद्रगुप्तने यौधेय नगरी
दका (अग्रोहा)में आकर यौधेयोंके साथ बंधुत्व प्रदर्शन करनेकी
ा प्रकट की। एक दिन वह कुछ थोड़ेसे प्रतिहारों (शरीर-रक्षकों) और
त्तोंके साथ अग्रोदका आया। संस्थागारमें युद्धकी क्रूरता और यौधेयों
हुए अत्याचारके लिए पश्चात्ताप करते उसका गला रुंध गया, उसकी
ोंसे छल-छल आँसू गिरने लगे और भर्राई आवाज़में वह यह कह कर
न बोल सका—"मेरी वजहसे यह सब हुआ, मेरा सिर हाज़िर है,
जो चाहें लिच्छवि-दौहित्रको दण्ड दें।" यौधेयोंकी आँखें वैसे ही
हो चुकी थीं, उनका दिल पिघल गया था, और जब उसने महासेना-
कुमार यौधेयके चरणोंकी ओर अपने हाथोंको बढ़ाया, तो उन्होंने
अपनी छातीसे लगा लिया। फिर गण-संस्थाके सभी सदस्योंसे वह
मिला। जंगलकी आगकी तरह यह खबर सारी यौधेय-भूमिमें फैल गई।
सारी शत्रुताको भूल गए और घर-घर समुद्रगुप्तकी प्रशंसा होने लगी,
ही दिनों बाद जब महादेवी (पट्टरानी) बनाते मेरी बहिन दत्तासे उसने
ग्रहण किया, तो यौधेयोंके आनन्दका ठिकाना न रहा; वह उसे अपना
नीय समझने लगे।

× × ×

मेरी बहिन दत्ताका प्रथम पुत्र रामगुप्त पाटलिपुत्रमें पैदा हुआ। जब
दूसरी बार आसन्न-प्रसवा हुई, तो उसने पतिसे मातृ-कुलमें जानेकी
ा प्रकट की। अग्रोदकामें दत्ताने अपने दूसरे पुत्र चन्द्रगुप्तको जन्म

दिया। उसके तीन ही महीने बाद मैं इस दुनियामें आया। बहिन अब भी अग्रोदकामें रही और पतिके बार-बार पत्रोंके आने पर एक वर्ष बाद राजधानीको लौटी। मेरे ऊपर बहिनका चन्द्रसे भी अधिक स्नेह था। यद्यपि दूध पिलानेके लिए धाइयाँ थीं, किन्तु बहिन चन्द्रको यह कह कर अपना दूध पिलाती थी—"यौधेयोंका दूध दूसरा ही है।" बहिन अक्सर हम दोनों को अपनी गोदमें रखती, और कितनी ही बार उसने बड़े प्रेमसे मुझे भी अपने स्तनोंको पिलाया। दत्ता मेरी बड़ी बहिन थी और क्षीर-पायिनी माँ भी। उसका स्नेह मैं कभी नहीं भूल सकता। चलते वक्त उसने साथले जाने के लिए मुझे माँसे माँगा, लेकिन माँके लिए बहुत मुश्किल था—मैं माताका अकेला पुत्र और सो भी बहुत देरसे पैदा हुआ था, तो भी वह अपनी बड़ी बेटीकी बातको टाल नहीं सकती थी। उसने साल भर बाद भेजनेका वचन दिया। लेकिन अफ़सोस, माँ सालका अंत देखने नहीं पाई। बहनने सुना, तो वह दौड़ी-दौड़ी अग्रोदका आई और मुझे अपने साथ पाटलिपुत्र ले गई। मैंने अपनी माँको उस वक्त देखा था, जब कि मैं बिल्कुल अबोध था। लेकिन दूसरे कहते थे, कि दत्ताका चेहरा बिल्कुल माँ जयसेना-जैसा है। जब मैं अपनी बहिनके चेहरेको देखता, तो मुझे माँ याद आ जाती। उसका स्वभाव अत्यन्त मधुर था। समुद्रगुप्तकी महादेवी होने पर भी उसे अभिमान छू नहीं गया था, दासियों और चेटियों तकके ऊपर भी उसे कभी खींझते या रोब दिखलाते नहीं देखा गया। समुद्रगुप्तकी मृत्युसे दो साल पहिले (३७२ ई०) जब वह मरी; तो सारा परिजन, सारे नगरकी नारियाँ, हफ़्तों आँसू बहाती रहीं। मैं उस समय सिंहलमें था, इसलिए ख़बर देरसे पहुँची। उस वक्त महीनों मेरा चित्त विह्वल हो जाता था। मैं अनुराधपुरके महाविहारसे किसी बहाने चैत्यगिरि (मिहिन्तले) चला गया, और वहाँ महीनों मेरे आँसू बन्द न होते थे।

(२)

बचपन

जब मैंने होश सँभाला, तो चन्द्रको अपना अभिन्न अंग-सा देखा। हम दोनों जमुए भाईकी तरह थे। चन्द्र बहुत उद्दण्ड था, और अक्सर पीठ

पीछे लड़के उसे चण्ड कहा करते थे, लेकिन चन्द्र मेरे लिए कभी चण्ड नहीं दिखलाई पड़ा। वह चेटियों, अन्तःपुरकी दूसरी रानियों पर कठोर शासन करता था—बचपनमें भी कोई उसकी आज्ञाका उल्लंघन करनेकी हिम्मत नहीं रखता था। अज्जुकाका वह छोटा और लाड़ला बेटा था, इसके कारण भी वह अधिक हठीला हो गया था। ज़रा भी इच्छाके विरुद्ध कोई बात होती, तो वह चारों ओर तोड़-फोड़ मचा देता और फिर जाकर प्रमदवनके क्रीडा-पर्वत पर मूर्त्ति बन बैठ जाता। उस वक्त अज्जुका मेरा मुख चूम छाती से लगा कर कहती—"वत्स! जा तू ही चण्डको मना सकता है।" सचमुच, मुझे बचपनकी एक भी घटना याद नहीं है, जब कि मैं 'भैया-भैया' कहते चन्द्रके पास गया हूँ, और वह मुस्कुरा कर मुझसे लिपट न गया हो। अवस्थाके अनुसार चन्द्रमें परिवर्त्तन हुआ, बल्कि कहना चाहिए, चन्द्रका स्वभाव तो वही रहा, मगर उसने अपने ऊपर अंकुश रखनेमें अधिक और अधिक सफलता पाई। समुद्रगुप्तका भी मेरे ऊपर स्नेह था, मगर मैं उसके पास अभिन्नता अनुभव नहीं करता था। सम्भव है, उसके पास राज-काज के झंझटों और हज़ारों रानियोंके पास हाज़िरी देनेके बाद समय नहीं रह जाता था, कि वह हमसे दिल खोल कर मिलता, घण्टों हमारे साथ खेलता। जो समय मिलता भी था वह रामके लिए होता—आखिर वही तो युवराज भट्टारक था। रामका स्वभाव बहुत मधुर था—चन्द्रसे बिल्कुल उल्टा। इसीलिए परिजनके लोग उससे अनुचित लाभ उठाते थे। बचपनमें सभी बच्चों-की तरह हमें भी कहानियोंके सुननेका अधिक शौक़ था और हर देशकी कहानियाँ सुननेका हमें सुभीता भी था। परम भट्टारककी धनुर्ग्राहिणी यवनी आथेकी वृद्धा माँ कुलूपा बड़ी रोचक कहानियाँ सुनाती थीं। उसका कर्पूर-श्वेत मुख वैसे ही केशोंसे ढँका था। सत्तर सालकी हो जाने पर भी उसके चेहरे पर कहीं सिकुड़न नहीं थी। वह हमारी सबसे प्रिय परिचारिका थी। अज्जुका भी उसका बड़ा सम्मान करती थी। यद्यपि उसे हमारे देशमें रहते पच्चीस साल हो गए थे, मगर अब भी वह मगधकी भाषा शुद्ध नहीं बोल सकती थी। हल को अल और सुह (शुभ) को सुअ बोलती थी—"ह"का तो उच्चारण ही नहीं कर सकती थी। हम उससे लम्बी-लम्बी कहानियाँ सुनते थे,

इसलिए हमें "अ"के समझनेमें सजग रहना पड़ता था। कुलूपाकी देवों और राक्षसोंकी कहानियाँ बड़ी मीठी लगती थीं। लेकिन साथ ही रातको आँख खोलना भी मुश्किल जान पड़ता था। रामकी तो हालत और भी बुरी होती, वह तो दिनमें भी अकेले तहखाने (चहबच्चे में दोपहरकी गर्मीसे बचने के लिए जानेकी हिम्मत नहीं करता था। मुझे थोड़ा-थोड़ा तो भय लगता था, मगर चन्द्रके लिए तो वह केवल मनोरंजनकी चीज़ें थीं, भूत-बैताल, पिशाच-पिशाचिनी किसीका उसे रत्ती भर भी भय नहीं था। ख़ास कर राम को डरानेके लिए तो वह मौक़ा ही खोजा करता था। एक दिन अन्तःपुरके उपवनमें वसंतोत्सवके समय कामदेवकी पूजा करने बहुत-सी रानियाँ जमा हुई थीं। हम भी चर्चरी सुनने और सुराके गण्डूष फेंकने तथा नूपुरबद्ध चरणके ताड़नमें कैसे अशोक फूल उठता है, इसे देखने गये थे। चन्द्रने पहिले ही मुझसे कह दिया था, कि यह सब झूठा है, लेकिन हमारे लिए तो वह एक अच्छा तमाशा था। अँधेरा हो गया था, जबकि काम-पूजा समाप्त हुई। गण्डूष फेंकना (कुल्ला) और चरण-ताड़ना भी खतम हो गया। मैं बराबर अशोककी कुंचित पत्तियोंकी ओर टकटकी लगाये देखता रहा, लेकिन वहाँ कुसुमोद्गम कहाँ? चन्द्र कुछ दूसरी ही शरारत सोच रहा था। कंचुकी, वामन और एक परिचारिका युवराज भट्टारकको उनके महलकी ओर लौटाये हुए ले जा रही थीं। कुछ पहिले ही मुझे लिए चन्द्र तमाल-कुंजमें चला गया। हम दोनों मार्गके ऊपर लटकती हुई तमाल-शाखा पर चढ़कर चुपचाप बैठ गये थे। अँधेरा तो उतना नहीं था, लेकिन तमाल-कुंज तो दिनमें भी अन्धकार फैलानेके लिए प्रसिद्ध है। जैसे ही युवराज भट्टारक रामगुप्त अपने दल-बल के साथ उस वृक्षके नीचे पहुँचे, कि पूर्व संकेतके अनुसार मैंने ज़ोरसे डाली हिलानी शुरू की और चन्द्रने एक हाथसे ताँबेके कलशके भीतरके कंकड़ोंको हिलाना और मुखसे बाघ, उल्लू न जाने कितने जानवरोंकी बोली बोलना शुरू किया। कंचुकी कान झाड़ कर भाग निकला, लेकिन बूढ़ेके लम्बे कंचुकने धोखा दिया और वह थोड़ी दूर जाकर गिर पड़ा। वामन हाथ उठाकर ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाने लगा और निपुणिका चेटी तो वहीं पछाड़ खाकर गिर गई। राम पीछेकी ओर भगा, जिस पर चन्द्रगुप्तने डालीसे

छलाँग मार कलश खनखनाते भीषण स्वरके साथ कुछ नाकसे बोलते उसका पीछा किया, वह तीस क़दम पर भी गिर पड़ा। उसके शरीरको निश्चल देख, वह घबड़ाया हुआ मेरे पास आया। अब हम लोगोंको परिहास बुरा लगने लगा, लेकिन सबसे पहिले तो अपनी जान बचानी थी। हम टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे होते अज्जुकाके पास पहुँचे और बड़े धीर-गम्भीर बनकर। अज्जुका हाथी दाँतके सुन्दर पीठासन पर बैठी हुई थी। उसका बायाँ हाथ पीठासन की पाटी पर था और दाहिना परिजनसे बात करनेमें भिन्न-भिन्न मुद्राएँ बतला रहा था। उसके लम्बे केशमें जाति और मल्लिकाके फूल बड़े सुन्दर तौरसे गुँथे हुए थे। उसका अंगद, कंकण, हार, कर्णफूल सभी लाल, पीले, श्वेत फूलोंके थे। ऊपरसे जहाँ-तहाँ सुनहले तारोंसे हंस, बत्तक बने हुए दुकूलकी श्वेत-शाटा थी। आस-पास स्त्रियाँ थी, जिनमें किसीके हाथमें चमर, किसी के हाथ में भृङ्गार (गड़ुआ), किसीके हाथमें छत्र, किसीके हाथमें सुगन्ध और दूसरे प्रसाधन थे। अज्जुका बहुत प्रसन्न थी। आज महाराज यहीं ओगभमें रात बिताने वाले थे। हम दोनों अज्जुकाकी बग़लमें जाकर खड़े हो गए, हम सात बरसके थे, तो भी अज्जुका बैठी थी, इसलिए उसके कन्धे तक हमारा हाथ पहुँच सकता था। मैं अज्जुकाके कंधेसे खिसक गए उत्तरीय (दुपट्टा) दुकूलको ठीक कर उस पर अंकित सुन्दर हंस-मिथुनको देखने लगा। चन्द्र अज्जुकाके पाद-पीठके पास बैठकर उसके नूपरोंको उंगुलियोंसे उलटने-पलटने लगा। अज्जुकाने मोदक लानेके लिए कहा, तो हम भले-बेटे की तरह "भूख नहीं" कह कर अज्जुकाके शरीरसे लिपट गये। थोड़ी देर में परमभट्टारक पधारे "जेदु जेदु भट्टा"की आवाज़ दूरसे ही सुनाई पड़ रही थी और अब तो अज्जुका और उसका परिजन भी खड़ा होकर जयकार में शामिल हो गया।

परमभट्टारकने अज्जुकाका हाथ पकड़ कर उसे पीठ पर बैठाया और आपने भी एक ओर बैठ गए। यद्यपि राजाके अन्तःपुरमें हज़ारसे ऊपर नारियाँ थीं, और एकसे एक सुन्दर—कितनी ही स्वर्णकेशी गोरी यवनियाँ, कितनी ही नीलकेशी अरुण-मिश्रित-धवलवर्णा पारसीकियाँ, कितनी ही गांधारियाँ, सौराष्ट्रियाँ, पार्वतियाँ आदि मौजूद थीं तो भी समुद्रगुप्तके दिल

में सबसे अधिक स्नेह और उससे भी अधिक सम्मान अज्जुकाके ही प्रति था। अज्जुका और परमभट्टारक आज वसंतोत्सवको एक ख़ास ढंगसे मनाने वाले थे, परमभट्टारक वीणाके परम प्रवीण वादक हैं, और अज्जुका अपने कोकिल-कण्ठके लिए प्रसिद्ध। आज पान-गोष्ठी, संगीत, नृत्य महोत्सव होने वाला था। वीणा आई थी, परमभट्टारकने उसे अपने अंकमें धारण कर "किन-किन" करना शुरू किया। नृत्य-कुशल मधुकरिका जनान्तमें नृत्य-मुद्रा का अभिनय भी करने लगी। इसी समय हाँफती-दौड़ती निपुणिका आई और अज्जुकाके चरणोंमें गिरकर आधी रोती और आधी बात करती हुई कहने लगी—

"भट्टिणी, परित्तायध, परित्तायध! युवराज भट्टारकको ब्रह्म-पिशाच पकड़ कर न जाने कहाँ ले गया। जालुक वामन भी तमाल-कुञ्जमें बेहोश पड़ा है और कंचुकी आर्यलात अकबक कर रहे हैं। मैं भी बेहोश थी।" बात समाप्त न होते ही परमभट्टारक और अज्जुका खड़े हो गए। निपुणिका की बात और घबराहट देखकर चन्द्रको हँसी रोकना मुश्किल हो रहा था, इसलिए वह अज्जुकाके पीछे छिप कर खड़ा हो गया। प्रतिहारी "इतो इतो भट्टा" कहते कहते आगे चलीं और पीछेमे सारे परिजन, कुब्ज, मूक, बधिर, के साथ अज्जुका और परमभट्टारक। मूकों और बधिरोंको कुछ समझ ही में नहीं आ रहा था। वह कुबड़े कुरभकसे जाननेकी कोशिश कर रहे थे और वह चलते-चलते हाथसे कुछ समझानेकी कोशिश कर रहा था। चन्द्र को अभी भी सन्तोष नहीं हुआ था वह उलटा-पुलटा इशारा करके समझा देता था, कि तुम दोनोंकी बलि ब्रह्म-पिशाच माँग रहा है। बेचारे घबड़ा गए और भाग निकलना चाहते थे, मगर कुबड़ा कुरभक, उसका मित्र वामन रेवतक उन्हें छोड़ नहीं रहे थे।

युवराज भट्टारककी दुर्घटना सभी रनिवासोंमें पहुँच गई और तमाल-कुञ्ज तक पहुँचते-पहुँचते सैकड़ों दीप-यष्टियों (मशालों)के साथ सारा राजान्तःपुर उमड़ आया। रामगुप्त अब भी उसी तरह ज़मीन पर निश्चेष्ट पड़ा था, मगर अब वह होशमें आ गया था, सिर्फ़ डरके मारे आँख नहीं खोल रहा था। अज्जुका सबसे ज़्यादा घबड़ा गई थीं। मन ही मन मैं भी बहुत

खिन्न था। अज्जुकाने दौड़कर रामके सिरको अपनी गोदीमें रक्खा। 'वच्छ' 'वच्छ' कह दो-तीन बार गिड़गिड़ानेके बाद रामने आँखें खोलीं। अब भी वह बहुत घबड़ाया हुआ था और उसका सारा बदन पसीने-पसीने था, यद्यपि यह जाड़ोंकी रात थी। अज्जुका और परमभट्टारक रामको लेकर अपने श्रीगर्भमें आए।

राम तो खैर थोड़ी देरमें प्रकृतिस्थ हो गया, लेकिन तमाल-कुञ्जके महापिशाचकी आँख-देखी कथाको निपुणिका, कंचुकी और वामन महीनों तक कहते रहे। सारे पाटलिपुत्रमें महापिशाचके बारेमें सैकड़ों तरहकी कथायें फैलीं। पिशाच-शांतिके लिए ब्राह्मणोंने खूब जप-होम किए, परम-भट्टारक और परमभट्टारिकाने लाखों दीनार (मुहर) दान-पुण्यमें ख़र्च किए।

चन्द्रकी बचपनकी शरारतोंकी कथाओंका अन्त नहीं है। उसका दिमाग़ हमेशा नई-नई बातोंको ढूँढ़ निकालनेमें लगा रहता था। उद्यानमें बहुतसे जन्तु रक्खे हुए थे, जिनमें एक रक्तमुख बानर भी था। चन्द्रकी नज़र एक दिन उस पर पड़ी। फिर मुझे ले वह वहाँ पहुँचने लगा। कभी केला ले जाता, कभी कोई दूसरा फल, कभी कुलूपा हमारे साथ रहती और कभी दूसरी चेटी। चन्द्र दो-एक ही दिनमें खिलाते-खिलाते जब रक्तमुखके पास बैठकर उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा, तो कुलूपा बहुत घबड़ाई। लेकिन चन्द्रने कुछ समझा कर और कुछ डरा-धमका कर उसे ठीक कर लिया। दो सप्ताह बीतते-बीतते तो रक्तमुख और चन्द्रकी ऐसी दोस्ती हो गई, कि वह दोनों पैरों पर खड़ा हो चन्द्रके हाथको पकड़ कर टहलने लगा। नौकरोंसे कह कर चन्द्रने उसकी रस्सी निकलवा दी और अब चन्द्र और हमारा तीसरा साथी रक्तमुख हो गया। उसे लिए वह हर जगह घूमता था और कुब्जों, वामनों, कंचुकियों, और चेटियोंकी जान पर आफ़त थी। इशारा भर करना था कि रक्तमुख कुब्जेके कूबड़ पर सवार होनेके लिए तैयार था। अज्जुकाके पास गाड़ी-गाड़ी भर शिकायत गई। चन्द्र कहता,—

"नहीं मेरी अज्जुका! रक्तमुख बड़ा भलामानुस है, जो चिढ़ाता है, मुँह बनाता है, या कंकड़-पत्थर फेंकता है, उसी पर वह नाराज़ होता है।

मैं तेरे पास लाता हूँ, देख, कैसा अच्छा बानर है।" जब यह कहकर चन्द्र लेनेके लिए चल पड़ा, तो परिजनने कहना शुरू किया—"भट्टिनी! मनाकर दीजिए"। बौने और कुबड़े तो पैर छानने लगे। चन्द्र एक साँसमें जाकर रक्त-मुखको ले आया। उसने रास्तेमें उसे ख़ूब अच्छी तरह समझाया, मानों वह उसकी सारी बातें समझ रहा था,—"देखो बेटा! अज्जुकाके सामने चलना है, मेरी तरह तुम भी भलेमानस बेटे बन जाना। कान-पूँछ गिरा लेना और जब ऊपर मुँह कर दूं, तो आँखोंसे अज्जुकाको देखते ही करुणा बरसाने लग जाना। ज़रा भी चूक हुई तो देखो, यह डंडा और तुम्हारा सिर।" रक्त-मुखको देखते ही लोग उसे रास्ता देनेके लिए ऐसे हटने लगे, जैसे परम-भट्टारक आ रहे हों, कसर थी सिर्फ़ "जेदु जेदु" कहनेकी। वामन तो कंचु-कियोंके बड़े-बड़े चोगोंके पीछे छिपने लगे और चेटियाँ एक दूसरेके पीछे—ख़ासकर वह जो रक्तमुखसे एकाध बार परिचित हो चुकी थीं। अज्जुका भी थोड़ी-बहुत अनमना ज़रूर हुई, मगर अपने देव—अज्जुका चन्द्रको कभी-कभी इस नामसे पुकारती थी, जो मेरे भी रहने पर जय-देव बन जाता था—पर उसका पूरा विश्वास था। आकर चन्द्र अज्जुकाके पैरोंके पास बैठ गया। रक्तमुख भी पीछे-पीछे आकर सिर नीचे किए हुए पासमें बैठ गया। चन्द्र ने कहना शुरू किया—"देख अज्जुका! रक्तमुख कितना भद्रमुख है। नाहक लोग इसे छेड़ते हैं।" यह कहते उसने रक्तमुखकी ठुड्डी पकड़ कर मुँहको ऊपर कर दिया, अज्जुकाने उसकी पतली पपलियाँ देखी और श्वेतिमासे घिरी काली पुतलियाँ भी। उसे विश्वास हो चला। चन्द्रने रक्तमुखको अज्जुका के चरणोंकी ओर इशारा किया। रक्तमुखने पैरों पर अपने हाथ रख दिए। अज्जुकाके मुँहसे निकल पड़ा—"निश्चय ही भद्रमुख है"

कंचुकी और दूसरे भुक्तभोगी कहने लगे—"नहीं भट्टिनी! यह बानर बड़ा नटखट है" किसीने कहा—"इसने हमारा कंचुक फाड़ दिया," किसीने सिले उत्तरीयको दिखाया। लेकिन चन्द्रने अज्जुकाको विश्वास दिला दिया कि रक्तमुख भद्रमुख है।

चन्द्रका एक ही कहानी सुननेकी तरह एक ही तरहके खेल बार-बार खेलनेमें आनन्द नहीं आता था। रक्तमुखका खेल भी दो-तीन महीने

के बाद फीका लगने लगा। चन्द्रको साहसके खेल बहुत पसन्द थे। पेड़ों पर चढ़ना, तैरना, ऊँचे घाटसे छलाँग मारना, नंगी पीठ बिना लगाम घोड़े दौड़ाना, आदि-आदि। इनमेंसे कितनी ही बातोंके लिए पाटलिपुत्र या द्वितीय-राजधानी साकेत (अयोध्या)में उतनी स्वतंत्रता नहीं थी। लेकिन पाँचवें वर्षके बाद साल-दो-साल बाद हम दोनों ज़रूर अग्रोदका जाया करते थे। तात महासेनापति हमें पूरी स्वतंत्रता देते थे—चाहे जो खेल खेलें, चाहे जैसे दिन बिताएँ, वह यही नहीं पसन्द करते थे, कि हम किसी दूसरे लड़केको दुख दें। चन्द्र, वैसे होता तो अपनी आदतसे मजबूर था, किन्तु यहाँ यौधेय लड़कोंसे पाला पड़ा था, एकाध वार उसने राजकुमारता दिखानी चाही, तो पैरोंमें हाथ-डालकर पहिले ही यौधेय कुमारने उसे ज़मीन पर पटक दिया। उसे यह समझनेमें देर नहीं लगी, कि अग्रोदकाके लड़के कुछ दूसरी ही तरहके हैं। लेकिन इतना हम कहेंगे, कि चन्द्रने इन दो-तीन घटनाओंका मनमें खयाल नहीं किया; पीछे तो वह अग्रोदकाके लड़कोंका बड़ा ही प्रेम-पात्र बन गया। आश्चर्य होता था, कि सात-आठ वर्षकी अवस्थामें ही कैसे पाटलिपुत्र और अग्रोदकामें से एक जगहसे दूसरी जगह जाते ही वह बिल्कुल दूसरा बन जाता था। यौधेयोंकी शिक्षा-दीक्षा ही कुछ दूसरी तरहकी थी। वह अपने बच्चोंके साथ बहुत प्रेम करते, मगर फूल बनाकर नहीं रखना चाहते थे। हर यौधेय बच्चेको पैदा होते ही खड्ग धोकर पिलाया जाता था। बचपन ही से वह खड्गके साथ खेलना सीखता था। जोखिममें अपनेको डालना यौधेयके लिए बिल्कुल मामूली बात है। वह जीनेकी पर्वाह करता, मगर मृत्युकी पूरे तौरसे अवहेलना करते हुए। हम दोनों दस सालके भी नहीं हो पाए थे, कि अपने दूसरे युवक बंधुओंके साथ सूअरका शिकार करने जाते, कभी भाला लिए घोड़ों पर सवार होकर पीछा करते और कभी-कभी लौटनेकी ताकमें सूअरोंकी माँदों पर सारी रात बिता देते। तीर हम चला लेते थे, हम दोनों ही लक्ष्य-बेधमें काफ़ी प्रशंसा पा चुके थे, किन्तु तीरसे कहीं सूअर मरा करता है? उसके लिए तो भाला ही ठीक हथियार है और वह भी मर्म-स्थानमें लगने पर। चौदहवें साल चन्द्रने अपना पहिला सूअर मारा, और कुछ ही महीने

बाद मैंने भी। लेकिन शिकारका आनन्द तो शुरू हीसे आने लगा था। अँधेरेमें या दिनके उजालेमें सूअर, शल्लकी (साही), मृग या रोज (नीलगाय)को जब शिकारी मारनेमें सफल होता, तो शिकारके पास पहुँचते ही जोरकी आवाज़ लगाता—"है कोई भाई! इस जंगलमें? शिकार मरा है आओ अपना हिस्सा लो।" पहिले हम दोनोंको यह बात समझमें नहीं आती थी, कि आदमी ख़ुद शिकार मारकर दूसरोंको हिस्सा देनेके लिए क्यों बुलाता है। लेकिन पिताने बतलाया—"दुनियाँमें जो कुछ पैदा किया जाता है, अर्जित होता है, वह सिर्फ़ एककी कमाईसे नहीं। सैकड़ों प्रयत्न करने वालोंमें यदि एक सफल होता है, तो उस सफलताकी जड़में निन्नानबे असफलकहलाने वालोंका परिश्रम भी शामिल है। इसी-लिए, किसी सफलताका श्रेय हमें अकेले नहीं लेना चाहिए। फिर मोटी बुद्धिसे देखनेसे भी मालूम होगा कि जगलसे एकका सफल और बाक़ीका ख़ाली हाथ लौटना अच्छा है या सबका थोड़ा-थोड़ा सफल होना।" मुझे पहिले-पहल वहीं यङ्गलमें शिकारके वक़्त एक नई चीज़, एक नई भावना का प्रकाश मिला।

यदि जङ्गलमें कोई और शिकारी रहा, तो उसको भी घर लानेके लिए बचे मांसमें से हिस्सा मिलता था। घर लानेकी बात तो पीछे आती थी, पहिले तो शिकारके हाथ लगते ही हम लकड़ी जमा करने लग जाते, राम भी एकाध-बार ननिहाल गया, मगर रातके शिकारमें वह बाहर निकलने की हिम्मत न करता था। हम तो उस रात्रिके अंधेरेमें भी दौड़-दौड़ कर लकड़ियाँ चुन लाते। जब तक चन्द्रके मामा लोग शिकारको ठीक-ठाक करते थे, तब तक चन्द्र और हम चकमकसे आग तैयार कर देते। लकड़ी की आग पर भुने पूरे सूअरके मांसको हम दोनों बहुत पसन्द करते थे। काट कर भूनने पर दंतैलकी चर्बी भूनते वक़्त आगको होम-कुण्डका रूप दे देती थी, लेकिन पूरा भूनने पर वह भीतर ही भीतर हज़म हो जाती। पाटलिपुत्रकी राज-रसोईमें ऐसे मांसको बहुत फीका कहा जाता। वहाँ दक्षिण-समुद्र और कहाँ कहाँसे एला (इलायची), लवली (लवंग) और क्या-क्या दूसरे पदार्थ डाल कर उसे तैयार किया जाता था। मुझे भी बचपन

से वैसा ही मांस खानेकी आदत थी, लेकिन यौधेयोंकी रसोई या शिकारका पका मांस अधिक प्रिय लगता; उनके यहाँ मांस पकानेमें उतना प्रपंच नहीं किया जाता था। शायद इसका कारण मेरा यौधेय रक्त और उसका पक्षपात हो। लेकिन एक बात तो अनुभव-सिद्ध है। एला, लवली, लवंग और प्रचुर घीसे बना हुआ मांस साधारण अन्नसे भी ज़्यादा दुष्पच होता है, जबकि सादा, उबला या भुना माँस अन्न से भी जल्दी पच जाता है। पूरा सूअर पकानेमें बहुत देर लगती है, लेकिन आग पर रखनेसे पहिले पेट फाड़ कर अँतड़ी निकालनेके समय कलेजी भी निकाली जाती है, जिसे मेरे भाई—चन्द्रके मामा लोग हमीं लड़कोंको दे देते थे। शिकारमें दौड़ना, रात-रात जागना, धूपमें तपना सब कष्टकी चीज़ ज़रूर थी, लेकिन उत्साहके सामने वह कष्ट मालूम नहीं होता था।

उस बचपनमें यदि चन्द्रसे कहा जाता, कि तुझे अग्रोदका पसन्द है या पाटलिपुत्र, तो उसके लिए कोई एक जवाब देना मुश्किल होता। पीछे जब हमारी शिक्षा ज़ोर-शोरसे आरंभ हो गई, तो अग्रोदका जानेका हमें बहुत कम मौक़ा मिलता, और वे महीने-दो-महीने पलक मारते-मारते बीत जाते, इसका हमें बड़ा अफ़सोस होता। चन्द्र गाने-नाचनेमें बड़ा कुशल था और मैं भी इसमें उससे पीछे न था। लेकिन एक चीज़में मैं चन्द्रसे ज़रूर कम था, वह था नक़ल उतारना—बहुरूपिया बनना। उसने भेस बदलनेके न जाने कितने नेपथ्य जमा कर लिए थे। सफ़ेद, काली, पीली, दाढ़ियाँ, छोटी-बड़ी मूँछें, चेहरे रँगनेके रंग, स्त्री-पुरुषोंके नाना प्रकारके भूषण और वस्त्र। उसके उग्र साहसोंमें मैं अगुआ तो नहीं बनता था, मगर हम दोनोंका संबंध ऐसा था, कि साथ देना ही पड़ता। कुबड़े कुरभकको ब्याह करनेकी बड़ी इच्छा थी, अन्तःपुर—जहाँ कि वह रहता था—नारी-मय था, लेकिन कौन इस अष्टावक्रकी ओर नज़र डालती? ब्याहका प्रलोभन देकर उसके साथ इतना मज़ाक हुआ था, कि किसी चेटी पर उसका विश्वास नहीं रह गया था। हम लोग ग्यारह-बारह सालके थे, तबकी बात है। हमने कुबड़ेको फाँसा। चन्द्र पर शायद वह विश्वास करता। मेरे झाँसा-पट्टी देने पर वह ब्याह करने के लिये पागल बन गया। कुबड़ेको, हमने बतलाया कि एक त्रैलोक्य-सुन्दरी कन्या तुमसे

ब्याह करना चाहती है। क्यों का जवाब भी अच्छी तरहसे दे दिया; कन्या और नहीं इन्द्र की अप्सरा रंभा है, किसी भूलके कारण ब्रह्माके पुत्र अष्टा-वक्र मुनिने शाप दे दिया कि अब तेरे लिए स्वर्गमें जगह नहीं रहेगी। बहुत कहने-सुनने पर मुनिका दिल पसीजा और कहा—"जा, मानवी होकर यदि तूने किसी मेरे जैसे कुबड़ेसे शादी की, तो तू फिर सदेह इन्द्रभवनमें पहुँच सकैगी।"

कन्याको हमने विन्ध्याटवीके परिब्राजक सामन्तकी कन्या प्रकट किया। दो एक और यार-दोस्त, और दो-तीन चेटियोंको भी शामिल किया था, लेकिन विवाह और भाँवरकी बात आने पर चेटियोंमेंसे कोई तैयार नहीं हुई। आखिरमें चन्द्रने कहा—मैं दुलहिन बनूँगा। चन्द्र अज्जुकाकी तरह ही बहुत सुन्दर था। मैं रंगमें उससे भी गौर था, रूप-रेखामें भी अच्छा; मगर उसके रूपमें एक ग़ज़बकी स्त्रैण कोमलता थी, लम्बे-लम्बे बाल तो स्त्री-पुरुषोंके समान होते ही हैं, अवश्यकता थी उष्णीषक बेणीमें परिणत करनेकी। चतुरिका दुलहिन बनने से तो घबड़ा गई थी, बात भी ठीक थी, मंत्र-भाँवर सब कुछ हो जाने पर फिर धर्मासन (कचहरी, अदालत) से भी उसे कुबड़ेकी पत्नी होनेके लिए मजबूर किया जाता, आखिर देवता लोग परिहासका खयाल थोड़े ही करते हैं। लेकिन चतुरिकाके चतुर हाथों ने चन्द्रको सजाया ख़ूब। बीच-बीचमें फूलोंको लगाकर चन्द्रके केशों की वेणी गूंथी गई, कुण्डल उतार कर कर्णपूर डाले गए। गलेमें एकावली मौक्तिक-माला, और निष्क-माला (मोहरमाला), बाहुमूलमें मोतीकी लड़ियाँ लटकते मणि-जटित अंगद, हाथोंमें सुवर्ण-कंकण, कटिमें किंकिणीपूर्ण रसना-दाम और चरणोंमें सुन्दर नूपुर, केशोंमें जहाँ-तहाँ मणिमुक्ता। चतुरिकाने आँखोंमें बहुत पतली-सी अंजन-रेखा अंजित की, पैरोंमें अलक्तक (महावर) और अङ्गोंमें अंगराग और मुख पर मुख-चूर्ण डाल दिया। दो नारंगियोंसे कृत्रिम स्तन बना कंचुकीसे ढाँपा, फिर अरुण चीनांशुक पहना कर हम सबोंको देखनेके लिए बुलाया, दरअसल वहाँ चंद्रगुप्तका कहीं पता नहीं था। शायद अज्जुका भी माननेके लिए तैयार हो जाती, कि वह वस्तुतः उच्चकल्प (विन्ध्याटवी)के महाराजकी कुमारी है। मुझे बहुत

आश्चर्य हुआ। चतुरिका और उसकी सखियाँ तो "सही चन्दे" कहकर बार-बार आलिंगन करती थीं। मैंने चन्द्रसे कहा—"भायर! सचमुच तुममें कोई पूर्व चिह्न नहीं है। ज़रा बड़े दर्पणमें अपने सारे शरीरको तो देखो।" चन्द्र ने देखा और देख कर अपनी सफलता पर ख़ूब हँसा।

हमने कुबड़ेको कन्या दिखलानेके लिए बुलाया। 'कन्या'ने लज्जा, संकोचका अभिनय, बड़े लालित्यके साथ किया। कुबड़ेके सामने ही शाप और विवाह-स्वीकारकी बात पूछ ली। कुबड़ा फूला न समाता था, जब उसने स्वीकृतिको स्वीकारात्मक शिर-चालनके रूपमें देखा। मंत्र पढ़े गए, सप्तपदी हुई, स्त्रियोंने मङ्गल-गान गाए। कुबड़ेको पूरे महीने भर भ्रममें रखा गया। वह नववधूसे मिलनेके लिए ब्याकुल था, किन्तु हमने दुष्ट ग्रह और क्या-क्या कहकर टाला। जब मज़ाक़ फीका पड़ने लगा, तो एक दिन चन्द्रने मुँह गिराकर कुबड़ेसे कहा—"कुरभक! वह सुन्दरी आज ही गंगामें कूद गई, जय बचानेके लिए पानीमें उतरा, किन्तु वह कहाँ हाथ आनेवाली थी। हम धारामें आगे-पीछेकी ओर नज़र दौड़ा रहे थे, उसी वक्त एक अप्सरा पानीसे धीरे-धीरे निकली—पहिले उसका घन-नील चिकुर, फिर मुख-चन्द्र, तब कम्बु-ग्रीव, तब स्फटिक-शिला-सम कलश-युगल-सहित वक्षस्थल, फिर सत्रिवलि क्षीण कटि, फिर विशाल नितम्ब, जानु-कदली, पाद-पद्म पानीके तल पर आये और एक ही क्षणमें जल छोड़ आकाशमें खड़ी हो उसने हमें संबोधित करके कहा—"भर्तृदारको! विवाह होते ही मैं शाप-मुक्त हो गई, अब त्रिदशपतिके आस्थान (दरबार) में जाना आवश्यक है। मैं आर्यपुत्रके देखनेके लिए विह्वल हूँ, किन्तु 'परब्बसो-अप्पा' दसो नख जोड़ कर मेरी ओरसे पद्मांजलि बाँध आर्यपुत्रको अनेक वन्दना करके कहना कि मैं उनसे मिलने एक दिन आऊँगी। जब नील नभमें क्षीरोदधि-संभूत अपनी क्षीरश्वेत-किरणोंको प्रसारित करेंगे, उसी समय सर्प-केचुल-सम दुकूलधारिणी यह दासी क्रीड़ा-पर्वत पर आर्यपुत्रसे मिलने आयेगी।

कुरभकका विश्वास इन सारी बातों पर इतना जम गया, कि वह अक्सर चाँदनी-रातमें क्रीड़ा-पर्वतके पास जाकर बैठता था। उसकी परिणीता ने

कल्पनामें, नहीं उसके हाथोंको हाथमें लिया था, उसके शरीरका स्पर्श किया था। वह भला कैसे अपनी प्रेयसीको भुला सकता था। भुलाता तो तभी, यदि कोई दँतटूटी काली-कलूटी दासी भी उसे अपना पति बनानेके लिए तैयार होती।

(३)

गंधारकी यात्रा

हम दोनों छः वर्षके भी नहीं हो पाए थे, कि तीन गुरु हमारी शिक्षाके लिए नियुक्त कर दिए गए। हमारे साथ पढ़नेके लिए कुछ और सामन्त-पुत्र इकट्ठा कर लिए गये थे, जिनमें वीरसेन अधिक कुशल और मेधावी था। अब दोकी जगह तीनकी जोड़ी बन गई। पट्टिकापर पहिले मिट्टीका चूर्ण डाल कर लकड़ीसे लिखते थे। जिस दिन "ओं नमः सिद्धम्" कहलवा कर हमारे हाथमें लेखनी पकड़ाई गई, उस दिन अज्जुकाने बड़ा उत्सव मनाया। अध्यापकोंको क्षौम-युगल और दूसरे उपहार दिए गए। हमारा कुल बौद्ध था। तातकी भगवान् सुगतमें बड़ी श्रद्धा थी, लेकिन वह अंध-श्रद्धालु व्यक्ति नहीं थे। उस समय भी वह कभी-कभी बुद्धके बारेमें मुझे बतलाते, तो मुझे बहुत मधुर लगता था, किन्तु जब वह उपदेशोंकी कुछ गहराईमें उतरते, तो मैं समझ न पाता। अज्जुकाका पति-कुल ब्राह्मण, गौ और विष्णुका परमभक्त था, मगर उसकी श्रद्धा सुगतपर ही सबसे अधिक थी। हैर अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमाको नगरसे दक्षिण अशोका-राममें तथागतके शरीर-धातु (हड्डी)की पूजाकेलिए जातीं, संघको भोजन करातीं और धर्मोपदेश सुनतीं। पाटलिपुत्रमें रहते शायद ही कोई ऐसा दिन हो जब कि मैं अज्जुकाके साथ अशोकाराम न जाता। होश सँभालनेसे पहले ही मैं शक्रके विभवको लजानेवाले पाटलिपुत्रके राज-प्रासादमें चला आया और वहीं मेरा सारा समय बीता। जब-तब मेहमानके तौर पर अग्रोदका ज़रूर जाता था, किन्तु मेरी आँखोंके सामने सदा समुद्रगुप्तका विशाल रनिवास, उसके दास-दासी, परिचारक-परिचारिका, रत्न-सुवर्ण रहते थे। महादेवी का अनुज और द्वितीय युवराज (राजकुमार)का अभिन्न सहचर होनेके

कारण मुझे सभी लोग स्वामीके तौर पर ही देखते थे। लेकिन होश सँभालते ही जब पहिले-पहल मैं अग्रोदका गया, अपने स्वजनोंके सम्मान और स्नेह-पूर्ण वात्सल्यको पाया, तो मेरी धमनियोंमें यौधेय-खून जोश मारने लगा। आगे दिन बीतनेके साथ यह भावना और बढ़ी। पाटलिपुत्रके राज-प्रासादमें सम्मान था, लेकिन भयके साथ। एक कोड़ीसे अधिक ऐसे आदमी नहीं थे, जिनको मैं बराबरीसे मिल सकता। अग्रोदकामें हमारे एक हज़ार यौधेय घर थे। यद्यपि किसीके घरमें कुछ अधिक धन था, व्यापारसे कुछ अधिक आमदनी हो जाती थी, किसी-किसीके घरमें काले, भूरे या गोरे दास-दासी भी थे और कितनोंको सारा काम अपने हाथों करना पड़ता था; तो भी ये हज़ार घर सभी समान थे। एक घरमें खाना रहनेपर दूसरा घर भूखा नहीं रह सकता, एक घरमें मदिरा रहनेपर दूसरेका ओठ तर हुए बिना नहीं रह सकता था। उसमें दान और कृतज्ञताका सवाल नहीं था, हरेक यौधेय अपने किसी बन्धुके आहार-विहारमें अपना नैसर्गिक अधिकार समझता था। मेरी चाचियाँ कम किन्तु भाभियाँ ज़्यादा थीं। मैं जब अग्रोदका जाता, तो शायद ही किसी दिन अपने घर खाने पाता। तेरह-चौदह सालका हो जानेपर जब नाच-गानेमें अपने कौशलको दिखलाने लगा, तो मेरी सभी भाभियाँ अपने आँचलमें मुझे बाँधनेकेलिए होड़ लगाए रहतीं। कितना अपार स्नेह उनमें था! पिताका एकमात्र पुत्र होनेसे मेरी सगी भाभी नहीं थी, किन्तु यौधेयोंमें सभी भाभियाँ सगी भाभियाँ होती हैं, क्योंकि सभी यौधेय एक ही वंशधरका खून अपने रगोंमें दौड़ते अनुभव करते हैं। खेतीकी उठती या परती सारी भूमि सारे वंशकी समझी जाती है, और जोतते वक्त साधनके अनुसार लोगोंमें खेत बाँटा जाता है। हरसाल जोते हुए खेत फिर सारी यौधेय बिरादरीका बन जाते हैं और अपने हक्कके कारण नहीं, बल्कि परिवारका होनेसे खेत मिलता है; इससे भी यौधेय अपनेको एक घरका सगा भाई समझते हैं। अग्रोदका ही नहीं रोहितकी, खण्डिला, श्रीमाल, ओस आदि सभी नगरों और गाँवोंके यौधेय एक दूसरेको सगे भाईकी दृष्टिसे देखते हैं। यौधेय-भूमिकी किसी भी बस्तीमें जाकर इतना बतलानेकी देर है, कि मैं यौधेय हूँ, फिर सभी घर उसकेलिए अपने हैं,

वह परिवारका एक व्यक्ति हो जायगा और उसकेलिए कोई भेद, कोई विलगाव नहीं रह जायगा। मैंने अनेक बार अपने बन्धुओंके घरोंमें इस आनंदको लूटा है। समुद्रगुप्तके राज-सूपशालाकी तरहके पचासों प्रकारके सूप, मांस, तेमन और गंधशाली-ओदन वहाँ नहीं थे, किन्तु वे कितने मधुर लगते थे। समयके बीतनेके साथ अज्जुकाका अग्रोदका आना-जाना कम होता गया, किन्तु वह हमेशा छटपटाती थी। जब अग्रोदका आती, तो बिल्कुल भूल जाती, कि मैं गुप्त-चक्रवर्त्तीकी महादेवी हूँ। वह अपने साथ बहुत कम परिवार लेकर आती—सिर्फ उन्हींको लाती, जो उसके नैहरके अकृत्रिम जीवनको देखकर कुछ दूसरा मनमें न लाते। कभी वह समयपर पाटलिपुत्र नहीं लौटी; एक महीनेके लिए आती, तो दो महीने जरूर लग जाते। माँ नहीं थी, किन्तु उसकी दो छोटी बहनें थी, फिर अग्रोदकाके हज़ार यौधेय-घरोंमें कौन सा ऐसा घर था, जिसमें उसकी सगी बहिनें सगी चाचियाँ, भाभियाँ न हों।

जब उसकेलिए आना असंभव होने लगा, तो मेरे आनेपर महीनोंसे यह अपनी भाभियों, बहनों और दूसरे संबंधियोंकेलिए उपायन जमा करती। कितनोंकेलिए अपने हाथसे लेख (चिट्ठी) लिखती और एक घरके किसी भाभी या चाचीको पत्र लिखते वक्त नाम दे देकर इतने परिष्वंग और कंठग्रह भेजती, कि भोजपत्रके नीचे भोजपत्र साटने पड़ते। सभी कहतीं—"दत्ता बहिनी हमें भूली नहीं, उनको इतने नाम याद कैसे रहते हैं?" मैंने एक बार अज्जुकासे यह बात कही, तो उसने मेरे माथेको चूमकर कहा—"तात!" यौधेयोंका ख़ून भूलनेका है क्या! उन्होंने मुझे यौधेय-भूमिसे दूर फेंक दिया, किन्तु मैं आजन्म यौधेय-पुत्री रहूँगी।" इस बार मैं वर्षाके अंतमें अग्रोदका पहुँचा था। पाटलिपुत्रसे हमारी नाव वर्षामें ही चल पड़ी। पुरवा हवा इसकेलिए बहुत अनुकूल होती है। पानी बढ़ा होनेके कारण इस समय तो कितने ही सामुद्रिक-वोहित भी यवद्वीपसे कौशांबी तक पहुँच जाते—हाँ मागध सार्थवाहों (व्यापारियों)के ही। एक पूरी नाव अज्जुकाके उपायनोंसे भरी थी। नाव के कूपदण्ड (मस्तूल) पर बड़ी पाल चढ़ा दी गई थी। वह हवाके झोंकेमें पच्छिमकी ओर सन्न-सन्न बढ़ रही थी। बाराणसीमें मैं उपरिक (वाइसराय)के

प्रासादमें ठहरा और ऋषि-पतन (सारनाथ)का दर्शन कर आया। जिस तरह यौधेय-रक्त मुझे एक तरहकी प्रेरणा देता था, वैसे ही इस पैतृक धर्ममें भी मेरी अकूत श्रद्धा थी। इसीलिए जहाँ तथागतने पहिले-पहल अपने धर्मका उपदेश किया, उस स्थानका दर्शन किए बिना मैं रह नहीं सकता था। प्रतिष्ठान (झूँसी)में भी एक दिन-रात हमारी नाव रुकी रही। यहाँके राज-प्रासाद, राजोद्यान, पाटलिपुत्रके सामने क्या थे, कि जो मेरे ध्यानको अपनी ओर आकर्षित करते। लेकिन, यह देखकर उस समयके मेरे शिशु-मन को, न जाने कैसा-सा लगा, कि लोग गंगा-यमुनाके संगममें यह विचार कर डूब मरते हैं, कि मरकर वह स्वर्ग जायँगे। यह बुरा है या भला, इसे समझनेकी मुझमें क्षमता नहीं थी, लेकिन आगे चलकर ब्राह्मणोंके धर्म-जालके प्रति जिन बातोंने मेरे मनमें भारी जुगुप्सा पैदा कर दी, उनमें यह एक थी।

प्रतिष्ठानसे हमने यमुनाको पकड़ा। कौशांबीमें कुछ ज्यादा ठहरना पड़ा। यहाँ भी मैं उपरिक (वाइसराय)के प्रासादमें ठहरा। अशोक-राजाके महल—खास करके बड़े-बड़े पाषाण-स्तंभोंके आस्थान-मंडप—को पाटलिपुत्रमें मैं अक्सर देखा करता था। कौशाम्बीमें मैंने दो विशाल पाषाण-यष्टियाँ देखीं, जिनमें एकपर कुछ लेख खुदे हुए थे। जिस साल मेरा और चन्द्रका जन्म हुआ था, उसी साल मेरे भगिनीपतिने एक लम्बा लेख इसी पाषाण-यष्टि पर खुदवाया। यद्यपि अक्षर मैं पढ़ सकता था, लेकिन भाषा संस्कृत थी, और मैं उसे समझने योग्य नहीं था। लोग कह रहे थे, कि इसमें कुमारामात्य हरिषेणने बड़ी सुन्दर कविता की है।

कौशाम्बीसे चलते-चलते हम मथुरा पहुँचे। देवपुत्रशाही (कुषाण)के कितने ही प्रासाद यहाँ मौजूद हैं, जिनमें आजकल मगधके अधिकारी रहते हैं। इन्द्रप्रस्थमें जाकर हमने नाव छोड़ दी। अब हम यौधेय-भूमिमें आ गए। नावका सामान ढोनेकेलिए कई गाड़ियोंकी ज़रूरत थी, मगर उसकेलिए मुझे रुकनेकी ज़रूरत नहीं थी। मैंने एक सवार साथ लिया और अग्रोदका चला गया। तातने आलिंगन कर मुख चूमा। अबकी मैं दो साल बाद

आया था। मेरा डीलडौल काफ़ी बढ़ गया था, तातको यह देखकर संतोष हुआ, कि मैं यौधेयोंकी शरीर-संपत्तिको खो नहीं रहा हूँ।

इस बार मुझे एक बड़ी मनोरंजक यात्रा करनेका अवसर मिला। अग्रोदका और पाटलिपुत्रकी यात्रा मैंने इतनी बार की थी, कि उसमें कोई नवीनता नहीं रह गई थी। तात अबकी बार यौधेयोंके पुरस्कृत (गणपति)के पदसे अलग हो गए थे। थोड़ा-बहुत व्यापार करते थे, लेकिन वह काम ज़्यादातर नौकर-चाकरोंके ज़िम्मे था। 'व्यापारमें पूर्वके सूक्ष्म कार्पास वस्त्र स्वर्ण-सूत्रित काशिक क्षौम, काशिक चंदन और दूसरी चीज़ें थीं, और गंधार से पांडु-कंबल, (दुशाला), सूखी द्राक्षा, कापिशेयी सुराके अतिरिक्त कुछ कंबोजके घोड़े भी रहते थे। अबकी बार अपने सार्थ (कारवाँ)के साथ तात स्वयं जानेवाले थे। उसमें उनका उद्देश्य सिर्फ़ व्यापार नहीं था, बल्कि तक्षशिलाके धर्मराजिका-चैत्य और पुरुषपुर (पेशावर)में अवस्थित भगवान बुद्धके भिक्षा-पात्रके दर्शनकी इच्छा भी प्रधान थी। वर्षा समाप्त हो चुकी थी, ज़मीन सूख गई थी, नदी-नालोंमें पानी कम हो गया था, फ़सल भी बोई जा चुकी थी, इसी समय तातका सार्थ जानेकेलिए तैयार हुआ। मैंने भी साथ चलनेकेलिए कहा। मैं कह चुका हूँ, कि मेरी किसी इच्छा में बाधा पहुँचाना वह अच्छा नहीं समझते थे। उनमें बड़ी गंभीरता थी, दूसरी ओर बहुत माधुर्य भी। यौधेयको तो वह प्राणोंसे भी प्यारा समझते थे। समुद्रगुप्तने कितनी ही बार अपने ससुरको ऊँचा पद देना चाहा, किन्तु पिता यौधेयोंकी सेवाको ही अपने लिए सबसे बड़ा सम्मान समझते थे। इष्ट-मित्र, ज्ञाति-संबंधीकेलिए जो ख़र्च पड़ता था, उसके लिए कुछ प्रबंध तो करना ही पड़ता था, किन्तु धनको वह बड़ी बुरी दृष्टिसे देखते थे। एक जगह धनके जमा होनेको वह बुराइयोंकी बड़ी जड़ मानते थे। वह कहा करते थे—"यौधेय व्यापार, धन, और प्रभुताके पीछे जिस तरह दौड़ रहे हैं, यह हमारे पतनका कारण होगा।" हमारा सार्थ बहुत बड़ा था, उसमें पाँच सौ शकट (गाड़ियाँ) कितने ही ऊँट और घोड़े थे। शकटों पर पण्य लदा हुआ था। लाखों दीनारोंकी संपत्ति साथ चल रही थी, इसलिए दस्युओंका भय बराबर बना रहता था, खासकर जबकि हम शतद्र

(शतलज)को पार कर यौधेयोंकी सीमासे देवपुत्र शाही (कुषाण) के राज्य में प्रविष्ट हुए। लेकिन हमें दस्युओंका डर नहीं था। हमारे पास सौ सवार तो थे ही, साथ ही हरेक गाड़ीवान और दूसरे सार्थी भी तलवार चलानेमें दक्ष थे। ठहरनेके निश्चित स्थान थे, जहाँ जल, तृण और अन्न सुलभ थे। शकटोंको बीचमें करके शस्त्रधारी सजग हो पहरा देते। तलवार और जन-संख्या तो थी ही, ऊपरसे यौधेय लड़ाकोंका सबको पता था, इसलिए कोई आँख उठाकर हमारी ओर देखनेकी हिम्मत न करता था। तात सारे सार्थके प्रमुख थे।

शतद्रु के पार होते ही हमें देवपुत्र शाहीके शक-सैनिक तथा अधिकारी मिलने लगे। वैसे पाटलिपुत्र और दूसरी जगहोंमें भी मैंने कोई शक देखे थे, मगर सौ-दो सौकी संख्यामें देखनेका यहीं मौक़ा मिला। शकोंको दाढ़ीसे इतना क्यों प्रेम है, यह मुझे समझमें नहीं आता था। दाढ़ीके एक बालका भी नुक़सान होना वह बरदाश्त नहीं करते। इसके कारण उनका मुख रोबीला तो क्या, डरावना ज़रूर हो जाता है। हमारी तरह वह छोटे नहीं दीर्घ कंचुक पहनते हैं, जो घुटनेके बहुत नीचे तक लटकता है, कमरमें कई हाथकी पट्टी बाँधते हैं, सिरपर नुकीली टोपी होती है, पैरोंमें सुत्थन, जो कंचुकके कारण क़रीब-क़रीब दिखलाई नहीं पड़ता, उनका थैला जैसा जूता आधे घुटने तक पहुँचता है। भेषमें अन्तर ज़रूर है और भाषामें भी, किन्तु शक हमारी ही तरह बौद्ध या ब्राह्मण-धर्मको मानते हैं—बौद्ध-धर्मको ज़्यादा। कोई-कोई जैन भी हैं, लेकिन मांसका छोड़ना उनकेलिए मुश्किल है, इसलिए बहुत कम उस धर्मके अनुयायी हो पाते हैं। पाटलि-पुत्रके राज-प्रासादमें रहते-रहते मैंने म्लेच्छ शकोंकी बहुत-सी निन्दाजनक कथाएँ सुन रक्खी थी, किन्तु दाढ़ीके सिवा मुझे तो उनकी कोई चीज़ अरुचिकर नहीं मालूम हुई। हमारे साथ पन्द्रह-बीस तीर्थयात्रिणी यौधेयिकाएँ थीं, शकानियाँ अपने घरोंमें ले जाकर उनका बड़ा सम्मान करती थीं। वैसे होता तो यौधेय तरुणियाँ सुरा और नृत्यके प्रलोभनसे अपनेको रोक न सकतीं, मगर वह उपोसथ व्रत ले तीर्थ-यात्राकेलिए निकली थीं—तरुणियाँ थीं भी नहीं ज़्यादा, अधिकतर अधेड़ और वृद्धाएँ थीं।

इरावती (रावी), चंद्रभागा (चनाब) और वितस्ता (झेलम)को पारकर जब हमारा सार्थ तक्षशिलाके सामने पहुँचा और धर्मराजिका महा-चैत्य दिखलाई देने लगा, तो पुरुष तो अंजलि बाँध प्रणाम ही करके रह गए, किन्तु हमारी चाचियाँ और भाभियाँ शकटोंसे उतर पड़ीं और उन्होंने वहीं भूमि पर मस्तक, हाथ और घुटने टेक पंच-प्रतिष्ठितसे तीन बार वन्दना की। मेरी मौसी देवसेना सबसे ज्यादा भक्तिन थीं। उनकी देखा-देखी मैंने भी वन्दना की। हमारे सार्थके सारे बौद्ध नर-नारी धर्मराजिकाके प्रति सम्मान दिखाते पैदल ही चले।

तक्षशिलामें सार्थोंके रहनेका अच्छा प्रबंध था। बाग़, मैदान और जल-कुल्यायें (नहरें) थीं; तृण, काष्ठ, और अन्न हमें हाटसे मिल जाते थे। यद्यपि देवपुत्रकी राजधानी यहाँ नहीं पुरुषपुर (पेशावर)में है, लेकिन तक्षशिलाका वैभव पेशावरसे कम नहीं है, बल्कि वाणिज्यकी राजधानी तो तक्षशिला ही है, श्रेष्ठी-सार्थवाहोंकी वीथियाँ और उनके प्रासाद बिल्कुल राजसी ढंगके मालूम होते हैं। यहाँसे कम्बोज, कपिशा, वाह्लीक, पारसीक, यवन और दूसरे पाश्चात्य जन-पदोंको वणिक्-पथ जाता है, किन्तु दो ही दिनके बाद शकटका रास्ता नहीं रह जाता, इसलिए पूर्वसे आनेवाले व्यापारी यहीं अपना पण्य बेंच अपेक्षित चीज़ें लेकर लौट जाते हैं। वहाँ हमें पाटलिपुत्रके सार्थवाह गणदासका लड़का भी मिला। वह लोग यमुनामें और उत्तर जा स्रुघ्नपुर (अंबाला), शाकल नगरी होते आए थे। तातने तक्षशिलाके बारेमें मुझे बहुतसी बातें बतलाईं। कहते थे—"तक्षशिला व्यापारका ही नहीं किसी समय विद्याका भी भारी केन्द्र रहा। उस वक्त मगध तकके विद्यार्थी यहाँ आया करते थे। अब तो पाटलिपुत्र स्वयं एक बड़ा विद्या-केन्द्र है, उज्जयिनी और मथुरामें भी पठन-पाठनका प्रबंध है, इसलिए उत्तरापथ (पंजाब) और दूसरे पश्चिमी देशोंके विद्यार्थी ही यहाँ आते हैं।" तक्षशिलामें बहुतसे विहार हैं, जिनमें धर्मराजिका महाविहार सबसे बड़ा है। धर्मराजिका-चैत्यके पाषाण-कंचुकमें बड़ी सुन्दर मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। आस-पासमें कितने ही प्रतिमा-गृह हैं, जिनमें भगवान् बुद्ध और बोधिसत्व अवलोकितेश्वरकी मनोहर प्रतिमाएँ स्थापित हैं। पूजागृहोंमें घीके अखण्ड दीपक जलते रहते हैं। तातने धर्मराजिकाके सामने

अखण्ड दीपक बालनेकेलिए दस दीनारकी अक्षयनीवि दन्तकार-श्रेणी (हाथी-दाँतका काम करनेवाले शिल्पियोंके संघ)के पास जमा की। श्रेणीने सालमें एक दीनार ब्याज देना स्वीकार किया, यह एक दीनार साल भरके अखंड दीपकके लिए पर्याप्त था। धर्म-राजिकाके इतिहासके बारेमें तात बतला रहे थे—"भगवान्‌के निर्वाणके बाद उनके शरीर-धातु (हड्डी को बाँटकर राजगृह, कुशीनगर, वैशाली, कपिलवस्तु, रामग्राम आदि स्थानोंपर आठ-नौ चैत्य बनाए गए थे। भगवान्‌के निर्वाणके सवा दो सौ वर्ष बाद जब अशोक राजा हुए, तो उन्होंने अपने राज्यके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें सैकड़ों चैत्य निर्माण कराये, और उनमें भगवान्‌की शरीर-धातुको स्थापित किया। अशोक परमधार्मिक राजा थे, इसीलिए उनको धर्मराज अशोक भी कहा जाता था और उसी नामके कारण ये चैत्य धर्मराजिका-चैत्य कहलाए"। मैंने पूछा—

"क्या पाटलिपुत्रके महाराज अशोकका राज यहाँ तक था।"

"यहाँ तक ही नहीं, यहाँसे पचास योजन और पच्छिम तक उनका राज्य फैला हुआ था। अब भी इन देशोंके लोग बौद्ध हैं और धर्माशोकको बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। राजवंश आते और जाते रहते हैं, लेकिन पुण्यात्माओंकी कीर्त्ति अचल बनी रहती है।"

अशोकाराम (पाटलिपुत्र)में भी मैंने शक, पारसीक और यवन-भिक्षु देखे; किन्तु यहाँ गांधारोंके बाद सबसे ज्यादा संख्या शक-भिक्षुओंकी थी। उनमें विद्याका बहुत प्रेम था। मेरी मौसी तो बराबर भिक्षुणी-विहारमें जाती और शकपुत्री आर्या वाशिष्ठीकी विद्या, उपदेश और मधुर स्वभावकी प्रशंसा करते नहीं थकती थीं। हम अब गंधारमें थे, लेकिन गंधार देशका गर्भ सिंधु पार आनेवाला था। गंधारोंकी पोशाक हम लोगोंसे भिन्न थी। उनका सुत्थन बहुत घिरावेदार और ऐसा टेढ़ा-मेढ़ा सिला होता, कि कपड़ेकी ऐंठन बहुतसी तिरछी रेखाएँ बनाती है। गांधारियोंका सुत्थनभी उसी तरहका होता है, मगर वह और सुन्दर होता है। पहिननेपर उसकी गोलाई ऊपरसे नीचे कम होती जाती है, और उसकी ऐंठनें कपड़ेके सुन्दर रङ्गसे मिलकर बड़ी चित्ताकर्षक मालूम होती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों कंचुक पहनते हैं। सिरपर गांधारियाँ उत्तरीय और गांधार उष्णीष (पगड़ी) रखते हैं। पैरोंमें दोनों ही

के तनीदार जूते (चप्पल) होते हैं। शक और शकानियोंकी पोशाक प्रायः एक ही तरहकी होती हैं। वही लम्बा चोगा, वही लंबा थैला जैसा जूता, वही कमर-बन्द और वही नोकदार टोपी। शकानियाँ गांधारियोंसे कम आभूषण पहिनती हैं, खासकर कर्णपूरका उनको शौक नहीं मालूम होता। मगध-वासियों और हम यौधेयोंसे भी गांधारों और शकोंका रंग अधिक गोरा होता है। बहुतसे तो भूरे बालों और नोली आँखोंवाले होते हैं। वहाँ श्याम-केशियों (श्यामा) से स्वर्ण केशियों (पिंगला) का सम्मान ज्यादा है। मैंने पुरुषपुरमें कितने ही काम्बोज उपासक (बौद्ध) नर-नारी देखे; उनमें तो काले केशों और काली आँखोंवाले मिलते ही नहीं, और कितनोंके केश हल्केसे पीले रङ्गके साथ बिल्कुल श्वेत होते हैं। हाँ, यह मुझे जरूर बुरा लगा, कि गांधार शकोंके सामने दबकर रहते हैं, लेकिन उनका राज जो ठहरा। तातने बतलाया, कि देवपुत्रशाही अब स्वतन्त्र नरेश नहीं, वह पारसीक शाहको कर देते हैं।

तक्षशिलामें हमें दो सप्ताह रहना पड़ा। इस बीचमें हमारे सार्थने अपने सौदोंको बेंच डाला। कुछ लोगोंको शकटोंकेलिए छोड़कर बाक़ी हमारे साथ घोड़ोंपर सवार हो पुरुषपुरकेलिए रवाना हुए। सुना था, सिंधु गंगासे भी बड़ी नदी है; लेकिन जब मैंने तातसे कहा कि पाटलिपुत्रकी गंगासे यह ज्यादा चौड़ी नहीं मालूम पड़ती, तो उन्होंने बतलाया कि इसकी धार अधिक गहरी और तीक्ष्ण है। सिंधु-तटसे हमें पहाड़ियाँ मिलने लगीं। यहींसे पहिले-पहल मैंने रजत राशि जैसे हिमालयके हिम-शिखर देखे। मौसी कहती थीं कि वहाँ देवता और अप्सराएँ वास करती हैं। अभी इसके सच-झूठके बारेमें कोई निर्णय देनेका मुझमें क्षमता नहीं थी।

सिंधु पार हो पुष्कलावती (चारसद्दा) होते कई दिनों बाद हम पुरुषपुर पहुँचे। देवपुत्रके प्रासाद बहुत सुन्दर थे, मूर्त्तियाँ और चित्र तो मैंने अभी तक वैसे देखे ही नहीं। पीछे समझमें आया कि गंधार मूर्त्तिकला यवनकला-कारोंके सहयोगकी देन है। नगरकी वीथियाँ और चौरस्ते बहुत प्रशस्त थे। मंदिरोंकी तो कोई गिनती ही नहीं थी। हम वहाँ कनिष्क महाविहारमें दर्शन करने गये। पिताजीने बतलाया कि अशोकके तीनसौ साल बाद उन्हींकी तरहका एक दूसरा बुद्ध-भक्त राजा कनिष्क हुआ, पुरुषपुर उसकी राजधानी

थी। उसीने स्वर्ण-रत्न-जटित इस महाचैत्य और विहारको बनवाया। कनिष्कने पाटलिपुत्र और आगे तकके देशोंको विजय किया था। भगवान्का यह भिक्षा-पात्र—जिसे इस रत्न-सुवर्णसे जगमगाते मंदिरमें हम देख रहे हैं—पहिले लिच्छवियोंकी राजधानी वैशालीमें था। कनिष्कने अपने सेनापतिको आज्ञा दे रखी थी, कि भिक्षा-पात्र और एक विद्वत्-श्रेष्ठ भिक्षुको वहाँसे लाना। सेनापति इस पात्रको यहाँ लाया और जो विद्वत्-श्रेष्ठ गंधार आए थे, वह थे साकेतक आर्य सुवर्णाक्षीपुत्र महाकवि अश्वघोष। उस अवस्था में तातकी सारी बातें मुझे स्पष्ट नहीं मालूम होती थीं। किन्तु पीछे प्राचीन-ग्रंथ राशिमें जब मैं आकंठ निमग्न हुआ, तो सभी बातें मानस-नेत्रोंके सामने साकार हो उपस्थित होने लगीं। साठ साल बाद जो बातें मैं स्मृतिसे इस समय लिख रहा हूँ, इसमें हो सकता है, बहुतसा पीछेके ज्ञानका भी प्रभाव हो।

कनिष्क-विहार और भिक्षा-पात्रके दर्शन और पूजाकेलिए हम कितनी ही बार गए और उससे भी ज्यादा समय तात आर्य असंगकी सेवामें बिताते थे। आर्य-असंगका नाम पाटलिपुत्रके अशोकाराम तक पहुँच चुका था। उनकी विद्या अगाध थी और स्वभाव तो बालकों जैसा सरल। सत्तरसे ऊपरके हो चुके थे, केश-दाढ़ी मुड़े रहनेसे वह तो वृद्धपनको प्रकट नहीं कर सकते थे, लेकिन उनके चेहरेपर कोई झुर्री नहीं थीं। हँसीकी क्षीण रेखा उनके होठोंपर सदा नाचती रहती थी। उनके तप्त-कांचन-गौर शरीरपर अरुण चीवर (भिक्षु-वस्त्र) बाल-सूर्यसे लिपटी उषा जैसा मालूम होता था। जैसे ही वह अपनी कुटीसे बाहर परिवेण (आँगन)में आकर बैठते, विद्वान् भिक्षु और गृहस्थ उन्हें घेरकर बैठ जाते। तात और दूसरे श्रोता उनसे बुद्ध और यवन (यूनानी) दर्शनकी बारीक-बारीक बातें पूछते। मैं उसे अभी समझने लायक़ नहीं था, लेकिन मैं भी वहाँ बैठें ऊबता नहीं था। आर्य असंगने पहले ही दिन वंदना करते वक्त मुझे पास बुलाया, मेरे सिरपर हाथ फेरा और पिताको संबोधन करके कहा—"उपासक सेनापति! यह तुम्हारा पुत्र मेधावी जान पड़ता है, इसे ख़ूब पढ़ाना।"

तातने अंजलि बाँधकर कहा—"आर्य! आप ही वत्स जयको अपने चरणोंमें रखें।"

"मैं ले लेता सेनापति ! किन्तु अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ। मेरे पास जो समय ध्यान और चिन्तनके बाद बचता है, वह तुम्हारे जैसे उपासक ले लेते हैं। वत्स जयके अध्ययनमें बहुत विघ्न होगा।"

"आर्यके चरणोंमें रहनेसे यह बहुतसी बातें सीख लेगा"

"नहीं, इसका बहुत काल-क्षेप होगा। मेरे अनुज वसुबंधुको तुम जानते ही हो!"

"हाँ, आर्य, जंबूद्वीपमें कौन है, जो आचार्य्य बसुबंधुको न जानता। मैंने तक्षशिला, और पुरुषपुरमें भी पता लगाया, वह यहाँ नहीं हैं क्या।"

"हाँ, वह प्राची (पूर्व देश) में गए हैं। शायद पाटलिपुत्र या साकेतमें होंगे। उनको यह मिथ्या विश्वास हो गया है, कि किसी चक्रवर्त्ती-वंशमें एक धर्माशोक पैदा कर देनेसे तथागतका शासन फिर पाँच सौ बरसों तक खूब फूले-फलेगा।"

"चक्रवर्त्ती-वंशके आश्रयसे!"

"हाँ, मैं समझता हूँ कि बुद्धका धर्म चक्रवर्त्तियोंके हाथमें जाकर निर्बल और मलिन हो जायेगा। वह बहुजन-हिताय है। तुमने तो तथागतकी वाणीमें पढ़ा होगा कि राजा पेदा कैसे हुआ? प्राचीन कालमें राजा नहीं होता था, जन (जनता) स्वयं अपना सारा प्रबंध करता था, जैसे आज भी तुम यौधेय लोग करते हो, जैसे तथागतके समयमें लिच्छवि करते थे। लोगोंने धन बटोरना शुरू किया, ग़रीब-अमीरका भेद पैदा किया। गाँवोंके पास गड्ढियाँ देखी हैं न?"

"हाँ"।

"वह इसीलिए होती हैं कि उनसे मिट्टी निकालकर ऊँचे-ऊँचे घर खड़े किये जाते हैं। ठीक इसी तरह धनीके पास धन आकाशसे नहीं टपकता। नौ-सौ निन्नानवें मानवोंके मुँहकी रोटी, तनका कपड़ा, और उनकी सारी कमाई छीनकर ये बड़े-बड़े प्रासाद खड़े होते हैं, ये स्वर्ण-रत्नके दीपक जलते हैं, ये दुकूल, चीनांशुक और पाण्डु-कम्बल* (दुशाले) पहने जाते हैं। जिनका सारा धन, सारा वैभव बहुजन (साधारण जनता)को दुखी-दरिद्र बनाकर प्राप्त होता है, वह तथागतके बहुजनहिताय धर्मका क्या उपकार करेंगे? अपने प्रासादोंकी तरह मणि-मुक्तासे जगमग करते एकाध चैत्य, एकाध प्रतिमा-गृह, एकाध विहार वह ज़रूर बनवा सकते हैं। कनिष्कके वंशने तीन सौ सालमें एक-एक करके बहुतसे

सुन्दर-सुन्दर विहार बनवा दिये हैं। आज शायद पुरुषपुरके राजप्रासादोंमें उतना हीरा-मोती नहीं है, जितना कि तुम इन विहारोंमें देख रहे हो। लेकिन तथागतका धर्म क्या हीरा-मोतीके लिए था?"

"नहीं आर्य! बहुजनहिताय था।"

"ठीक कहा सेनापति! मैं यही सोचा करता हूँ, कि तथागतका धर्म जो यह राजाओंके अंचलमें बँध गया है, उसे कैसे फिर बहुजनहिताय बनाया जा सकता है। तथागतने लिच्छवि-कुमारोंके राज-भोगसे अम्रपाली गणिकाके भोजनको अच्छा समझा। क्यों?"

"क्योंकि भगवान् ऊँच-नीचके भेदको हटाना चाहते थे।"

"केवल भिक्षुओं ही में नहीं गृहस्थोंमें भी। भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाके चारो संघ इसीलिए स्थापित हुए थे, कि वह तथागतके दिखलाए मार्गपर चलेंगे, लेकिन आज क्या है!"

"उपासक-उपासिका उसी तरह जात-पाँतको मानते हैं, जैसे ब्राह्मणोंके श्रावक (शिष्य)।"

"हाँ सेनापति! तथागतके श्रावकोंने राजाओंका आश्रय लेनेमें धर्मकी अभिवृद्धि समझी, जिससे वह बहुजनहिताय नहीं रह गया। तथागतके श्रावकोंने नहीं समझा, कि इस चतुर्विध संघको भगवान्‌ने समुद्र कहा है, जहाँ सभी नदियाँ भेद-भाव मिटाकर एक हो जाती हैं।"

"लेकिन आर्य! ब्राह्मण उसे चलने दें तब न?"

"यदि सेनापति! भगवान ब्राह्मणोंका डर करते, तो ऋषिपतन (सारनाथ) में धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन (प्रथम उपदेश) न करते। तथागतका धर्म जो भारत, चीन, पारस, यवन और दूर-दूरके देशोंमें फैला, वह ब्राह्मणों या किसी राजाकी कृपासे नहीं; बल्कि अपने भीतरकी सचाईसे। उसके भीतर प्राणि-मात्रके लिए प्रेम था, ज्ञान-प्रकाश फैलानेकी लगन थी, और बहुजनके उपकारकी भावना थी, जिसने तथागतके धर्मको पृथ्वीके कोने-कोनेमें पहुँचाया। लेकिन, आज तथागतकी जन्मभूमिमें क्या है? यदि इन विहारों, उनके सोने-रूपे, हीरे-मोती और दानमें प्राप्त अनेक ग्रामोंको देखो, तो ज़रूर कहोगे कि

तथागतका धर्म खूब फूला-फैला हुआ है, लेकिन जड़में घुन लग गया है। हम कोई बहुजनहिताय काम नहीं कर रहे हैं, हम बासी कमाई खा रहे हैं।"

"तो कोई रास्ता भी है आर्य?"

"रास्ता! हाँ रास्ता यही है, बोधिसत्त्वोंका रास्ता—महायान—मनुष्यको अपने सुख, अपने निर्वाणकेलिए नहीं दौड़ना चाहिए, उसका जीवन-प्राण बहुजनहिताय होना चाहिए। जबतक एक भी प्राणी, एक भी मानव दुःख में है, बन्धनमें है; तब तक हमें निर्वाण नहीं चाहिए, हमें स्वर्ग नहीं चाहिए। तबतक हमारा स्थान आर्तों, दुखियों, दीनोंके बीच है। भगवान्‌ने अपने धर्मको 'एहिपश्यिक' कहा है, उसका गुण यहीं इसी दुनियाँमें दिखाई देना चाहिए। दुनियाका बहुजन दुखी है। राजा अपने रनिवासोंको पाँच सौकी जगह हज़ारसे भरने और भोग-ऐश्वर्यमें चूर होनेकेलिए लूट-खसूट मचाते हैं, इसीको कहते हैं दिग्विजय।"

"तो आर्य! राजतन्त्रका आप पसंद नहीं करते?"

"यदि तथागतको राजतन्त्र पसंद होता, तो अपने पीछे किसीको निरंकुश, निर्भ्रान्त, गुरु छोड़ जाते। उन्होंने संघको अपना स्थानापन्न बनाया!"

"लेकिन आर्य! अबतो हमारे गणोंसे दूरके रहनेवाले भिक्षु और उपासक यह भी नहीं जानते, कि राजाके बिना भी राज-कार्य चल सकता है!"

"यही ब्राह्मणोंका जादू है। यह राजाके साथ मिलकर बहुजनकी कमाईके लूटनेके सिवा और कुछ नहीं है। यद्यपि आज भी कितने ही राजा अपनेको बुद्धका भक्त कहते हैं, लेकिन उनमें ब्राह्मण-भक्ति ही ज्यादा है।"

"ब्राह्मण-भक्त और गो-भक्त।"

"जो ब्राह्मण-भक्त बनेगा, उसे गो-भक्त बनना ही पड़ेगा" कहते हुए आर्य असंग हँस पड़े! श्रोताओंने भी उनका साथ दिया। फिर उन्होंने वार्त्तालाप आरंभ किया—"हँसना नहीं चाहिए, यह रोनेकी बात है, विशेषकर जबकि बहुजन और उनकी आनेवाली हज़ारों पीढ़ियोंके दुख-सुखका प्रश्न हो। मानवको मिथ्या-विश्वासमें डुबा पशु बना थोड़ेसे लोग सुख-चैन कर सकते हैं, किन्तु यह मानव-हृदयके लिए कलंककी बात है। यवन, शक आदि जब हमारे देशमें आए, तो जानते हो ब्राह्मण क्या कहते थे।"

"क्या कहते थे आर्य !"

"म्लेच्छ कहते थे। तथागतके श्रावकोंने अपने गुरुके वचनको माना। उनके साथ प्रेम और सम्मानका बर्त्ताव किया। वह तथागतकी शरणमें आए, इस देशमें बस गए और जहाँ-जहाँ तथागतकी चरण-धूलि पड़ी थी, वह उनके लिए पवित्र स्थान बन गया। स्थविर नागसेनके शिष्य यवनराज मिलिन्दने बड़े-बड़े विहार बनवाए। शकराज कनिष्कने कितना उत्सर्ग किया, यह तुम तक्षशिला और पुरुषपुरके विहारोंके वैभवको देखकर जान सकते हो। अन्तमें ब्राह्मणोंने म्लेच्छ कहनेकी भूलको समझा, दक्षिणाका लोभ उनके सिरपर भी सवार हुआ। उन्होंने नये-नये श्लोक गढ़े और कहा कि यह यवन, शक आदि विदेशी जातियाँ क्षत्रिय आर्य हैं, जो ब्राह्मणोंके दर्शन न होनेसे संस्कार-भ्रष्ट हो गई थीं।"

"और अब तो आर्य्य ! उज्जयिनीका क्षत्रप-वंश शक-म्लेच्छ नहीं, बल्कि शक-क्षत्रिय है।"

"हाँ, तो तथागत-श्रावकोंने राजाओंका पल्ला पकड़कर धर्मकी अभिवृद्धि चाही, लेकिन अब वह पासा ब्राह्मणोंके हाथमें चला गया है। तथागत-श्रावक मानव-समानताकी बात कर सकते थे, किन्तु किसीको उच्च वर्ण ब्राह्मण ही दे सकते थे। इसलिये राजा-सामन्त ब्राह्मणोंके हाथमें चले गये। यदि तथागत-श्रावकोंने बहुजनहिताय इस बोधिसत्त्व पथको न अपनाया, तो तथागतका शासन (धर्म) इस भूमिपर नामशेष रह जायेगा।"

पिताके साथ मैं बराबर आर्य असंगके पास जाता और उनकी बातोंको सुनता था। लेकिन यह मैं नहीं कह सकता, कि ऊपर मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें कितना अंश बाल्य-स्मृतिका है और कितना पीछे पढ़े आर्य असंगके ग्रंथोंका। इस यात्राका एक प्रभाव तो ज़रूर हुआ कि मेरे दिलमें आर्य असंगके विचारों और तथागतके उपदेशोंके ज्यादा जाननेकी जिज्ञासा पैदा हो गई। तातने भी मुझे प्रोत्साहित करना शुरू किया। आर्य असंगने उनसे कहा—"वसुबंधु प्राचीमें हैं। उनके ही पास बच्चेको भेज दो।" हाँ एक बात जो उन्होंने कही थी, वह मेरे मनपर पत्थरकी रेखाकी तरह अंकित होगई, वह थी—किसीकी बातको तब तक मत मानो, जब तक तुम्हारे अनु-

भव और बुद्धिकी कसौटीपर वह खरी न उतरे।" यह वाक्य समयके साथ धूमिल होनेकी जगह मेरे सामने और स्पष्ट होती गयी।

उस समय द्राक्षा पकी हुई थी। सुनहली लंबी-लंबी मृद्वीका जितनी देखने में सुन्दर उतनी ही खानेमें मधुर थी। मैंने एकाध बार पाटलिपुत्रमें गांधारी सरस द्राक्षाको खाया था, मगर जो स्वाद द्राक्षा-लताओंकी छायामें खड़े हो गुच्छकोंसे तोड़-तोड़ कर मुँहमें डालनेमें आता था, वह छै महीनेकी बासी अध-सूखी द्राक्षामें कहाँ मिल सकता था। लाल-लाल उदुम्बर (इंजीर) और कितने ही ऐसे भी गंधारके फल खाए, जिनके वृक्षोंको मैंने यहाँ पहिले-पहल देखा। यह तो नहीं कह सकता कि यौधेय-भूमिसे गांधार-भूमि मुझे अधिक पसंद आई, किन्तु वहाँके फल, वहाँका जल, बहुत सुस्वादु ज़रूर मालूम हुआ। पुरुषपुरमें जाकर मुझे कई नई बातें मालूम हुईं, मेरी दृष्टि और विशाल हो गई। वहाँकी बीथियोंमें घूमते नाना देशोंके नर-नारियों, उनकी रंग-विरंगी पोशाकों, भिन्न-भिन्न मुख-मुद्राओंको मैं बड़े ध्यानसे देखा करता था। एक दिन मैंने आरक्त नारंग-वर्ण मुँहवाले कुछ नर-नारी देखे। खाली रंग ही होता, तो मेरा ध्यान उधर आकर्षित न होता, लेकिन मैंने देखा कि स्त्रियोंकी तरह उन पुरुषोंके भी मुखपर मूँछ-दाढ़ी नहीं थी। आँखोंकी जगह एक पतली सफ़ेद काली रेखा और गालकी हड्डियाँ ज्यादा उभरी हुई थीं। उनका वस्त्र केवल चर्मका था, जिसमें बाल नीचेकी ओर थे, हाँ सिरकी टोपीका बाल बाहर दिखाई पड़ता था। मालूम हुआ, ये हूण हैं और साठ योजन दूरसे व्यापारके लिए आए हैं। पुरुषपुरमें पारसीक बहुत थे। देवपुत्रशाही उस वक्त रापसीक शाहंशाहके दरबारमें गए थे, इसलिए हम उनको नहीं देख सके।

पुरुषपुरसे हम फिर लौटकर तक्षशिला आये। फिर कितने ही दिनोंकी यात्राके बाद हमारा सार्थ अग्रोदका पहुँचा।

(४)

शिक्षा

वर्षा आनेसे पहले मैं पाटलिपुत्र पहुँच गया था। अज्जुकाने गन्धार-यात्रा के बारे में बहुत पूछा, और उसको इसका बहुत अफ़सोस हुआ, कि

पहिले नहीं मालूम हुआ, नहीं तो धर्मराजिका और पात्र-धातुके पूजनकेलिए उपायन भेजती। मैंने उससे कहा कि तातने तक्षशिलामें दीप-दानकेलिए अक्षयनीविका दान दिया है, उसके पुण्यमें अज्जुका और मेरा नाम भी पत्थर पर खुदवा दिया है। मुझे यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ, कि आचार्य वसुबंधु वर्षा-वासकेलिए अशोकाराममें ही आये हैं। मैंने अज्जुकासे आर्य असंगके संग तातके वार्त्तालापका ज़िक्र किया और उससे बड़ी मिन्नतकी कि मुझे आचार्य वसुबंधुके पास पढ़ने को बैठा दे। अज्जुका कई बार आचार्य वसुबंधु का दर्शन कर चुकी थी, उपदेश भी सुन चुकी थी। उसके दिलमें आचार्यकी विद्या और स्निग्ध बर्त्तावकेलिए बड़ा सम्मान पैदा हो गया था। परमभट्टारक से जब उसने आचार्यकी प्रशंसा की, तो उन्होंने ताना मारते हुए कहा—"तू तो वसुबंधुकी शिष्या हो ही गई, क्या घर भरको उनका चेला बनायेगी।" लेकिन परमभट्टारक भी भीतर ही भीतर आचार्यके भक्त थे, हरिषेणने उनको महाकवि बतलाया था और दूसरे आस्थान-पंडितोंमेंसे किसीने उनको महान् तार्किक और किसीने सर्व-शास्त्र-निष्णात कहा था। परमभट्टारक स्वयं भी उनके पास गये और उन्होंने उनसे पाटलिपुत्रमें रहनेका बड़ा आग्रह किया।

मेरे पढ़नेकी बातका जवाब अज्जुकाने एक दिन नहीं दिया। सोचती रही, तातका यही एक पुत्र और मेरा एक ही छोटा-सा भाई, कहीं वह आचार्यकी संगतिसे भिक्षु न बन जाय। लेकिन वह यह भी जानती थी, कि आचार्य जैसा गुरु नहीं मिलेगा। दूसरे दिन अज्जुका मुझे अपने साथ प्रातराश करा रही थी, तो मेरे दिलमें बड़ी चिन्ता थी, सोचता था, कहीं अज्जुका मेरी प्रार्थनाको अस्वीकार न कर दे। मैं इसीलिए उससे कुछ पूछ नहीं रहा था। उसने स्वयं कहा—

"तात जय! तुम आचार्यके पास विद्या पढ़ना चाहते हो?"

मैं अपने गालको अज्जुकाके कंधेपर रखकर कुछ उतावलेपनसे बोल उठा—"तो मेरी अज्जुका! तू आज्ञा दे रही है? मैं ज़रूर पढ़ूँगा। तातने भी कहा है।"

"हाँ, वत्स! मैंने सोच लिया। विद्या पढ़नेके लिए ऐसा गुरु नहीं मिलेगा। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा यह नटखट भायर (भाई) देव भी तुम्हारे

साथ पढ़ा करे। मैं आचार्यसे जाकर प्रार्थना करूँगी; मुझे आशा है, वे स्वीकार करेंगे।"

अज्जुका उसी दिन आचार्यके पास गई। आचार्य एक जगह बँध जाने के लिए तैयार नहीं थे; तो भी उन्होंने बात मान ली। अज्जुकाने भी कहा—"भन्ते! आपको मैं एक जगह बाँधकर नहीं रखना चाहती। आप चाहे यहाँ अशोकाराममें रहें या साकेतके कालकाराममें, अथवा वैशाली, राजगृह या और किसी भी विहारमें रहें। मेरा अनुज जय यौधेय और पुत्र चन्द्रगुप्त आपके अन्तेवासी रहेंगे। संभव है आपकी संगतमें रहकर ये दोनों बुद्ध-शासनके लिए कुछ सहायक सिद्ध हों।"

आषाढ़-पूर्णिमा आई। वर्षोपनायिकाके महा-दानके साथ वर्षा आरम्भ हुई, हम दोनों भी उसी दिनसे आचार्यके पास पढ़नेके लिए जाने लगे। दस वर्षके बच्चोंके लिए जितना पढ़ा होना चाहिए, हम उससे कुछ अधिक ही पढ़ चुके थे। हाँ, हमारी पढ़ाई अधिकतर मागधी (प्राकृत) गद्य-पद्य, गणित, और सुलेखकी हुई थी। संस्कृतका हमारा ज्ञान बहुत अल्प था। थोड़ा-बहुत बोल-चाल तो लेते थे, मगर पुस्तकें कठिन मालूम होती थीं, आचार्यने हमसे पढ़ी हुई विद्याके बारेमें पूछा। कितने ही समय तक उन्होंने हमारी रुचिको जाननेका प्रयत्न किया।

बड़े रोचक ढंगसे हमारी शिक्षा शुरू हुई। उन्होंने "सप्तकुमारिका-वदान" आदि कितनी ही कथाएँ हमारे लिए लिखीं। हम उन कथाओंके पढ़नेमें परिश्रम बिल्कुल ही अनुभव नहीं करते थे। कितने दिनों तक तो हम समझते थे कि ये कथायें किसी पुरानी पोथीकी हैं, यद्यपि हमारे सामने नये ताल-पत्र, और ताज़ी स्याहीकी पोथी थी कितनी ही कथाओंमें जहाँ-तहाँ सुन्दर गद्य और मधुर पद्य थे। पीछे मालूम हुआ कि आचार्यकी यह नवीन कृतियाँ हैं, जो हमारे ही लिए लिखी गई हैं। अज्जुका तो नये अवदानों (कथाओं) को पढ़नेके लिए हमसे भी ज़्यादा उत्सुक रहती थी। कथा ही नहीं बड़े सुन्दर उपदेश रहते थे और भाषा-लालित्य भी। अज्जुकाने लेखकोंकी सेना बैठा दी और इन अवदानोंको लिखवाकर पाटलिपुत्र और बाहरकी बहुतसी सामंत-नारियों तथा अग्र-श्रेष्ठि-, सार्थवाह-, कुलिक-पत्नियोंके पास भेजती थीं।

महादेवीके पास उनकी ओरसे अवदानोंके लिये बार-बार प्रार्थना आती थी। हमारे पहिलेके दो-तीन वर्षोंके पठनके समयमें ही आचार्य वसुबंधुकी महिमा अंतःपुरके अन्तस्तम कुहरों तक पहुँच गई थी। आचार्य तर्क-कर्कश पांडित्यके लिए प्रसिद्धि पा चुके थे, किसीको यह विश्वास नहीं था कि उनकी लेखनीसे ऐसी सरस-सरल कृतियाँ भी प्रसूत हो सकती हैं।

भाषा सरल होनेसे अब मुझे संस्कृत समझना आसान हो रहा था, और आचार्य बीच-बीचमें व्याकरणके नियमोंको इस ढंगसे बतलाते थे कि उसमें रूखापन नहीं रहता था। मैं कभी-कभी संस्कृत और मागधीके शब्दोंकी तुलना करता था और स्वयं दोनोंके उच्चारणोंके भेदको पकड़ना चाहता था। आचार्य इसे देख रहे थे। उन्होंने एक दिन ताड़-पत्रपर लिखी कुछ कथाएँ देते हुए कहा—"लो, इसे पढ़ो, यह आजसे ६०० वर्ष पुरानी मागधी है। पहिले तो मैं अकचकाया—"यह कैसी मागधी है।" लेकिन कुछ ही कहानियोंके पढ़नेके बाद मैं समझने लगा। आचार्यको कहीं ही कहीं थोड़ी सहायता करनी पड़ी। मैं कितने दिनों तक सोचता रहा, फिर एक दिन आचार्यके सामने बोला—

"भन्ते! मुझे जान पड़ता है, यह भाषा हमारी मागधीसे भी नज़दीक है और संस्कृतसे भी।"

आचार्यने मुस्कुराते हुए कहा—"ठीक कहा वत्स! यह दोनोंके बीचकी भाषा है।"

"भदन्त! लोग नई-नई भाषाएँ क्यों बनाते हैं? संस्कृत थी ही, हमारी भाषा है ही, फिर यह तीसरी भाषा गढ़नेकी क्या आवश्यकता?"

"तुम समझते हो कि कोई आदमी बैठकर नई भाषा गढ़ लेता है। नई भाषा कोई एक या दस आदमी मिलकर नहीं गढ़ते, उसे पीढ़ियाँ बनाती हैं। यदि तुम आजसे दो सौ वर्ष पहिलेकी अपनी यौधेय दादीसे बात करते तो उसकी भाषा वही नहीं होती, जो तुम्हारी माँ बोलती है।"

"तो क्या भन्ते! भाषाएँ बदला करती हैं?"

"वत्स! दुनियाँकी कोई वस्तु ऐसी नहीं जो बदलती न हो। मैं कभी छोटा-सा बच्चा था, फिर तुम्हारी तरहका किशोर हुआ, फिर ओठोंपर भूरे-भूरे रोमोंकी रेखा उठी, शरीर पहिलेसे बड़ा और अधिक बलिष्ठ हो गया। फिर,

मालूम नहीं कैसे, अँधेरमें छिपे बुढ़ापेने धीरे-धीरे पैर बढ़ाते मुझे आ दबाया। आज देख रहे हो, मेरे मुँहमें दो-चार ही दाँत रह गए हैं। कपालके ऊपरी केश उड़ गए। आँखोंकी ज्योति पहिले जैसी नहीं रही। अधिक देर तक कुछ पढ़ नहीं सकता, अब कमर लटकना बाक़ी है। बचपनसे बुढ़ापे तक कितना परिवर्त्तन!"

"भन्ते! यदि बुढ़ापा न होता, तो कैसा अच्छा होता?"

"क्या मतलब? तो क्या तुम सदा किशोर, तरुण या शिशु ही रहना पसंद करोगे?"

"शिशु तो बहुत परतंत्र होता है, किशोर भी मैं रहना नहीं चाहता, क्योंकि उसमें भी शरीर निर्बल रहता है।"

"तो तुम चिर-तरुण रहना चाहते हो?"

"हाँ!"

"और तरुण ही पैदा होना भी चाहते हो?"

मैं कुछ सोचने लगा। आचार्यने कहा—"तरुण पैदा होनेपर माताकी आवश्यकता नहीं होती। तरुणका शरीर जननी-गर्भमें कैसे रह सकता है?"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि तब किसीकी माता भी नहीं रहती।"

"हाँ, न किसीको माताका स्नेह मिलता न पिताका वात्सल्य, न सहोदर-सहोदरियोंका वह अकृत्रिम स्नेह, न बचपनके खेल और खिलौने, नहीं सालोहित (रक्त-संबंधी) बंधुओंका मधुर सौहार्द्र।"

"तो दुनियाँ बहुत नीरस होती भन्ते!"

"हाँ ऐसी नीरस, जिसमें स्नेहके लिए बहुत कम स्थान रह जाता फिर माता-पिता पुत्र पैदा करनेकी लालसा न रखते। फिर नई पीढ़ियोंके आनेकी क्या आवश्यकता? जो नर-नारी अनन्तकालपूर्व भूमिपर आ गए, वही अनंत काल तक बने रहते। फिर यहाँ न हम आए होते न तुम। और वह चिर-तारुण्य अकेले ही नहीं रहता, संसारकी हर एक वस्तुको चिरंतर, अचल रहना पड़ता।"

"अचल!"

"हाँ, अचल होनेका नियम एक तरुणाई ही पर थोड़े लगता। आज परि-

वर्त्तन विश्वका विधान है, तब अपरिवर्त्तन विश्वका विधान होता, फिर ग्रीष्म ऋतु ही एकमात्र रहती या वसंत अथवा वर्षा ही।"

"तो भन्ते ! कहीं नवीनता ही नहीं दिखलाई पड़ती ?"

"और सौन्दर्य भी नहीं दिखलाई पड़ता, नवीनताका ही नाम सौन्दर्य है, नवीनता ही मनको मोहती है। हेमंतके बाद वसंत आता है, नये फूल, नई पत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं। कुंजोंमें पक्षिगण कलरव करते हैं। इन सब चीज़ों से वंचित होना पड़ता।"

"लेकिन परिवर्त्तन न होता तो हम मरते भी नहीं।"

"मृत्युसे डरते हो ?"

"अपनेलिए नहीं डरता, किन्तु अपने प्रिय बन्धुओंका बिछोह कितना असह्य होता है ?"

"मृत्युका यह एक अप्रिय रूप है, लेकिन मृत्यु न हो तो नया जीवन भी न हो। तुम मरे हुओंकी परवाह करते हो ? यह जो नये बन्धु पैदा होते हैं जो नये मुखड़े नये हाथ-पैर और उनकी नई कृतियाँ हमारे सामने आती हैं, क्या यह हमारे लिए कम लाभ है।"

"तो भी भन्ते ! मृत्यु प्रिय वस्तु नहीं है।"

"मैं भी कहता हूँ कि अपने स्वरूपमें मृत्यु प्रिय वस्तु नहीं है, किन्तु वह नवजीवन प्रदान करनेका काम करती है। अपने स्रोतमें नदी बहुत क्षीण पतली रेखा जैसी होती है। आगे बढ़नेके साथ उसकी धारा अधिक विस्तृत, अधिक गम्भीर होती जाती है। यदि नदी अपने स्रोतपर ही रह जाती, तो वह वही पतली क्षीण धारा रहती, और प्रवाह न रहनेसे शायद गन्दी धारा भी।"

"प्रवाहसे ही नदी शुद्ध होती, यह मैं देखता हूँ।"

"संसार अपने संसरण, प्रवाह, परिवर्त्तनसे ही अधिक विचित्र, अधिक मोहक बनता है। भूख न लगती तो मनुष्यको सभी व्यंजन अप्रिय हो जाते। परिवर्त्तन विश्वके कण-कणमें है, हममें-तुममें भी है। हमारा मन हमारा अन्तस्तल क्षण-क्षण बदलता रहता है। यही विश्वका नियम है और यह बुरा नहीं है। क्या मागधी संस्कृत से कम मधुर है ?"

"नहीं भन्ते ! मुझे तो वह अधिक सरस मालूम होती है। खासकर भास, सौमिल्ल आदिकी सुन्दर मागधी कविताएँ बड़ी मोहक होती हैं।"

"इसीलिए परिवर्त्तन कोई बुरी चीज़ नहीं। परिवर्त्तनके नियमको हम हटा नहीं सकते। यदि हम उसका स्वागत करते, जैसे वसंतका, जैसे आम्रकी नव मंजरी और भ्रमरोंके गुञ्जनका, तो हमें विकल और नीरस होनेकी आवश्यकता न रहती। परिवर्त्तनके नियमके कारण सबका हाथ खुला हुआ है। सभी कुछ न कुछ निर्माण कर सकते हैं। किन्तु अपरिवर्त्तनशील जगतमें किसीको कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। फिर मानवके हाथ-पैर-बुद्धि किस काम की?"

जिस वक्त् आचार्य भाषाओंके परिवर्त्तनको लेकर मुझे यह सब बातें बतला रहे थे, उस वक्त् मैं यह नहीं समझता था कि यह कोई सूक्ष्म-दर्शन है, जिसे भगवान् बुद्धने संसारको बतलाना चाहा। दुनियाँकी सभी चीज़ें बदलती रहती हैं, इस बातकी सच्चाई अब मुझे पग-पगपर मिलने लगी। मैंने अशोकके आस्थान-मंडपको देखा, उसकी बनावट आजकलके आस्थान-मंडपोंसे भिन्न है। मैंने महाबोधि वज्रासन (बोधगया)की पाषाण-वेष्टनी देखी और उसपर उत्कीर्ण नर-नारी मूर्त्तियाँ भी। उस समयकी स्त्रियाँ, वैसा ही कुण्डल नहीं पहनती थीं जैसा कि आजकी। उस वक्त्की मालाएँ दूसरी ही प्रकारकी थीं। कंकण और नूपुरकी जगह सारा हाथ और पैर चूड़ियोंसे ढँका रहता था। वस्त्र भी दूसरी ही तरहके थे, उष्णीष (पगड़ी) भी दूसरी तरहकी, और स्त्रियाँ भी सिरपर उष्णीष बाँधती थीं।

आचार्य हमें महाकवि अश्वघोषके महाकाव्य बड़े चावसे पढ़ाते थे। 'बुद्ध-चरित' और 'सौन्दरनन्द' पढ़नेमें हमें बड़ा रस आता था। मेरा कण्ठ बहुत मधुर था। परम भट्टारक स्वयं चतुर वीणावादक और संगीतके बड़े प्रेमी थे; इसलिए राज-प्रासादमें संगीत महोत्सव रोज़ ही होता रहता था। मेरे भीतर भी संगीतका प्रेम था और वीणापर अधिकार रखनेका मैं पूरा प्रयत्न करता था। तेरहवें सालकी बात है। मैंने वीणा बजाकर एक दिन एक बहुत सुन्दर गाना गाया था। देखा कानों-कान चर्चा हो रही है। डर लगने लगा कि कहीं बात परम भट्टारक तक न पहुँच जाय फिर गानेकी फ़रमाइश

पूरा करनेमें ही सारा समय लग जाय और आचार्य वसुबंधुके अपार ज्ञान-राशिसे जो लाभ मैं उठा रहा हूँ, उससे वञ्चित रह जाना पड़े। तबसे मैंने चंद्र और कुछ थोड़े और समवयस्क लड़के-लड़कियोंके सिवा किसीके सामने, गान-वाद्य नहीं करता। हाँ, मैं पाटलिपुत्रके एक गुणी संगीताचार्यके पास जाकर अपने अभ्यासको बराबर बढ़ाता रहा।

जिस वक्त मैं पुरानी और नई सुन्दर मूर्त्तियों और उनकी रेखाओंको देखता, तो उनकी ओर मेरा एक स्वाभाविक आकर्षण होता। चित्रोंके मोहक रंग भी मुझे अपनी ओर खींचते थे। अज्जुकाकी परिचारिका चतुरिका बड़ा सुन्दर चित्र बनाती थी। मैं उसके पास बैठकर देखा करता। वह पटको तानती, उसपर लेप लगाती, छायामें सुखाती, फिर हल्के रंगकी पतली रेखाओं द्वारा शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंको अंकित करती। फिर दिनों बैठी-बैठी तरह-तरहके रंग भरती। भट्टिनीका भाई होनेके कारण ही नहीं, मेरी सहानुभूति और सरलताको देखकर चतुरिका मुझे बहुत मानती थी। सफ़ेद पटसे कैसे सुन्दर नेत्र निकल आते हैं?— पहिले हल्कीसी लाल रेखा फिर ऊँच-नीच भाग स्फारित या अर्द्ध-मुकुलित नेत्र, उसकी पपनियाँ, प्रकाश-विन्दु युक्त तारक और सूक्ष्म रक्त-तंतुओं से सजी नेत्रकी मोहक श्वेतिमा। मैं देखता था, कैसे शून्य स्थानपर वह सौन्दर्यकी सृष्टि कर रही है। अंकनके वक्त वह तन्मय हो जाती थी, उसे सब कुछ भूल जाता था। प्रमदवन, क्रीड़ा-पर्वत, धारागृह, कहीं भी मेरे निवास जैसा निश्चिन्त स्थान उसे नहीं मिल सकता था। वहाँ कोई उसकी सखी भी छेड़नेके लिए नहीं आती। मैं कभी-कभी अवसर पाने पर प्रशंसाके कुछ शब्द कह देता। उसके चित्रोंको देखकर मुझे भी कुछ लालसा होने लगी, लेकिन मैं समझता था, मेरी तूलिकामें चतुरिका जैसी शक्ति शायद नहीं होगी। तो भी मैं यह चाहता था, कि चतुरिकाके दिखलाने लायक़ मैं भी कुछ सृजन करूँ। मैं ऐसी चिन्तामें कई शिल्पियोंका काम देखने गया, कुशल तक्षकोंको चंदन और काष्ठपर सुन्दर बेल-फूल और मूर्त्तियाँ बनाते देखा, दन्तकारोंको हाथी-दाँतपर सुन्दर-सुन्दर रूप अंकित करते देखा, उस समय कितने ही माथुर मूर्त्तिकार पत्थरोंपर अपना कौशल दिखला रहे थे। मैंने सोचा, इन्हीं तीनों शिल्पोंमेंसे किसीपर अधिकार प्राप्त करके

चतुरिकाको चकितकर सकूँगा। मैं छिप-छिपकर शिल्पाचार्योंके पास जाने लगा। आचार्य वसुबंधुके पास जो सीख रहा था, वही मेरा प्रधान लक्ष्य था, किन्तु बाक़ी समयको मैं चन्द्रकी तरहके खेल-कूदोंमें नहीं बिताता था। चन्द्र कितनेही महीनों तक कोशिश करता रहा, लेकिन उसने देखा कि अब मैं खास-खास ही समयमें उसका अभिन्न सहचर रह सकता हूँ। अब वीरसेन और उसकी जोड़ी बन गई थी। काष्ठपर कुछ हाथ बैठा लेनेके बाद मैंने दन्त पर काम शुरू किया और अन्तमें मुझे सबसे अच्छा लगा पत्थर की मूर्त्ति बनाना। अपनी उँगुलियोंके नीचेके पत्थरको मोमकी तरह गलाकर किसी ढंगके सौन्दर्यको अवगुंठन-मुक्त करते देख आनन्द ही नहीं बड़ा गर्व होता है। मैं चार-पाँच साल तक शामको कुछ घड़ियोंकेलिए ग़ायब रहता, लेकिन इसका किसीको पता नहीं था। जब मैं मूर्त्ति-कलामें काफ़ी आगे बढ़ चुका था, उसी समय पता लगा कि कोई यवन मूर्त्तिकार है, जो आदमी की हूबहू शकल पत्थरमें ढाल देता है। माथुर मूर्त्तिकार सुन्दर मूर्त्तियाँ बनाते थे, वस्त्रोंकी सिकुड़न और सूक्ष्मता दिखलानेमें तो और कमाल करते थे; किन्तु उनकी मूर्त्तियाँ केवल कल्पित होती थीं। वह किसीके साक्षात् चेहरेको पाषाणमें नहीं उतार सकते थे। मैं एक दिन यवन मूर्त्तिकारके पास गया। माथुर शिल्पाचार्य भी मेरे साथ थे, मैंने वहाँ परम भट्टारककी एक अपूर्ण मूर्त्ति देखी, अभी मुख ही पूरा हो पाया था, लेकिन मर्मरकी उस प्रस्तर-मूर्त्तिमें जिस तरह नासिकाका आयाम, ऊँचाई, चिबुक और कपोलोंका उतार-चढ़ाव तथा आँखों-का रूप उत्कीर्ण किया गया था, उसे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने सोचा, यदि कहीं यह कला मुझे आ जावे, तो मैं अवश्य चतुरिकाको चकितकर सकूँगा। अधिक कठिनाई नहीं पड़ी। बिना अपना असली परिचय बताये, यवन आचार्यने मेरी बनाई एकाध मूर्त्तियाँ, मेरी आयु और उत्साहको देखकर मुझे शिष्य बनाना स्वीकार किया। कुछ महीनों तक अवश्य मेरे दूसरे कामोंमें कुछ बाधा पड़ी। मैं आचार्य वसुबंधुके पाठमें सदा उपस्थित रहता, किन्तु बाक़ी समय उधर उतना ध्यान नहीं रख सका। यवन आचार्यने सामने सजीव मूर्त्ति को रखकर गीली मिट्टीसे नमूना बनाना सिखलाया। इसीमें सबसे अधिक परि-श्रम करना पड़ा। बड़ी बारीकीके साथ चेहरेके ज़रा-ज़रासे उतार-चढ़ावको

मिट्टीकी मूर्तिमें लाना पड़ता—कहींसे कुछ मिट्टी हटानी, और कहीं कुछ जमानी पड़ती। छिन्नी पकड़कर उसे पत्थरमें उतारना मेरेलिए उतना मुश्किल नहीं था। मैंने जब पहिली मूर्त्ति एक भिखमंगेकी बनाकर आचार्यसे शाबाशी पाई, मुझे बड़ा आनंद हुआ। चतुरिका एक बड़े पटपर विरहिणी और वसंत को अंकित कर रही थी। वह घटों मेरे आवासपर तन्मय होकर अपने काममें लगी रहती थी। इस समय मैंने गवाक्षके पीछे बैठ मिट्टीमें उसकी आकृति उतारना शुरू किया। एक दिन मेरे बैठकखानेमें एक संगमर्मरकी मूर्त्ति पहुँच गई। मैं उसे यकायक चकित करना चाहता था। मूर्त्ति कुछ दिनों तक कपड़ेसे ढँकी पड़ी रही। मैं कोई तरकीब सोच रहा था, आखिर कुबड़े कुरभककी याद आई। कुरभक उस वक्त चाँदनी रातमें क्रीड़ा-पर्वतकी ओर एकटक देखते खड़ा था। मैंने कहा—"क्यों अभी तक अप्सरा नहीं आई।"

कुरभक मुझसे उतना नहीं विदकता क्योंकि मैं उसके प्रति ज्यादा सहानुभूति रखता था। वह उसास ले चुप हो रहा। मैंने कहा—"कुरभक! हम दोनोंका भाग्य एक-सा ही है। तुमने जिसपर प्रेम किया, वह आकाशमें विलीन हो गई और मैंने जिसपर प्रेम किया वह निर्जीव पाषाणी बन गई।"

कुरभकने और बातें पूछनी चाही। मैं उसे अपने आवासमें लाया। सामने मूर्त्ति दिखलाते हुए मैंने कहा "यह भी एक अप्सरा है, किसी वक्त मुझसे प्रेम करती थी, लेकिन आज इस पाषाणमें स्नेह कहाँ?"

"तो भर्तृदारक! हमारी तरह तुम्हें भी अब नींद न आती होगी।"

"नींद कहाँ भद्र कुरभक! बस एक ही आशा मिली है, जिससे प्राण-धारण किये हुए हूँ—कोई सुन्दरी जब अपनी तूलिकासे इसका स्पर्श करेगी, तो वह फिर सजीव हो उठेगी। बस यही नहीं तो तुम्हारेलिए क्रीड़ा-पर्वतकी और मेरेलिए इस पाषाणीकी छाया।" कहते-कहते मेरा गला भर-सा आया। कुरभकने बहुत सान्त्वना दी और कहा भट्टारिकाके परिजनमें कई तूलिकाधारिणियाँ हैं।

"लेकिन सभी तूलिकाधारिणियोंको दिखलाकर मैं परिहासका पात्र तो नहीं बन सकता।"

"भर्तृदारक! मैं आपके कष्टको जानता हूँ, क्योंकि मैं भी भुक्तभोगी हूँ।"

"भद्र ! देखना, इस बातको किसीसे न कहना और जब मैं न रहूँ उस समय सबसे अधिक तरुण, सबसे अधिक सुन्दर तूलिकाधारिणीको लिवाकर इस मूर्त्तिका यदि तुम स्पर्श करा सकोगे, तो मैं तुम्हारे उपकारको कभी नहीं भूलूँगा।"

दूसरे दिन जब मैं बैठकके भीतर गया, तो देखा चतुरिका प्रस्तरकी मूर्त्ति को बड़े ग़ौरसे देख रही है और कुरभक उसके हाथमें तूलिका दे छुवानेकेलिए आतुर है। मुझे देखकर उसने कहा—"भर्तृदारक! तुम्हीं कहो, यह छूना नहीं चाहती।"

मैंने उसे समझा-बुझा कर बिदा किया। देख रहा था, चतुरिका कुछ पूछना चाहती है। मैं जानता था, चतुरिका क्या पूछेगी, इसलिए पहिले ही से कहना शुरू किया। "यवन चित्रकार इस मूर्त्तिको सागर-पारसे लाया था, बहुत कोशिश करनेपर उसने हज़ार दीनारमें दिया है।"

चतुरिका कितने ही दिनोंतक उसे हज़ार दीनारकी खरीदी मूर्त्ति समझती थी, फिर उसकी दूसरी सहेलियोंने पहिचान लिया। तब चतुरिकाने असली भेद जानना चाहा। मैंने बतलाया "यह तुम्हारा प्रसाद है, तुम्हींने मेरे दिलमें इस कलाके प्रति प्रेम पैदा किया, लेकिन यह रहस्य खोलना नहीं।"

"तो किसने तुम्हारी मूर्त्ति बनाई, यह पूँछनेपर क्या जवाब दूँगी?"

"यही कि मैं गंगा-तटपर सायंकालको बैठी एक नए चित्रकी कल्पनामें तन्मय थी, उस समय किसीने मेरा रूप ले लिया।"

"और यवन मूर्त्तिकारसे किसीने पूछा?"

"यवन चित्रकार पाटलिपुत्र छोड़ चुका है, उसकी चिंता मत करो।"

यद्यपि संगीत और मूर्त्ति-कलाकी ओर मेरी खास दिलचस्पी थी, किन्तु उन्हें सीखने भर ही के लिए। बाक़ी सारा समय आचार्य वसुबंधुकेलिए था। अज्जुका बड़ी प्रसन्न थी, क्योंकि आचार्य उसके सामने मेरी प्रशंसा कर चुके थे। उसने तातके पास लेख भेजा और उन्होंने देखनेकेलिए उत्सुकता प्रकट की।

(५)

राजकुल

हम दोनोंने अब पन्द्रहवें सालमें क़दम रक्खा। चन्द्रका मन साहित्य पढ़नेमें खूब लगता था किन्तु और बातें उसे रूखी मालूम होती थीं। आचार्यने अश्वघोषके नाटक—'सारिपुत्र प्रकरण' और 'राष्ट्रपाल परिपृच्छा'को जिस वक्त पढ़ाया, उसी वक्तसे चंद्रको अभिनय करनेकी धुन सवार हुई। इसकेलिये उसने 'राष्ट्रपाल-परिपृच्छा' को चुना। महीनों पर्दे तैयार होते रहे, पात्रोंके चुनावकेलिए सलाह होती रही। मैंने कहा—"वयस्य! राष्ट्रपाल तो तुम बनो।"

"और नायिका?"

"चतुरिका कैसी रहेगी?"

"लेकिन तब मैं वैराग्यका पार्ट ठीकसे अदा न कर सकूँगा।"

कितने दिनों तक तैयारी हो जानेपर एक दिन युवराज चंद्रगुप्तके प्रासादमें नाटक खेला गया। युवराज भट्टारक रामगुप्त भी पधारे थे। अज्जुकाको खबर नहीं दी गई, क्योंकि चन्द्रने नाटकमें अपनी इच्छासे कितने ही परिवर्त्तन कर उसे अधिक श्रृङ्गार-प्रधान बना दिया था। राष्ट्रपालका पार्ट मुझे लेना पड़ा। चन्द्र राष्ट्रपालका पिता था, चतुरिका नायिका और दूसरे पात्र दूसरे तरुण-तरुणियोंको दिए गए थे। महाश्रेष्ठिका पुत्र राष्ट्रपाल भिक्षुवेशमें कई वर्षों बाद अपने दरवाज़ेके सामने पहुँचा। माँने भिक्षुका कपड़ा देखते ही जल-भुन कर कहा—"इन्हीं श्रमणोंने मेरे लड़केको बहकाया, ये बड़े कठोर हैं।" वहाँ भिक्षा क्या मिल सकती थी। राष्ट्रपाल मुखकी प्रसन्नताको बिना खोये आगे बढ़ना चाहता था। उसी समय, दासी बासी दालको फेंकने बाहर आई। राष्ट्र-पालने कहा "भगिनी! यदि फेंकना ही है तो इसे मेरे पात्रमें डाल दे।" दासीने भिक्षुके पात्रमें डाल दिया। राष्ट्रपाल वहीं दीवारके पास बैठकर मिट्टीके बरतनोंसे निकालकर खाने लगा। दासीने राष्ट्रपालके परिचित स्वर सुनकर पिताको खबर दी। पिताने पहचान लिया और घर चलनेकेलिए कहा। इन सब बातोंका अभिनय मैं समझता हूँ, चन्द्रगुप्त मुझसे भी अधिक सफलतासे कर सकता था।

पार्ट बिगड़नेके डरसे मेरा दिल धक-धक कर रहा था। अन्तिम दृश्य आया, जबकि दूसरे दिनकेलिए निमंत्रित राष्ट्रपालको सोनेकी थालमें सुन्दर-सुन्दर भोजन परोसे गये। उसके सामने हीरा-मोती-सोनेकी राशि खड़ी की गई और माँने अपनी बहूसे कहा "अम्मा उस वस्त्र-आभूषण, शृङ्गार-बनाव को सजा, जिसपर मेरा बेटा मुग्ध होता था।" चतुरिका अपने इस नये नैपथ्य, नये शृङ्गारमें और भी खिल रही थी। उसने लजीले नेत्रोंसे राष्ट्रपालके पास आकर पूछा---"आर्यपुत्र! कैसी हैं वे अप्सरायें, जिनकेलिए तुम इतनी तपस्या कर रहे हो?" राष्ट्रपालने पूर्ण वैराग्य दिखलाते हुए कहा "भगिनि! मैं अप्सराओंके लिए तपस्या नहीं करता।"

जिस वक्त मैंने राष्ट्रपालकी भूमिकामें इन शब्दोंका उच्चारण किया, उस वक्त मेरा कलेजा धकसे हो गया, क्योंकि चतुरिकापर मेरा प्रेम हो चला था, यद्यपि यह प्रथम किशोरावस्थाका प्रेम था। चतुरिकाने शायद इसका कुछ खयाल नहीं किया। वह राजान्तःपुरकी परिचारिका थी। उसपर भट्टारक और भट्टारक समान पुरुषोंका अधिकार था। नाटक किसी तरह समाप्त हुआ। मुझे डर लग रहा था कि मेरा चंचल मन कहीं ज़रूर ग़लतीकर बैठेगा। चन्द्रको इस सफलतापर उतनी प्रसन्नता नहीं आई। वह अपने विचारोंको इस रूपमें प्रकट करने लगा—"जय! इन कवियोंको क्या कहा जाय, जो एक तरफ़ सौन्दर्यकी सृष्टि करते हैं, और दूसरी तरफ़ उसे पटककर खण्ड-खण्ड कर देते हैं। यदि वैराग्य ही दिखलाना था, तो इस मधुर सौन्दर्यके सृजनकी आवश्यकता क्या थी?"

"मैं भी भायर चन्द! इस बारेमें तुमसे सहमत हूँ। मैं समझता हूँ जहाँ योग-वैराग्यकी बात आवें, वहाँ सौन्दर्य-सारस्य आना ही नहीं चाहिए।"

"मैं तो समझता हूँ जय! कवियोंका ऐसा प्रयास परस्पर-विरोधी है। शायद उनका असली अभिप्राय तो भोग और शृङ्गारके चित्रण करने ही में है। वह योग-वैराग्य किसी चीज़को ढाँकनेकेलिए लाते हैं।"

"या यही क्यों न कहो, कि अगर भोग-शृङ्गारको नहीं रक्खा गया, तो कोरे योग-वैराग्यको देखनेकेलिए बहुत कम दर्शक तैयार होंगे।"

चन्द्रको इस नाटकमें आनन्द नहीं आया। उसने ऐसे नाटकको खेलने

का निश्चय किया, जिसमें जीवनकी मदिरा लबालब भरी हो और जिसका नायक वह ख़ुद हो। भास और सौमिल्लके नाटक वहाँ मौजूद ही थे। चन्द्र को 'चारुदत्त' नाटक बहुत पसन्द आया, चारुदत्तका पार्ट उसने ख़ुद लिया।

किशोर अवस्थाका अंत हो रहा था और यौवनने पहिला क़दम रक्खा था। फिर वहाँ जिधर देखो उधर नारी-सौन्दर्य दिखलाई पड़ता था। राजकुमारोंकेलिए कोई बाधा नहीं। उन्हें विवाह तक प्रणयकेलिए प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं। चन्द्रगुप्तका अपना स्वतन्त्र प्रासाद था। उसमें एकसे एक सुंदरी बीसियों परिचारिकाएँ थी। अब भला उसे वसुबंधुकी नीरस विद्याकी क्या आवश्यकता थी? वह प्रमदाओंसे घिरा, उनके मुँहसे सुनकर काव्य-नाटकका आनन्द अधिक ले सकता था। उसे अब पसंद थी मदिरा और मदिरेक्षणा। परम भट्टारक भी इसमें उसका पथ-प्रदर्शन कर रहे थे। हम लोगोंमें मज़ाक़ होता रहता था। चंद्रगुप्त कहता—"बूढ़ेको बुढ़ापेमें क्या हो गया है। अन्तःपुर हज़ारों सुन्दरियोंसे पहिले ही से भरा है, और इसपर भी नई-नई किशोरियोंको लेता ही जा रहा है।"

"परम भट्टारक नकद धर्मके मानने वाले होते हैं—'जब तक जियो तब तक मौज करो'।"

"यह बुरा नहीं है। क्या ठिकाना है, दूसरे जन्ममें राजा बननेको मिलेगा। कहीं ग़रीब घरमें पैदा हुए या दूसरी नीच-योनिमें गये, तो फिर यह आनन्द कहाँ मिलेगा? मैं तो कौटिल्यको अपना गुरु मानता हूँ।"

"अर्थात् देवताओं और परलोकके पीछे भागने वाले भारी मूर्ख हैं।"

"मैं समझता हूँ तुम ठीक कहते हो, लेकिन उसमें इतनी तो अति नहीं होनी चाहिए कि जीवनका आनन्द ही खतरेमें पड़ जाय। देख नहीं रहे हो तातको? अब राज-काज देखनेकी फ़ुरसत ही नहीं है। इसे मैं नहीं पसंद करता। भगवान् कौटिल्य भी इसे नहीं पसन्द करते।"

"तो भायर चंद्र! भगवान् कौटिल्यपर आजकल तुम भिड़े हुए हो?"

"हमारेलिए भगवान् कौटिल्यसे बढ़कर मार्ग-प्रदर्शक कोई नहीं हो सकता। एक चन्द्रगुप्तका मार्ग-प्रदर्शन उन्होंने किया था।"

"चन्द्रगुप्त मौर्यकी भाँति यह चंद्रगुप्त भी भगवान् कौटिल्यके बतलाये

रास्तेपर चलनेको तैयार है। उनकी सबसे बड़ी शिक्षा है, कि देवता, परलोक सबको चूल्हे-भाड़में जाने दो, सिर्फ़ इस दुनियाँकी फिक्र करो।"

"दुनियाँको फिक्र करना हो, तो उसमें मैं भी तुम्हारे साथ हूँ, लेकिन भगवान् कौटिल्य कहते हैं, सिर्फ़ अपनी फिक्र करो।"

"अपनी और अपनोंकी।"

"अपनोंकी तो राजा लोग खूब परवाह करते हैं, हर वक्त ताकमें रहते हैं, कि बाप कब मरेगा। बापकी चिता भी ठण्डी नहीं होने पाती, कि भाई एक दूसरेका सिर काटने लगते हैं।"

"राजलक्ष्मी बलि चाहती है। जो अपनेको सबसे योग्य साबित करता है, उसीके गलेमें वह जयमाला डालती है।"

"तो फिर दुनियाँकी फिक्र करनेंकी बात तो गई।"

"जय! तुम वसुबंधुके सारे तर्कको सीख लेना चाहते हो? लेकिन मैं समझता हूँ, दुनियाँपर तर्क शासन नहीं करता, शासन करती है तलवार।"

"हाँ, यह तो मैं देखता हूँ, कि तुम तलवारके धनी बननेकी पूरी कोशिश कर रहे हो।"

"मैं तलवारका धनी बनूँगा और पक्का धनी, चंद्रगुप्तके नामको नहीं लजाऊँगा।"

"कभी-कभी मुझे संदेह होने लगता है। जब देखता हूँ कि सूर्यास्तसे पहिले ही छोकरियाँ घेर लेती हैं और तुम चषकपर चषक उँड़ेलने लगते हो।"

"संदेह मत करो जय! चंद्रगुप्त अच्छी तरह जानता है कि चषक और सुन्दरी उसीको नसीब होगी, जिसकी दृढ़ भुजाओंमें तीक्ष्ण करवाल है। चषक और सुन्दरीका एक समय है। क्या कभी देखा समयके बाद भी चंद्र-गुप्त चषक और सुन्दरीमें लिपटा हो।"

"लेकिन, भायर! अभी तुम पन्द्रह सालके भी नहीं हुए हो इस कच्ची उम्रमें यह अति व्यसन शरीर और मन दोनोंकेलिए अच्छा नहीं।"

"अच्छा, तो तुम वसुबंधुसे तर्क ही नहीं, बल्कि उपदेश देना भी सीख रहे हो।"

"मेरी बातों को हँसी में मत उड़ा दो चन्द्र! क्या तुम नहीं जानते, पाण्डु

और दूसरे कितने ही राजा अति भोगके कारण तरुणाईमें यक्ष्माके शिकार हो गए।"

"तो तुम समझते हो कि सिर्फ़ चंद्रगुप्त ही है, जिसके किनारे तरुण सुंदरियाँ मँडराया करती हैं। राज-प्रासादमें संयमकेलिए स्थान नहीं है। यहाँकी हवा यहाँका आसमान सिर्फ़ वासनाओंसे भरा है। देखते अपनेको ! तरुणियाँ तुम्हें क्या कहती हैं—'जय सुंदर है, सबल है, तरुण है, तो भी किसी तरुणीसे खुलकर बात नहीं करता।' क्या यह लज्जाकी बात नहीं है कि तरुणियाँ किसी पुरुषको षंढ समझें। क्या तुम भिक्षु बनना चाहते हो।"

"नहीं, मैं यौधेय रहना चाहता हूँ। यौधेयोंमें अन्तःपुर नहीं होता, न हज़ारों-हज़ारों सुंदरियोंका कारागार।"

"इसे कारगार कैसे कहते हो ? सुंदरियोंको यह स्वर्गीय सुख कहाँ प्राप्त होता ? यह नन्दनवन, यह केलि-कुंज, यह स्फटिकसे चमकते प्रासाद, यह सूक्ष्म मसृण (चिकना) दुकूल, यह रत्न-सुवर्णके भूषण, यह सुगंधि और अंगराग, क्या ये वंदिनियोंकेलिए सुलभ हैं ? ऐसा होनेपर तो इन्द्रके अंतःपुरको भी कारागार कहा जायेगा।"

"यदि इनके साथ हरेकका अपना-अपना एक-एक पुरुष भी होता, तो मैं इसे इन्द्रपुर स्वीकार करता। लेकिन तुम स्वयं जानते हो, इन कर्पूरश्वेत सौधोंके भीतर कितना धुआँ जलता रहता है, कितनी मर्म-वेदना होती रहती है। इन वन्दिनियोंको निकल भागनेका कहीं रास्ता नहीं है, जहाँ जाकर वह अपने जीवन और सम्मानकी रक्षा कर सकें। राजा और समाजकी लम्बी बाँहकी पहुँचसे निकल भागना उनकेलिए असंभव है, इसीलिए बेचारी मजबूर होकर यहाँ पड़ी हैं।"

"मुझे आश्चर्य होता है जय ! मेरी तरह तुम भी इसी वायु, जल, पृथ्वी और आकाशके भीतर पले, किन्तु तुम इतने निष्ठुर क्यों हो गये ? 'निष्ठुर', यह मैं चतुरिकाके शब्दोंको दुहरा रहा हूँ। वह तुमपर बहुत आशा लगाए थी।"

"नारी मेरेलिए आकर्षण नहीं है, यह मैं नहीं कहता चंद्रगुप्त, लेकिन

मैं समझता हूँ कि हम बच्चे हैं, अभी उसका समय नहीं आया, हमारे सामने सारा जीवन पड़ा हुआ है।"

"लेकिन चतुरिका तुम पर बहुत आशा लगाए हुए थी! तुमने उसे हताश किया।"

"अंतःपुरिकाओंकेलिए हताश होनेकी ज़रूरत नहीं।"

"इन सत्तर-सत्तर वर्षके बूढ़े कंचुकियोंकी बात करते हो?"

"मैं समझता हूँ, कि सत्तर वर्षका होना उन्हें अन्तःपुरकेलिए इतना सुरक्षित नहीं बना देता जितना कि समझा जाता है। लेकिन मैं कंचुकियोंका नहीं ख्याल कर रहा हूँ।"

"तो बावनों और कुब्जोंका खयाल करते होगे, छीः! छीः!! कोई सुन्दरी क्या उनपर थूक भी सकती है।"

"यदि तुम समझते हो, कि उनकेलिए कोई और पुरुष संभव नहीं है, तो मैं समझता हूँ कि बावनों और कुब्जोंपर भी थूका नहीं जा सकता।"

"लेकिन इसी राज-प्रासादमें तुम भी तो रहते हो?"

"मैं भी हूँ, लेकिन मेरे सामने सारा भविष्य जीवन और उसकी आशा मौजूद है।"

"हाँ, जय! तुमने अपने भविष्य-जीवनके बारेमें भी कुछ सोचा है?"

"सोचा नहीं होता तो जब तुम अपनी रंगरेलियों में व्यस्त रहते हो उस वक्त दीपकके सामने ताल-पत्रोंपर मैं अपनी आँखें क्यों फोड़ा करता? मैं अभी ज्ञान अर्जित कर रहा हूँ, अपनेको साधन-संपन्न बना रहा हूँ। शरीर और मन दोनोंको सबल बनाना, अभी मेरा यही काम है।"

"और आगे?"

"आगेकी सारी बातें अभी स्पष्ट नहीं हैं, लेकिन सिर्फ़ अपनी पर्वाहके सिद्धान्तको मैं नहीं मानता।"

"अच्छा भाई! हम तो अब चले, रंगरेलियोंका समय आ गया।"

चन्द्रगुप्तने दूर कुछ तरुणियोंको देखा, जिनमें अग्रश्रेष्ठी गोपालकी तरुण कन्या सानुमती भी थी।

अब मैं यौवनमें पदार्पण कर रहा था। कितनी ही चीज़ें जो अब तक

निरर्थक अनुकरण-सी थीं, अब उनका अर्थ मालूम हो रहा था। अंतःपुर तो कामशास्त्रकी खुली पाठशाला है, फिर मैं अपने आस-पासकी बातोंको क्यों न समझता ? यह बात नहीं कि मेरेलिए आकर्षण न था। लेकिन इन सारे प्रलोभनोंमें, सारे सौन्दर्योंमें कोई चीज़ खाली-खाली, फीकी-फीकी मालूम होती थी। मुझे रहनेकेलिए एक अलग प्रासाद मिला था, जो दुर्भाग्यसे चन्द्रके प्रासादके पास ही था। वहाँ अन्तःपुरकी परिचरिकाएं अज्जुकाके किसी कामसे कभी-कभी आती थीं और मेरी ओरसे कोई ज्यादा उत्साह न प्रदर्शित होनेके कारण देर तक न ठहरती थीं। चतुरिका अब भी कभी-कभी आती। उसके प्रति मैंने कभी कोई सूखा बर्त्ताव नहीं किया, किन्तु न जाने क्यों वह मुझे निष्ठुर समझती थी। मैंने इसकेलिए उससे पूछा भी मगर इसका उत्तर कुछ अस्वाभाविक-सा जंचता था। कहती थी—"पहले जब मैं अपने चित्रोंके अंकनमें तल्लीन रहती, तो तुम मेरे पास बैठते, अपने स्पर्शसे मेरे अंगको पुलकित करते और अब सिर्फ़ तुम्हारी मुस्कान भर रह गई है। मैं इसकेलिए भी अपने भाग्यको सराहती हूँ, किन्तु द्वितीयाके चाँदकी तरह न जाने कब वह भी लुप्त हो जाय।"

मैंने उसके कन्धेपर अपने हाथोंको रख कर कहा—"चतुरिका ! यह मुस्कान कभी नहीं लुप्त होगी। तुम्हारे अंगको पुलकित करनेकेलिए अब भी मैं तैयार हूँ, किन्तु जानती हो आजकल मुझे पढ़नेमें कितना समय देना पड़ता है। हमारे आचार्यके पास ज्ञानका अकूत भण्डार है। वह वृद्ध हैं और फिर उड़ते पंछी, इसलिए मैं अपने सारे समयको विद्यार्जनमें लगाना चाहता हूँ।"

"विद्यार्जन तो तुम पहले भी किया करते थे। नहीं, तुम मुझसे विरक्त हो गए हो।"

"मैं विरक्त और रक्त होनेकी बात नहीं जानता। आखिर तुम मुझसे बड़ी हो, इसलिए मैं तुम्हारी बातका प्रत्याख्यान नहीं कर सकता। लेकिन विद्यामें मैं जितना ही और भीतर-भीतर घुसता जाता हूँ, उतना ही उसका क्षेत्र विशाल मालूम होता है।"

चतुरिका बिना बोले ही कितनी ही देर तक अनमनी-सी खड़ी रही। फिर उसने लम्बी साँस लेकर कहा—

"तो तुम मुझे बूढ़ी समझते हो, यही क्यों नहीं कहते। लेकिन उस वक्त

मैं बूढ़ी नहीं थी, जब छिन्नी लेकर तुम रात-रात भर मुझे पत्थरपर उतारते रहे। अच्छा···।"

मैंने उसके हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर कहा—"सुंदरि! तुम्हें कोई अंधा ही बूढ़ी कह सकता है। तुममें यौवन है, सौन्दर्य है, और अनेक सुन्दर गुण हैं। यह मैं अपने पढ़े काव्योंसे ही यद्यपि उधार लेकर कह रहा हूँ, लेकिन इन वाक्योंने मेरे मूक-भावोंको सिर्फ़ शब्दभर दिया है। मैं यदि तुम्हारे साथ प्रेम करके निर्वाह कर सकता, तो मैं ज़रूर प्रसन्न होता। किन्तु मैं जानता हूँ यह संभव नहीं है। जब मेरे पंख जम जायंगे, तो मैं आकाशका पंछी हो जाऊँगा। क्या तुम चाहती हो कि राजान्तःपुरमें जैसे प्रणय होते हैं, उन्हींका अभिनय मैं भी करूँ?"

"बुरा नहीं होता। मैं भी राजान्तःपुरमें जन्मा और यहीं पली।"

मैंने यह उत्तर पानेकी आशा नहीं की थी, कमसे कम चतुरिकासे। मैं उसे अन्य परिचारिकाओंसे भिन्न समझता था। कुछ खेद ज़रूर हुआ, लेकिन उसके दिलका ख्याल कर मैंने हँसते हुए कहा—"तो अभी समय बीता नहीं है। लेकिन, आचार्यसे जितना मैं ले सकता हूँ उतना जल्दी-जल्दी ले लेने दो।"

"और तब तक तुम्हारे पंख जम आयेंगे, फिर उड़ती चिड़िया कहाँ हाथ आयेगी!"

"एक बात चतुरिका! तुम्हें याद रखना चाहिए, कितनी तरुणियोंमें तुम्हीं हो, जिसपर मैं अधिक अनुरक्त हूँ। यदि अन्तःपुरिकाओंकी भाँति तुम्हें भी चलना है, तो मैं अभी कई साल तक पाटलिपुत्रमें जा नहीं रहा हूँ।"

चतुरिकाने अपने अधरोंको पास लाकर कहा—"तो क्या मैं एक चुम्बनकी अधिकारिणी हूँ।"

मैंने चुपचाप अपने मुखको नीचे कर दिया।

चतुरिका चली गई और शायद वह अधिक प्रसन्न थी, किन्तु मेरे मनमें विचारोंका समुद्र लहरें मार रहा था। मैं चुपचाप आसन्दी (कुर्सी) पर बैठा हुआ था। कुलूपाने मुझे कुछ चिन्तित देखकर कहा—"भर्तृदारकका शरीर स्वस्थ तो है? आज उदास क्यों हैं?"

मैंने अपने चेहरेपर ज़बर्दस्ती प्रसन्नताकी रेखा लानेकी कोशिश करते हुए कहा—"नहीं, अम्मा।" कुलूपाके मृदु स्वभावको देखकर न जाने कबसे मैं उसे अम्मा कहने लगा था और अलग प्रासादमें आनेपर मैंने अज्जुकासे उसे ही माँग लिया था। कुलूपाके चेहरेपर विश्वासकी रेखा न देखकर मैंने बात का रुख बदलनेके लिए कहा—"अम्मा! क्या तुम्हारे देशमें भी इसी तरहके राजान्तःपुर होते हैं?"

कुलूपाने ठंडी आह भरते हुए कहा—"भर्तृदारक हमारे यवन देशमें कोई राजा नहीं?"

"तो क्या वहाँ यौधेयोंकी तरह गणका शासन है?"

"किसी वक्त गणका शासन था, फिर राजाका शासन हुआ, अब अपना राजा भी नही है, हम रोमक राजाके अधीन हैं।"

गणकी बात सुनकर मेरी उत्सुकता और बढ़ी, क्योंकि भारतमें और कहीं गण-शासनकी बात मैंने सुनी नहीं थी। मैंने पूछा—"अम्मा! क्या तुम अपने गणकी कुछ बात बतला सकती हो?"

"बहुत दिनोंकी बात है, कितने युग बीते, मुझे मालूम नहीं। लेकिन सुना है कि अलसंदरके पिताने हमारे गण-राज्यको नष्ट कर अपना राज्य स्थापित किया।"

"अलसंदर अलिकसुन्दर!! वही जो भारतकी सीमाके भीतर तक आया था?"

"हाँ, सुना है उसका राज्य उदयसे अस्त तक था।"

"अशोकके दादा चंद्रगुप्त मौर्यके राजा बननेसे थोड़ा पहिले, आचार्य कहते थे, वह पुरुषपुर तक्षशिला और उसके आगे तक आया था किन्तु आगे उसके सैनिकोंकी हिम्मत टूट गई, इसलिए उदयाचल क्या मथुरा और पाटलिपुत्र तक भी वह न पहुँचा। वह बड़ा राजा था, इसमें सन्देह नहीं। उसके बाद जब-तब कितने ही यवन राजाओंने भारतपर शासन भी किया। तो आखिर अलक-सुन्दर या उसके वंशका राज्य भी नहीं रहा?"

"किसका राज्य सदा बना रहता है। अलिकसुन्दरके बाद कितने ही समय तक हमारे देशपर राजाओंका राज्य था। लेकिन उनके बारेमें मुझे कुछ

मालूम नहीं। हमारी भाषामें अपने इतिहासके बहुतसे ग्रंथ हैं, कितनी ही कहानियाँ हैं, किन्तु मुझे वह सब याद नहीं।"

"गणकी कोई कहानी तुम्हें याद है अम्मा?"

"एक कहानी नहीं भूलने की। किसी यवन कविने कोई नाटक लिखा था। रोम नगरमें मुझे एक बंधुने सुनाया। कुछ विचित्र-सी कहानी है, और उसे मैं कितनी ही बार दुहराती रही हूँ।"

"लेकिन तुमने तो मुझे नहीं सुनाया अम्मा! पिशाच-राक्षसकी तो कितनी ही कहानियाँ सुनाईं, लेकिन वह कहानी कभी नहीं सुनाई।"

"वह स्त्रियोंकी कहानी है, और मैंने जब कभी उसे सुनाया है तब स्त्रियोंको ही।"

"यदि कोई हरज न हो तो अम्मा! मुझे भी उसे सुनाओ।"

"हरज क्या है भर्तृदारक! सुनो। उस वक्त यवन-गणकी राजधानी अथेंस थी। अथेंस अब भी बड़ा नगर है, नगरदेवीका नाम अथना है। मेरी लड़की वहीं पैदा हुई थी, इसीलिए उसका नाम अथना रक्खा गया।"

"तो अम्मा! तुम्हारे यहाँ भी देवियाँ पूजी जाती हैं?"

"मेरे जन्मसे बहुत पहलेकी बात है। अब तो यवन, रोमक सभी ईसाके धर्मको मानते हैं। लेकिन ईसाका धर्म वहाँ पहुँचनेसे पहले ही यवनोंका भाग्य-सूर्य मध्याह्नपर पहुँचा था, इसीलिए आज-कलके यवन भी उस समयके सभी स्मृति-चिह्नोंको बड़े स्नेह और सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं।"

"अच्छा, तो वह कहानी क्या थी, स्त्रियोंकी कहानी?"

"हाँ, अथेंसका राज्य घर-घरके मुखियोंकी सभा करती थी।"

"हमारे यहाँ भी अम्मा! यौधेय इसी तरह शासन करते हैं।"

"क्या आज भी ऐसे राज्य हैं? मैंने तो नहीं सुना था भर्तृदारक। मैं तो समझती थी कि भट्टिनी किसी महाराजकी पुत्री हैं।"

"मेरे पिता महाराज रहे हैं, महासेनापति रहे हैं, किन्तु हमारे यहाँ महाराज महासेनापति गणके प्रधान या पुरस्कर्त्ताकी पदवी है। वह इन राजाओं जैसे राजा नहीं हैं।"

"तभी तो भट्टिनी इतना मृदु इतना कोमल स्वभावकी हैं, उनमें

अभिमान छू नहीं गया, और तुमको भी भर्तृदारक ! हम वैसा ही देखती हैं।"

"अच्छा-अच्छा अम्मा ! स्त्रियोंकी उस कथाको तो सुनाओ।"

"अथेंसका राज-काज गण-सभा करती थी, लेकिन सभाके सदस्य सभी पुरुष रहते थे। वह आपसमें भी लड़ा करते थे और बाहरसे भी लड़ाई मोल लेते रहते। अथेंसकी स्त्रियोंने सोचा—यह पुरुष ठोकसे शासन करना नहीं जानते, इनमें शासन करनेकी योग्यता नहीं, इनके भीतर स्त्रियों जैसा हृदय और सहानुभूति नहीं है। देशमें शान्ति और सुख तभी स्थापित हो सकता है, जब कि स्त्रियाँ स्वयं राज-काजको अपने हाथमें लें। चुपके-चुपके सारी स्त्रियोंने घर-घरमें सलाह की। पुरुष ख़ूब शराब पीकर देर तक नाचते-गाते रहे, उनकी नींद जल्दी कैसे टूट सकती थी। एक दिन जब पुरुष बेख़बर सोये हुए थे तभी, उनके दरबारी पोशाकको स्त्रियोंने पहन लिया और मर्दके भेषमें गण-सभा-भवनमें चली गईं। भवन-रक्षक ने उन्हें सदस्य समझा, इसलिए रोका नहीं। स्त्रियोंने सभाकी, गण-पति चुना और यह व्यवस्था स्वीकृत की कि पुरुष राज्य करनेके अयोग्य हैं, इसलिए आजसे गणका शासन स्त्रियोंके हाथमें दिया जाता है। व्यवस्था लेख-बद्ध कर दी गई। सभा-भवन, और नगरके चौरस्तों पर व्यवस्था-पत्र साट दिया गया। स्त्रियाँ अपने-अपने घरोंमें चली आईं। वहाँ पुरुष अपनी राजकीय पोशाक ढूंढ़नेमें परेशान थे। ख़ैर, उन्हें पोशाक मिली, लेकिन उसे पहन कर जब सभा-भवनमें गए, तो भवन-रक्षकोंने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया। सदस्योंने घोषणापत्रको पढ़ा। उसमें पुरुषोंका राज्य ही नहीं हटा दिया गया था, बल्कि यह भी था कि आजसे सारे खेत, सारा जंगल, सारे मकानका मालिक सारा गण है। सारा अथेंस एक परिवार है जहाँ सबको अपने लायक काम करना होगा और सबके खाने-कपड़ेका प्रबन्ध गणकी ओर से होगा।"

मैं इस सीधी-सादी कहानीको सुनकर कुछ सोचने लगा। गण मेरेलिए कोई नई चीज़ नहीं थी, लेकिन सारे गणकी संपत्ति साझी हो, यह मैं कल्पना भी न कर सकता था। यौधेयोंमें खेतोंका मालिक गण होता है, लेकिन खेती साझी नहीं होती। खेती और व्यापारका लाभ तो सबका अलग-अलग होता

है। इस कथाने मेरे दिलपर ज़ोरका आघात किया। मैं समझने लगा, इसके सम्बन्धमें सोचना एक दिनका काम नहीं है। चतुरिकाके बर्त्तावको देखकर जो मनमें अवसाद आया था, वह तो बहुत कुछ दूर हो गया। लेकिन राजान्तःपुरके बारेमें मैंने जो प्रश्न किया था, उसका जवाब नहीं मिला था, इसलिए कुलूपासे मैंने फिर पूछा—"अम्मा! यह कहानी बड़ी मनोरंजक है, क्या स्त्रियोंका गण-राज्य कुछ दिन चला ?"

"सो मैं नहीं जानती। और कथाओंका तरह शायद यह भी एक कथा ही है।"

"रोमक राजाओंका अन्तःपुर होता है या नहीं ? क्या वहाँ पर भी राजाके पास हज़ार रानियाँ होती हैं ?"

"अन्तःपुर तो ज़रूर होता है, किन्तु वहाँ राजाकी एक ही रानी होती है, राजा एकसे अधिक स्त्रीसे ब्याह नहीं कर सकता। यवनों और रोमकोंका इसे रिवाज कह लीजिए, या धर्म कह लीजिए, वहाँ राजासे लेकर साधारण आदमी तक एकसे अधिक ब्याह नहीं कर सकते। बहुपत्नीकी बात सुननेपर भी उनको आश्चर्य होगा, वैसे ही जैसे एक स्त्रीके एक ही साथ बहुतसे पुरुषोंसे ब्याह करनेकी बात सुन कर।"

"यह बड़ा अच्छा रिवाज है अम्मा! यही होना चाहिए, हमारे यहाँका राजान्तःपुर क्या है सहस्रों स्त्रियोंका बन्दीगृह!"

"लेकिन स्त्रियाँ तो वहाँ भी राजान्तःपुरमें हज़ारों रहती हैं, हाँ, रानीके तौरपर एक ही।"

"हाँ तो वहाँके जनने कमसे कम राजाके ऊपर इतना अंकुश तो रक्खा कि वह एकसे अधिक स्त्रीसे ब्याह न कर सके। हज़ारों स्त्रियोंको परिचारिका बनाकर रखना यह तो धन-वैभवके कारण है। जब तक एक आदमीके पास बहुत धन-वैभव है, और दूसरेके पास कुछ नहीं, तब तक नर-नारी बिकते ही रहेंगे। क्या अम्माँ, वहाँ भी हमारे दास-दासियोंकी तरह आदमियोंको हाटमें बेंचा-खरीदा जाता है ?"

"हाँ भर्तृदारक! वहाँ भी दास-दासी बिकते हैं, वहाँ भी उन्हें मनुष्य शरीरधारी पशु समझा जाता है।"

"राजान्तःपुरकी परिचारक-परिचारिकायें क्रीतदास नहीं, अक्रीत दास हैं। परमभट्टारक यदि ख्याल न करें, तभी वह अंतःपुर छोड़कर कहीं चला जा सकता है, लेकिन अन्तःपुरमें तो आकर मानव वृक्षके आश्रित रहने वाली वेलि बन जाता है, वह अपने पैरोंपर खड़ा होने लायक ही नहीं रह जाता।"

"तो वहाँके राजान्तःपुरकी यही अवस्था होगी, हर वक्त सिर्फ काम-कामकी चर्चा। राजा भी रानी भी, परिचारिकाएँ भी, कामुकताकी ही बातका ध्यान रखती हैं।"

"एक रानी होनेसे राजकुमारों और राजबंधुओंकी संख्या कम होती है, दूसरी बातोंमें यहाँ-वहाँ कोई अन्तर नहीं।"

"अम्मा! कुछ और मनमें न करना, मैं कुछ वहाँके राजान्तःपुरकी स्त्रियोंके बारेमें पूँछना चाहता हूँ।"

"और क्या मनमें करूँगी भर्तृदारक! चाहे रोमक राजान्तःपुर रहा या पाटलिपुत्रक, मेरेलिए तरुणाईमें प्रभुकी इच्छा या अपनी इच्छा पूरा करनेके लिए तैयार रहना पड़ता था और अब उमर ढलनेपर दूतीका काम—चाहे पुरुषकी ओरसे हो चाहे स्त्रीके ओरसे। तुमने मुझसे कभी नहीं कहा। किंतु मैं जानती हूँ तुम्हारे ऊपर अन्तःपुरकी कितनी सुन्दरियाँ मर रही हैं, साधारण चेटियाँ ही नहीं रानियाँ तक। मुझसे वह लाज-संकोच नहीं करतीं। राज प्रासादमें, वस्तुतः लाज-संकोचका परदा मकड़ीके जालेसे भी हल्का होता है।"

"क्या कहा रानियाँ! मेरी अज्जुकाकी सौतें, जिन्हें मैं बहन समझता हूँ"

"राजान्तःपुरमें रक्त-संबंध तक ही संबंध चलता है। यह कोई अचरज की बात नहीं। आप ही सोचिये भर्तृदारक! यौवन हो, स्वस्थ और सुन्दर शरीर हो, दूसरे सारे भोग प्रस्तुत हों; कामदेवकी पूजा सिर्फ़ वसंतोत्सवके दिन ही नहीं, बल्कि रात-दिन, संगीत-नृत्य, और प्रेम्-संकीर्त्तनके द्वारा चल रही हो, फिर हज़ार-हज़ार स्त्रीके लिए एक पुरुष हो, अर्थात् भट्टाने यदि समदर्शिता रक्खी, तो भी तीन सालमें एक बार समागमकी आशा हो। फिर अंतःपुरिकाओंसे तुम क्या आशा रख सकते हो?"

"अम्मा! तुमने ठीक कहा, मुझे अन्तःपुरिकाओंपर नाराज़ नहीं होना चाहिए। उन बेचारियोंका इतना ही अपराध है, कि वह नारीके रूपमें जन्मी

हैं। उन्हें रूप और कुल मिला, अब उन्हें ज़िन्दगीभर इस वैभव-पूर्ण वन्दीगृहमें अस्वाभाविक अमानुषिक जीवन बिताना होगा। मैं सोचता हूँ, अथेंसकी नारियोंको एक पल्ला रखनेपर भी यदि पुरुषोंको अयोग्यताकेलिए पुरानी व्यवस्थाको उलटनेकी आवश्यकता थी, तो आज हमारी व्यवस्थाको उलटनेकी आवश्यकता उससे हज़ार गुना अधिक है।"

"लेकिन क्या व्यवस्था उलटी जा सकती है?"

"यह तो सोचना है, लेकिन अम्मा! काल असीम है, जो आज असंभव है, वह आगे किसी समय संभव हो सकता है।"

"भर्तृदारक! मैं सोचता हूँ कि आप कभी-कभी अपनी आयुसे बहुत आगेकी बातें करते हैं।"

"अर्थात्, दुधमुँहे बच्चेके मुँहसे इतनी बड़ी-बड़ी बातें शोभा नहीं देतीं?"

"मैंने निन्दाके लिए नहीं कहा, मैं तो इसके लिए प्रशंसा किया करती हूँ। जब तरुणाईकी मस्तीमें चूर ये तरुणियाँ आपके ऊपर आक्षेप करती हैं, तो मैं कह देती हूँ—'हमारे भर्तृदारक वैसे नहीं हैं, हमारे भर्तृदारक हज़ार पुरुष-सिंहोंमें एक हैं, कलमुँहियों! जाओ, तुम अपना मुँह कहीं और काला करो!' लेकिन फिर भी नहीं मानतीं। चतुरिका वैसी नहीं···।"

"तो अम्मा। तुम चलीं अब चतुरिकाकी सिफ़ारिश करने?"

"वह तुम्हारे बारेमें वैसा कटाक्ष नहीं करती. बस इतनी ही मैं उसकी तारीफ़ करूँगी, वैसे निष्ठुर तो वह भी कहती है।"

"क्या निठुराई है अम्मा? यदि मैं सबपर स्नेहकी दृष्टि करने लगूँ, तो क्या प्रसाद में ही नहीं उड़ जाऊँगा। और, चतुरिकाने भी तो आज एक चुम्बन ले ही लिया, अब आशा है वह मुझे निष्ठुर नहीं कहेगी। प्रेमके लिए मेरे मनमें सम्मान है, लेकिन इस समाजमें मुझे उसके लिए कोई स्थान नहीं दिखलाई देता। प्रेमकी बातें तो मुझे अभी कुछ ही दिनोंसे समझमें आने लगी है, लेकिन देखकर दिलमें आग लग जाती है, यहाँ मानवता पशुताके बहुत समीप चली गई है।"

"ठीक कहा भर्तृदारक! हम परिचारिकाओं और परिचारकोंको, चाहे रोम नगर हो चाहे कहीं और, पशु ही की तरह गिना जाता है। हमारे सामने वह

उसी तरह निःसंकोच सब कुछ कर डालते हैं जैसे पास बँधे किसी पशुके सामने। उनको ख्याल भी नहीं होता कि यह मनुष्य देख रहे हैं, ये हमारे बारेमें क्या सोचेंगे ?"

कुलूपा शायद मुझे कोई अतिमानव समझ रही हो, इसलिए, मैंने उससे कहा—"मैं अतिमानव नहीं और न अतिमानव बनना पसन्द करता हूँ, किन्तु मानव ज़रूर हूँ और पशुके तलपर गिरना बहुत बुरा समझता हूँ। मैं दुहरे सदाचारसे अत्यंत घृणा करता हूँ। कपड़ा उतारनेपर कुछ और कपड़ा पहनने-पर कुछ और यह बात मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। जिन अन्तःपुरिकाओंकी यह सारी लीला तुम सुना रही हो, वही मंदिरों और धर्म-स्थानोंमें जाकर सती-साध्वी बनना चाहती हैं; आखिर इस ढोंगसे फ़ायदा क्या ?"

"परलोकसे डरती हैं, नरककी आगसे डरती हैं; समझती हैं, हम जो कुछ कर रही हैं वह बुरा है, किन्तु शायद व्रत-पूजा करनेसे पाप धुल जाय।"

"नरक और परलोकके भयसे आदमी सदाचारी बनेगा ! मैंने तो भयके कारण किसीको सदाचारी होते नहीं देखा। तुम्हारा अनुभव बहुत बड़ा है माँ ! तुमने यवनोंको देखा, रोमकोंको देखा, और तुम्हें हमारे देशमें रहते एक युग बीत गया। तुम्हीं बतलाओ, क्या परलोक और नरकके डरसे आदमी—खासकर राजा-सामंत और धनी-श्रेष्ठ—कभी सदाचारी बनते हैं ?"

"नहीं, मैंने भी नहीं देखा भर्तृदारक ! श्रेष्ठि-सार्थवाहों और राजाओंके अंतःपुरोंकी तो बात ही छोड़िये, मैं उनकी बात कहूँ, जो सबसे बड़े धर्मात्मा हैं, जो परलोक और नरकके सबसे बड़े ज्ञाता हैं, उसके बारेमें लंबे-लंबे उप-देश देते हैं और स्वयं आँसू बहाते हज़ारोंको रुला देते हैं। उनको भी मैंने देखा। मेरे कौमार्यको नष्ट करनेवाले रोम नगरके एक ऐसे ही धर्मात्मा थे। उन्होंने पहिले मुझसे प्रेम किया, जब मैं गर्भिणी हुई तो अथेंस भेज दिया, लेकिन इतनेपर भी उन्हें धीरज नहीं आया, और फिर मुझे तीर्थ करानेका बहाना करके इस देशमें लाकर छुड़वा दिया।"

"वही बात यहाँ भी है अम्मा ! जिनको बड़ा कहते हैं, जिनके पास धन और ज्ञान है, उनके मनमें नरक और परलोक सिर्फ़ कथा-कहानी हैं। मैं इस

दुहरे सदाचारको नहीं पसन्द करता। सदाचार वही है जो भीतर-बाहर एक हो और जो मानवकी क्षमताके भीतर हो।"

मैंने जब तब आचार्यके मुँहसे यवन दार्शनिकोंकी प्रशंसा सुनी थी। भारतमें किसी वक्त आकर बस गए यवनोंके बारेमें भी वह जब तब सुनाते थे। "मिलिन्द प्रश्न" को पढ़ते वक्त मैंने देखा था कि आचार्य नागसेनसे यवनराज मिलिन्द (मिनान्दर)ने कैसे-कैसे मार्मिक प्रश्न किए थे; उसी वक्त यह भी जाना था कि शाकला (स्यालकोट) मिलिन्दकी राजधानी थी। लेकिन यवनोंका गण-राज्य था, यवनोंके देवी-देवता थे और आजकल वह ईसाके नये धर्मको मानते हैं इत्यादि बातें मुझे नहीं मालूम थीं। पीछे जब-जब समय मिलता तब-तब मैं कुलूपासे यवनों और रोमकोंके बारेमें बहुत सी बातें पूछता। मेरी सहानुभूतिको देखकर कुलूपा निस्संकोच ही मुझसे बातें करती। लेकिन, मेरे दिलमें बार-बार टीस-सी उठती थी जब ख्याल आता, यवनोंके गण राज्यका ध्वन्स एक राजाने किया और आज सारे यवन विदेशी राजाके आधीन हैं।

(६)

पितासे अन्तिम भेंट

तातके कई लेख आ चुके थे। वह मुझे देखनेके लिए बहुत उत्सुक थे, और उन्होंने अज्जुकाको भी साथ लानेके लिए लिखा था। हेमंतका अंत था, जब कि चन्द्र और अज्जुकाको साथ लिये मैं अग्रोदका पहुँचा। यद्यपि मैं अभी सोलह ही वर्षका था, लेकिन पैतृक-संपत्ति और व्यायामके कारण मैं बीस वर्षका हृष्ट-पुष्ट गभरू जवान मालूम होता था। तात पिछले दो सालोंमें ज्यादा बूढ़े हो गए थे। चिन्ताएँ भी कारण थीं। अपनी और मेरी चिन्ता नहीं, बल्कि, यौधेय गणकी चिन्ता। यद्यपि परमभट्टारकने यौधेयोंके भीतरी प्रबंधमें हस्तक्षेप नहीं किया और कर भी नाममात्र लेते थे, जिसे उपायन, पारितोषिकके रूपमें लौटा देते थे। किन्तु यौधेयोंके मनसे गणकी भावना हट रही थी। खेतोंके संग्रहमें तो मनमाना नहीं कर सकते थे, किन्तु वह व्यापारसे धन खूब जमाकर रहे थे; शस्त्र और युद्ध-विद्या सीखनेका उतना

ध्यान नहीं था, जितना कि अपनेलिए दीनार जमा करने और महल उठाने का। वह मथुरा आते। महादेवीके कुलका होनेसे उपरिक महाराज बहुत सम्मान करते। सोनेके चषकोंमें उदुंबरवर्णा (लाल) द्राक्षी सुराकी दावत होती। सोने और हीरा-मोतीसे लदी गणिकाएं नृत्य दिखलातीं; राजामात्योंको बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिने देखते; फिर इन बातोंका अनुकरण करना चाहते। तात इसे बड़े भयकी दृष्टिसे देख रहे थे। अज्जुका तातको प्रसन्न करनेकेलिए हर तरहसे चेष्टा करती। चंद्रका तो सारा समय आखेट और मामियोंके साथ नाच-गानमें बीतता। मेरी भाभियाँ मुझे भी खींचना चाहती थीं, किन्तु मैं अधिकतर अपना समय तातके साथ बिताता था। उन्हें यौधेयोंके पुराने इतिहास, यौधेयोंकी वीरता, यौधेय-धर्मका विशाल ज्ञान था। मैं अब उसे समझ सकता था। तात जितना कहनेकेलिए उत्सुक थे, उससे भी अधिक मैं सुननेके लिए। आधा आधी रात तक हमारी बातें होती रहतीं। मैंने एक दिन पूछा—"हम लोगोंको यौधेय भी कहा जाता है, और आग्रेय भी, यह दो-दो नाम क्यों?"

तातने कहा—"यौधेय गणमें बहुत-सी बिरादरियाँ या उपगण हैं; आग्रेय, रोहितकी, खांडिल्य आदि ऐसे ही उपगण हैं। कई सौ बरस पहिलेकी बात है जब यह उपगण छोटे-छोटे स्वतंत्र गण थे; उनके अलग-अलग कार्षापण (मुद्रा) होते थे, गण-सभा भी अलग होता था। एकगणका दूसरे गणसे झगड़े-झंझट नहीं होते थे। लेकिन जब हमारे पूरब और पच्छिममें बड़े-बड़े राजतंत्र क़ायम हुए, राजा लोग हमारी दूध-घीकी नदियोंवाली शस्य-श्यामला भूमिको लालचभरी निगाहसे देखने लगे और उन्होंने हमपर आक्रमण करना शुरू कर दिया, तब हमें साफ़ दिखलाई देने लगा कि छोटे-छोटे गणके रूपमें हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते। सभी गणोंके पुरस्कर्त्ताओंने मिलकर विचार किया और उन्हें इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं दिखलाई पड़ा कि यौधेयोंके सभी गणोंको मिलाकर एक बड़ा गण स्थापित किया जाये! युद्धमें दुर्धर्ष होनेसे हमारे गणका नाम यौधेय पड़ा। यह हुए आज ४०० सौ सालके क़रीब होते हैं। मालवोंने ऐसा नहीं किया, अकेले लड़ना चाहा, मगर आधे-आधे महाद्वीपके राजाओंकी विशाल सेनासे कब तक लोहा ले सकते थे? आज देख रहे हो, वह हमारी सीमासे और दक्खिन चले गए हैं। वीरताकी उनमें भी

कमी नहीं थी, जन्मभूमिके प्रति उन्हें भी अपार स्नेह था; किन्तु, जब सब कुछ करके भी अपना अस्तित्व क़ायम रखना असंभव होगया तो उन्हें अपनी भूमि छोड़कर बाल-बच्चों सहित नई भूमिमें जाकर बसना पड़ा। इमसे पच्छिम शतद्रु के तटपर जो प्रदेश आज यौधेयोंके हाथमें है, उसमें कभी मालव बसते थे।"

"तब वह भूमि हमारे हाथ कैसे आई तात?"

"गण, स्वार्थकेलिए भाई और बापके ख़ूनसे भी हाथ रँगनेवाले राजाओं-का छोटा-सा परिवार नहीं, इसीलिये उसका उच्छेद करना भी उतना आसान नहीं है मौर्य्योंने पुरुषपुरसे और आगे तकको विजय किया, लेकिन उन्होंने बहुत कम गणोंका उच्छेद किया। समुद्रगुप्तकी तरह चंद्रगुप्त मौर्य भी कहता था कि गण अपने भीतर स्वतंत्र रहें। हम यही चाहते हैं कि विदेशी शत्रुओं के मुक़ाबिलेमें भारतकी सारी तलवारें एक हो जायें। मौर्योंने तक्षशिलाके पासके कुछ गणोंका उच्छेद किया लेकिन मौर्यवंशके विनाशके बाद जिन राजाओंने भिन्न-भिन्न भागोंको अपने हाथमें करना चाहा, उनसे गणोंके लिए संकट पैदा होगया। यवन मिलिन्द और उसके वंशजोंके समय उत्तरापथके गणोंपर आफ़त आई। पश्चिमके गण ख़ूब बहादुरीसे लड़े और कितने अपनी मातृभूमि छोड़नेपर मजबूर हुए। उनमेंसे कुछ इममें मिल गए और आज वह यौधेय हैं। जो गण अपनी जन्मभूमिमें रह न सके, उन्होंने भी यवनोंके प्रथम प्रहारको सहकर, उन्हें निर्बल बना हमें सहायता पहुँचाई। मैं नहीं समझता, यदि पहला प्रहार हमपर पड़ा होता, तो हम बच पाये होते। कुषाणोंके समय फिर संकट आया, लेकिन तब तक सभी गणोंको मिलाकर हमारा एक यौधेय गण बन चुका था। हमारे वृहद संगठनने हमारी वीरता और निर्भीकता से मिलकर हमारी शक्तिको बहुत बढ़ा दिया। राजा घटाकी तरह उठते और फिर बिखर जाते हैं, एक दो पीढ़ी तक अपनी सैनिक-शक्ति क़ायम रखना भी उनकेलिए मुश्किल होता है; लेकिन गणोंकी शक्ति उनसे कहीं अधिक चिरस्थायी होती है। इससे और पिछले तजर्बेसे भी हमने यह सीखा कि यदि घटा हमारे गण तकका अस्तित्व मिटाना न चाहें, तो हमारे पूर्वजोंने मौर्योंके सामने जो बेतसी (बैंत जैसी) वृत्ति स्वीकारकी, उसे हमें भी मानना चाहिए। कुषाणोंके तूफ़ानके सामने हमने

वही बात स्वीकार की थी। कुषाणोंने भी अधिक लालच नहीं किया क्योंकि वह जानते थे कि यौधेयोंका लोहा कितना तेज़ है। यहीं नहीं कि यौधेयोंके भीतरके छोटे-छोटे गणोंको मिलाकर हमने बड़े गणका रूप दिया, बल्कि शतद्रु विपाश (ब्यास) के बीचके कुणिन्दों और हमारे दक्षिणके आर्जुनायनोंने भी हमसे मिलकर एक बड़े गण-संघका रूप लिया।"

"लेकिन मालवको भी क्यों नहीं इस संघमें शामिल कर लिया जाता। वह लड़नेमें वीर हैं।"

"उनके भीतर कितने ही धनी मुखिया पैदा हो गये हैं। अपने स्वार्थके लिए वह मालवोंको हममें मिलने नहीं देते। मालव वीर हैं इसमें क्या संदेह है। आजसे ३०६ वर्ष पहले उन्होंने ही कुषाणोंको बुरी तरहसे हराया था, जिसके उपलक्ष्यमें उन्होंने मालव संवत् (विक्रम संवत्) चलाया। दो सौ सालसे कुछ ऊपर होते हैं, जब अवन्ति-सौराष्ट्रके महाक्षत्रप रुद्रदामाने यौधेयों के नष्ट करनेकी प्रतिज्ञाकी। यौधेयोंको नष्ट क्या करते, लेकिन हम उसे वैसी हार नहीं दे सके, जैसी कि मालवोंने उत्तरापथमें रहते-रहते कुषाणोंको दी थी। मालव भी अलग-अलग लड़नेकी जगह हमारे संगमें मिल गये होते, तो हम रुद्रदामाको नाकों चने चबवाते। रुद्रदामाके प्रहारका यह सुन्दर फल ज़रूर है कि आज कुणिन्द, यौधेय और आर्जुनायन एक सेनापतिके नेतत्वमें एक साथ शत्रपर धावा बोल सकते हैं।"

"क्या हम लोगोंके पास वह सारी भूमि अब भी है, जिसपर हमारे पूर्वज पहिले-पहिल आकर बसे थे?"

"मैं समझता हूँ हमारे पास तबसे कुछ अधिक भूमि है। पड़ोसी राजाओं के निर्बल पड़नेपर हम आस-पासकी उजड़ी भूमियोंको दख़ल करते गए।"

"लेकिन तात समुद्रगुप्तके मातुल-कुल लिच्छवियोंने ही मगधमें कुषाणोंका शासन खतम किया था। ५० साल भी नहीं होता, जबकि पाटलिपुत्रमें कुषाण क्षत्रप रहा करता था। आज तो हमारी भूमि हिमालयके चरणों और खलतिका (कालसी) तक उसके भीतर तक घुस गई है, फिर इस रास्ते कुषाण कैसे मगध पहुँचे थे।"

"मैंने कहा नहीं कि बलवान शत्रुके सामने हम वैतसी वृत्ति स्वीकार कर

लेते रहे। स्रुघ्न (अंबाला) और उसके उत्तरके भागमें हम उनके आने-जाने का रास्ता छोड़ देते रहे। समुद्रगुप्तके पिता या लिच्छवि नहीं बल्कि हम यौधेय ही थे, जिनके प्रहारके मारे कुषाणोंको मध्य-देश छोड़ना पड़ा। राजाओं की तरह एक परिवारके भोग-विलासके लिए गण अपने हज़ारों बंधुओंको कटवा कर दूसरेके राज्यको हड़पनेकी इच्छा नहीं रखता, इसीलिए विपाश् और दक्षिण शतद्रु से पार भगाकर हमने कुषाणोंको छोड़ दिया। तो भी कुषाण अपनेको सुरक्षित नहीं समझते और देवपुत्रशाहीने जाकर पारसीक शाहंशाहके चरणोंमें अपना मुकुट रक्खा। कुषाणों और क्षत्रपोंको हम विदेशी नहीं समझते। पाँच सौ साल पूर्व वे भले ही विदेशसे आए हों, लेकिन अब तो वे इस देशके हैं। कुषाण देवपुत्रका पारसीकोंकी छायामें जाना सचमुच बहुत निन्दनीय है।"

यौधेयोंके पूर्व इतिहासके सुननेके बाद मैंने भविष्यके बारेमें भी अपनी चिन्ताएँ तातके सामने रक्खीं। उन्होंने कहा—"ठीक है वत्स! राजतंत्र और गणतन्त्र दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। गणतन्त्र अपने हरेक व्यक्तिमें आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास पैदा करता है, जब कि राजतन्त्र सबको भेड़ बनाता है।"

"यह तो अनुचित है तात! मनुष्योंको भेड़ बनाना यह संसारके लिए कल्याणकी चीज़ नहीं है। लेकिन फिर भी यह अनुचित अन्यायपूर्ण शास्त्र चलता क्यों है?"

"चलता, अर्थात् बलिष्ठ दूसरोंको दास बनानेमें सक्षम कैसे होता है? इसीलिए कि वह गणोंसे कई गुनी अधिक तलवारोंको जमा कर सकता है।"

"तब तो संसारमें अन्यायका ही पलड़ा भारी हुआ?"

"निर्बल रहना भी अन्याय है, पाप है, इसी पापके कारण देश दास बनते हैं।"

"तात! मैंने एक यवनीसे सुना था कि यवन देशमें भी पहले गणतन्त्र था। उस समय उसकी राजधानी अथेंस नगरी थी। यवन लोग वहाँ हमारी ही तरह गण-संस्था द्वारा शासन करते थे। उत्तरापथ तक आये अलिकसुन्दर के बापने गणशासन उठाकर राजशासन क़ायम किया। और आज तो कई सौ

वर्षोंसे यवन रोमकोंके आधीन हैं। इसे सुनकर मुझे कभी-कभी बहुत चिन्ता हो उठती है।"

"चिन्ता स्वाभाविक है, किन्तु जब तक यौधेयोंके हाथमें खड्ग धारण करने की शक्ति है, जब तक वह अपनी जन्मभूमिके लिए प्राणको तृणवत् समझते हैं और जब तक सब मिलकर काम करते हैं; तब तक चिंताकी आवश्यकता नहीं। लेकिन मेलमें बाधाएँ आती जा रही हैं, यह ज़रूर चिन्ताकी बात है।"

"मेलमें बाधा क्या है तात?"

"दीनारोंके पीछे मरनेके कारण अब यौधेयोंमें भेद-भाव दिखलाई पड़ने लगा है। राजसी वस्त्राभूषण पहिनकर, कितने ही यौधेय अपनेको दूसरे यौधेयों से बड़ा समझने लगे हैं। दूसरे यौधेय भी उनके बर्त्तावको देखकर जलने लगे हैं। यदि बीस सालके समुद्रगुप्तके संपर्कसे इतना अन्तर दिखलाई पड़ रहा है, तो यह आगे और बढ़ सकता है। यह है भारी खतरेकी बात।"

"मैं समझता हूँ तात! राजाओंका भी विलास दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। विलासके लिए अधिक और अधिक दीनारोंकी आवश्यकता हो चली है। दीनारोंके लिए प्रजाको लूटना पड़ता है, पड़ोसियोंको लूटना पड़ता है; इसलिए यौधेयोंकी समृद्ध भूमिके लिए दिन प्रति दिन अधिक खतरेकी संभावना है। रामगुप्त तो सीधा-सादा है, शायद उसके समय तक समुद्रगुप्तकी नीति चल जाय, लेकिन मुझे इसमें संदेह है तात! कि वह पाटलिपुत्रके सिंहासन पर टिक पायेगा।"

"क्यों, यह क्या कहा वत्स?"

"चंद्रगुप्त बड़ा मनस्वी और धूर्त्त है। और वह अपने भीतर क्या-क्या मनसूबे बाँध रहा है, इसे तो वह किसीसे नहीं कहता। लेकिन वह चन्द्रगुप्त मौर्य और विष्णुगुप्त चाणक्यको अपना पथप्रदर्शक समझता है।"

"यह ज़रूर आशङ्काकी बात है पुत्र। लेकिन चन्द्रगुप्तको रास्ता दिखलाना हमारी शक्तिसे बाहरकी बात है। वह गणतन्त्रका समर्थक नहीं हो सकता। हाँ, यदि गण मज़बूत हुआ, तो हाथको आगे बढ़ानेसे रोक सकता है।"

"यही मैं भी समझता हूँ। अपने गणको कैसे मज़बूत किया जाय, इसके बारेमें मैं बहुत सोचा करता हूँ। आचार्य वसुबंधुने लिच्छवियोंकी बहुतसी बातें

बतलाईं। उन्होंने कहा कि भिक्षु-संघका निर्माण भगवान्‌ने लिच्छविगणके अनुकरणपर ही किया था। तथागत राज-तन्त्रसे गणतन्त्रको अधिक पसंद करते थे। शाक्य भी गण-तन्त्री थे, जिसमें वह स्वयं पैदा हुए। हाँ, एक बात बीचमें मैं पूछना चाहता हूँ।"

"पूछो पुत्र!"

"भिक्षुसंघके संचालनके बहुतसे नियम हैं, जिन्हें वह भिक्षुओंको ही बतलाते हैं। वह पत्रोंपर लिखे हुए नहीं मिलते। मैं जानता हूँ, कि वह नियम क्या हैं? शायद मुझे उनके जाननेके लिए कभी भिक्षु बनना पड़े।"

तात कुछ घबड़ाकर बोले—"नहीं पुत्र! तुम्हें भिक्षु नहीं बनना चाहिए, तुम मेरे एक ही पुत्र हो। मैं और यौधेय तुमसे बहुत आशा रखते हैं।"

"वैराग्य और निर्वाणके लिए मैं भिक्षु नहीं बनूँगा तात! यह निश्चय समझें। यदि कभी कुछ समयके लिए भिक्षु बना भी, तो सिर्फ़ इसी ख्यालसे कि यौधेयोंकी सेवाके लिए मैं अधिक योग्य बन सकूँ।"

"यदि ऐसा हो, तो मुझे कुछ उज्र नहीं है।"

"मैंने बुद्धके उपदेशोंमें पढ़ा कि वह हर तरहके भेद-भावको हटाकर संघमें सभीको एक कर देना चाहते थे। अशोकाराममें आज भी यवन, पारसीक, शक, मागध, वैदर्भ, सैंहलक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सभी देशों—जातियों वर्णोंके भिक्षु होते हैं, मगर वह आपसमें छोटे-बड़ेका भाव सिर्फ़ संघमें आनेके अनुसार करते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि हमारे गणोंमें क्यों नहीं वैसा होता?"

"बौद्ध और जैन दोनों संघको सर्वोपरि मानते हैं, दोनों ही गुप्तोंके विष्णु की तरह, संसारके कर्त्ता-हर्त्ता किसी एक ईश्वरपर विश्वास नहीं करते; इसीलिए मैं ब्राह्मणोंके धर्मको नहीं बल्कि श्रमणों (बौद्धों-जैनों) के धर्मको गणतन्त्रके अत्यन्त अनुकूल समझता हूँ। यदि हमारी भूमिमें बस गये यौधेयोंके अतिरिक्त दूसरी जातियोंको भी गण-संस्थामें भाग लेनेका अधिकार होता, तो हमारी सैनिक शक्ति दूनी हो जाती इसमें सन्देह नहीं।"

"तो क्यों न इसके लिए कोशिश की जाय।"

"आजकी अवस्थामें कोशिश क़ामयाब नहीं होगी। हमारा गण हमेशासे

रक्त-सम्बन्धियोंका रहा है। जो बात बहुत पुरातन कालसे चली आई है, उसको हटानेमें बड़ी दिक्क़त होती है। फिर हमारे धनियोंके पास ख़रीदे दास-दासी होते हैं, काम करनेके लिए चाकर होते हैं; वह शिल्पियोंको भी अपने चाकरों-की तरह गिनते हैं। ये बड़े-बड़े धनी लोगोंको भड़काएँगे—'यह तो यौधेय-भिन्नोंके हाथमें राज्य-सत्ता सौंपना चाहते हैं। हमारी भूमिमें अयौधेयोंकी संख्या आधेसे अधिक है, वैसा करनेपर तो राज्य ही अयौधेयोंके पास चला जायेगा।' इस तरह स्वार्थी लोग यौधेयोंके भीतर फूट डालनेमें सफल होंगे। तुम समझ सकते हो आज ऐसी अवस्था नहीं है, कि यौधेयोंमें फूट पड़नेकी कोई भी बात की जाय।"

"यौधेयोंमें रक्तकी शुद्धताका जो ख्याल है, वह इसमें बहुत बाधक हो सकती है, यह मैं मानता हूँ; लेकिन यौधेयोंको और भी सबल जो बनाना है।"

"अभी तो मैं समझता हूँ कि यह बात यौधेयोंको सबल नहीं निर्बल करेगी। शायद आगे कोई समय आए, जब ऐसा करना संभव हो।"

गणों और संघोंके बारेमें जब कभी कुछ सुनने-पढ़नेका मौक़ा मिलता है, मैं उसपर बड़े ध्यानसे विचारता हूँ। मैं इसके बारेमें बड़ी जिज्ञासा रखता हूँ, मैं चाहता हूँ कि दुनियाके और गण-तंत्रोंसे हम सीख सकते हैं, उसे हम सीखें और अपने गणको अधिक दृढ़ करें।

× × ×

अज्जुका अबकी बार भद्रा, खंडिला, पृथूदका (पेहुआ), रोहितकी आदि नगरोंमें भी गई। वैसे भी मुझे और बस्तियोंके अपने बंधुओंसे भेंट करनेकी उत्सुकता थी और अज्जुकाके जानेपर तो उसके साथ जाना ज़रूरी था। चन्द्र अपने शिकार और नाच-गानेमें सब कुछ भूल गया था।

अग्रोदकाकी तरह दूसरे नगरोंमें भी यौधेयोंमें विलासिता बढ़ रही थी। अज्जुका और मेरा सभी जगह लोगोंने पूरा सम्मान किया। रोहितकीमें मेरे चचेरे भाईकी ससुराल थी। भाभी सुनन्दा भी वहीं थीं। सुनन्दा मुझे बहुत प्यार करती थीं। अग्रोदकामें नाचके वक्त मैं जब कभी रहता, तो वह मेरे ही साथ नाचतीं। उन्होंने मेरे नाच-गानके प्रशंसाके पुल बाँध दिए थे। और फिर रोहितकीके छः दिनके निवासमें मुझे रोज़ छः-छः सात-सात घण्टा एकसे

अधिक तरुणियोंके साथ नाचना पड़ता। कभी-कभी हम रास भी करते थे, जिसमें दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह तरुण-तरुणी मंडल बाँधकर नाचते थे। सुनन्दा-की छोटी बहिन नन्दा उमरमें मुझसे कुछ अधिक और बलिष्ठ यौधेयिका थी। नाचमें वह मुझे थका नहीं सकी, लेकिन वह मौक़ेके ताक में रहती थी। एक-एक बारमें एक-एक घड़ा दूध पी डालना यौधेय तरुणोंकेलिए खेल था। यद्यपि पाटलिपुत्रके राजप्रासादमें पले तरुणके लिए यह बात संभव नहीं थी, लेकिन मैं जब कभी यौधेय भूमिमें आता, तो पूरा यौधेय बननेकी कोशिश करता। एक दिन सबने षड्यंत्र किया और मुझे दूध औटनेके घरसे दूध लानेके लिए कहा। जब मैं घरमें घुसना चाहता था तो नन्दा आकर दरवाज़े पर खड़ी हो गई। उसने अपने दोनों बाहोंसे द्वारके बाजुओंको पकड़ लिया, और मुझे ललकारकर कहा—'चाहे तो मेरी टाँगके भीतरसे जाओ या मुझे हटाकर जाओ।' मैंने बहुत अनुनय-विनय किया। उसको अपने बलपर अभिमान था और मैं भी अपनेको कम नहीं समझता था, लेकिन स्त्रीके साथ बल-परीक्षा करना अच्छा नहीं मालूम होता था। नन्दाने कहा—"देवर! तुम मुझे नारी जानकर नीच समझते हो न?"

"नहीं भाभी! मैं नारीको नीच नहीं समझता।"

"नारीकेलिए तुम्हारे हृदयमें स्थान नहीं है, यह मैं जानती हूँ।"

मैंने वीरासनमें बैठ दोनों हाथोंको जोड़कर कहा—"देवि! मैं तुम्हें अपने हृदयमें बैठानेकेलिए तैयार हूँ, तुम्हारे साथ बल दिखलानेकेलिए नहीं।"

"नाटक मत करो देवर जय! बहन बतलाती हैं कि तुम बड़े निष्ठुर हो।"

"भाभी सुनन्दाकी मेरे बारेमें यह राय! तुम्हीं बतलाओ मैंने तुम्हारे साथ या किसी तरुणीके साथ नाचनेमें ज़रा भी आनाकानी की है? तुमने रात-रात भर नचाकर मुझे अधमरा कर डाला, किन्तु क्या मैंने कभी 'ना' किया?"

"वह तो तुम्हारे अभिमानकी बात थी, तुम किसीसे हारना नहीं चाहते।"

"तो तुम मुझे हराना चाहती हो भाभी! मैं ऐसे ही हार जानेकेलिए तैयार हूँ।"

"तो नाक रगड़ो और टाँगके नीचेसे होकर जाओ।"

"नाक तो मैं सौ बार तुम्हारे चरणोंपर रगड़नेकेलिए तैयार हूँ, किन्तु दूसरी शर्त न तुम्हें शोभा देती है न मुझे ही।

"शोभाकी बात छोड़ो, आज चाहे ख़ाली हाथ लौटकर मित्रोंके तानेको सुनो, या नन्दा जो कह रही है उसे स्वीकार करो।"

"तो मैं तुमसे मल्ल-युद्ध करूँ! लेकिन यह मल्ल-युद्धका स्थान भी तो नहीं है और न उसकेलिए तुम्हारा यह वेष ही उपयुक्त है।"

"स्थान तो कोई भी हो सकता है और भेस बदलनेकी बात तो ख़ूब कही! तुम्हारा मतलब है नन्दा भेस बदलने जाय और तुम नौ-दो-ग्यारह हो जाओ।"

"मैं नौ-दो-ग्यारह नहीं होऊँगा। यौधेयकी बातपर तो तुम विश्वास कर सकती हो?"

"नहीं बाबा! मैं विश्वास-उश्वासकी बात नहीं जानती।"

मैं बड़े असमञ्जसमें पड़ गया। मैं देख रहा था कि पीछेके द्वारसे कभी-कभी हल्की हँसी सुनाई देती है, और कभी कुछ आँखें झाँकती हैं। मैंने सोच-साच कर नन्दासे कहा—"तो भाभी! एक बात करो, कोई भार रक्खो। उसे तुम भी उठाओ और मैं भी, जो भार अधिक उठा सके, उसकी जीत रही।"

"उहुँक, भार तो गधे उठाया करते हैं।"

"अच्छा, मैं यह अपनी बँधी मुट्ठी तुम्हारे सामने रख रहा हूँ, यदि तुम इसे खोल दो, तो मैं हारा, तुम जीतीं।"

"हाँ, यह कुछ बुद्धिकी बात मालूम होती है।" नन्दा तैयार हो गई। मैंने मुट्ठी बाँधकर उसके सामने की। उसके अरुण कपोल और अरुण हो गए और बोल उठी—"ज़रूर बहन सच कहती थी, देवर जय! तुम नारीको बहुत हीन समझते हो। मेरे सामने दायाँ नहीं बायाँ हाथ कर रहे हो।"

मैंने हँसते हुए बायाँ हाथ हटा कर दाहिना हाथ उसके सामने कर दिया। उसने दोनों हाथ लगा मुट्ठी खोलनी चाही, लेकिन वह कहाँ खुलनेवाली थी। उसके ललाटपर पसीनेकी बूँदें उछल आईं। उसके केश गालोंपर बिखर आए। मैं जब तब उन्हें अपने बाएँ हाथसे हटा देता और 'साधु-साधु' कह उसे उत्साहित करता। वह और उत्तेजित हो हाथोंको खोलना चाहती थी। आँगन

"ससुरालमें आए हो देवर। आखिर रोहितकीकी कुमारियोंको ऐसा अवसर कब मिलेगा ?"

दूध हम लोगोंने पिया। शामको अकेले ही मुझे कुमारियोंकी पान-गोष्ठी में जाना पड़ा। मैं इसकेलिए बहुत सावधान था कि मात्रा अधिक न होने पाये, लेकिन नन्दा और उसकी सेना भी सजग थी। मैंने अपने भरे चषकको उठाकर पासकी कुमारीसे कहा—"सखि! नारी अधरसे लगे बिना मदिरा मधुर नहीं होती, ज़रा इसे अपने ओठोंसे पवित्र तो कर देना।"

मेरी प्रार्थनाको किसीने इनकार नहीं किया और जब कुछ आँखोंमें लाली दौड़ने लगी, तो पवित्र करने वालियोंके घूंट भी बड़े-बड़े होने लगे। यद्यपि इस तरह मैं कमसे कम मदिरा पी रहा था, लेकिन चारों ओरसे "और-और" की आवाज़ आ रही थी। जान बचानेकेलिए मैंने गाना शुरू किया। जिनमें कुछ थे सौमिल्लके शृङ्गारपूर्ण पद। उसने मेरी ज़्यादा रक्षा की। एक घूंट पीकर मैं अपने चषकको नन्दा या किसी दूसरेके हाथमें दे देता और फिर गाने लग जाता। दूसरी तरुणियोंने भी गाने सुनाए। अन्तमें मैंने अपनेको नशामें चूर दिखलानेकेलिए अपने स्वरोंको विकृत कर लिया। विजयकी हँसी उठने लगी, लेकिन जब पान-गोष्ठीसे बाहर निकला, तो झुककर बंदना करते हुए मैंने कहा—"सखियो! देखो मेरा नशा खतम हो गया" और मैंने प्रकृतिस्थ हो एक गीत गाया। सभीकी आँखें लाल थीं, सभीके ओंठ फड़फड़ा रहे थे, कौन मेरे ताने और मार्मिक हँसीको समझता?

(७)

हिमालय और उत्सवसंकेत

हिमालयको दूरसे मैं देख चुका था। आचार्यने हिमालयके देवदारुओं और उसके सरल-प्रकृति निवासियोंकी कितनी ही बार चर्चाकी थी। मैंने चन्द्र-से हिमालय चलनेके बारेमें कहा। ऐसी बातोंकेलिए वह हर वक्त तैयार रहता था। अज्जुकाने भी अपनी स्वीकृति दे ही दी और तातने तो और प्रोत्साहित किया। हमने इन्द्रप्रस्थ तक जा अज्जुकाको नावपर चढ़ा दिया और फिर घोड़ोंपर सवार हो उत्तरका रास्ता लिया। स्रुघ्नके और आगे तक हम यमुनाके

पच्छिमी तटसे गए। जंगलका रास्ता आया, लेकिन हमने सार्थ (कारवाँ)-का संग पकड़ लिया था। हिमालयके चरणोंमें दूर तक फैले इस घने जंगलमें व्याघ्र, गज, गैंडा आदि बहुत तरहके जंतु रहते हैं, लेकिन हम शिकार करनेके लिए नहीं निकले थे। कितने ही दिनोंकी यात्राके बाद हम सपादलक्ष (शिवालिक) पर्वतश्रेणीकी छोटी-छोटी पहाड़ियोंको पार करते हिमालयके चरणमें अवस्थित खलतिका (कालसी) नगरीमें पहुँचे। आजकल नगरीमें आदमियों-की बहुत भीड़ थी। पंचाल, अंतर्वेदी, यौधेय, स्रुघ्न ही नहीं, दूर-दूरके सार्थ-वाह अपने घोड़ों, खच्चरों, बैलोंको लेकर वहाँ पहुँचे थे। हिमालयके दुर्गम स्थानोंसे बहुतसे पर्वतीय भेड़ों-बकरियोंपर सामान लादे वहाँ आये थे। पर्वतियों-की पोशाक अधिकतर ऊनी थी, जो कुछ-कुछ शकोंके कंचुक और सुत्थनसे मिलती थी। कोई-कोई बिना सिले कंबलको ही कंधेपर लोहेकी कीलसे बाँधकर पहिने हुए थे। स्त्रियाँ भी ऊनी साड़ी पहिने थीं, लेकिन साड़ी नहीं, बल्कि गात्री (गाती) के तौरपर और जिसे दाहिने कंधेपर लोहेकी कीलसे बाँधकर संभाला गया था। पर्वतीय नहाना नहीं जानते। उनका शरीर, कपड़ा सब बहुत मैला था और पास जानेपर दुर्गन्ध आती थी। व्यापारी इन सीधे-सादे लोगोंको तरह-तरहसे ठगते थे। लेकिन खलतिका जब यौधेयोंके राज्यमें थी, तो वह ज्यादा कड़ाई रखते थे। देवपुत्रशाही और उसके बाद समुद्रगुप्तके हाथमें चले जानेपर अब ऐसे कूटवणिकोंकी बन आई थी। बेचारे पर्वतीय हिसाब भी नहीं जानते थे, फिर कुषाण और गुप्तके नाना प्रकारके दीनारों और पणोंके गिननेमें क्यों न ठगे जाते! बनियोंने ठगनेका एक और तरीक़ा निकाला है। ख़ूब अच्छी लाल शराब उनके सामने हाज़िर कर देते, फिर मुँह बोले दामपर चीज़ें ख़रीदते-बेचते हैं।

खलतिका यमुनाके दक्षिण तटपर बसी है। यहीं वह पहाड़से नीचे उतरती है। इसे यमुना-द्वार कह सकते हैं। यमुना-तटपर ही ज़रासा ऊपर एक शिला है, जिसपर अशोकके लेख खुदे हुए हैं। जान पड़ता है खलतिका चिरकालसे हिमालयका एक अच्छा व्यापारिक केन्द्र रही है। खलतिकाके कुमारामात्य (ज़िलाधीश) ने युवराज चंद्रगुप्त और उनके मामाका ख़ूब स्वागत किया। युवराजकेलिए तो एक छोटा-मोटा दरबार ही रचा दिया गया था।

लोग धरतीपर सिर रख-रख कर वंदना करते, और उपायन चढ़ाते थे। हमने कुमारामात्यसे हिमालयकी सैर करनेकी बात कही। उन्होंने बतलाया—"मैं तो बहुत दूर तक नहीं गया हूँ, लेकिन पर्वतीय लोग बड़े सच्चे होते हैं, छल-कपट, चोरी-बदमाशी नहीं जानते। हाँ, रास्ता कठिन है, अजपथ है—बकरी और भेड़ोंकेलिए ही यह रास्ता सुगम है। पर्वतीय भी इन दुर्गम रास्तोंपर बकरीकी भाँति खट-खट चढ़ जाते हैं। लेकिन वहाँ हिंस्र जंतुओंका अधिक भय नहीं है। चार-पाँच दिन ऊपर चढ़नेकेबाद हा ग्रीष्मकी ताप खतम हो जाती है, और फिर जाड़ों जैसा आनन्द आने लगता है। लेकिन भट्टा! यदि आप तीन-चार दिनके रास्ते तक जाना चाहते हैं, तब तो कोई बात नहीं, नहीं तो खाने-पीनेकी बड़ी तकलीफ होगी।

मैंने कहा—"आखिर ये पर्वतीय लोग भी तो कुछ खाते होंगे?"

"उनके खानेका क्या? जंगलकी पत्तियोंका साग, मांस और जौका सत्तू। नमककी भी उन्हें पर्वाह नहीं।"

चंद्रगुप्तने कहा—"तो अमात्य! हमारेलिए वह खाना काफ़ी है। हम कभी मांसको आगपर भून लिया करेंगे; कभी उबाल लिया करेंगे। यहाँसे काफ़ी सैन्धव ले चलेंगे और दीनार तो वहाँ चल ही जायेगा।"

"दीनार भरका सौदा वहाँ कहाँ मिलेगा, अधिकतर पण (ताम्रका पैसा) पादक (¼ पण) और माशक (माशा भरका ताँबेका सिक्का) ले जाना चाहिए। लेकिन इसकेलिए चिन्ता करनेकी ज़रूरत नहीं, मैं पर्वतीय ग्रामकों और सामतों-को आपकी सेवाकेलिए लिख दूँगा।"

मैंने कहा—"मैं समझता हूँ चन्द्र! हमें राजसी ठाटसे नहीं चलना है, नहीं तो पूरी एक सेना साथ हो जायगी; फिर गाँववालोंको कष्ट होगा और भी। गाँव तो वहाँ हैं न?"

अमात्य ने कहा "गाँव हैं क्यों नहीं, लेकिन दूर-दूरपर और अधिकतर छोटे-छोटे।"

"तो अमात्य! हमको चार-पाँच आदमी दीजिए, और कुछ ग्रामकों और सामंतोंके नाम लेख लिख दीजिए। एक अच्छा पथ-प्रदर्शक ज़रूर होना चाहिए।"

"पथ-प्रदर्शक तो मिल जायेगा लेकिन आप जाना किस दिशामें चाहते हैं।"

"जाना चाहते हैं उत्सव-संकेतमें, और देखना चाहते हैं, हिमालयके सुन्दरतम दृश्य।"

"उत्सव-संकेत तो यहाँसे आगे पहिलेही गाँवसे शुरू हो जाता है; आगे दस-पंद्रह दिन चलते जाइये सारा उत्सव संकेत ही है। लेकिन यह नीचे जैसा देश नहीं है। यहाँ एक-एक दिन जानेके बाद चार-छः घरका एक गाँव मिल जाता है। पर्वतीय सामन्तोंका गाँव कुछ बड़ा होता है।"

खलतिकामें हमारे देखनेकेलिए बहुत चीज़ें नहीं थीं। वही पर्वतीय नर-नारी और उनके मैले-कुचैले वस्त्र, भेड़-बकरियोंका झुण्ड और उनपर लादने-की छोटी-छोटी बोरियोंकी राशि। कुमारामात्यने विज्जक नामके एक पर्वतीयको हमारेलिए पथप्रदर्शक दिया। विज्जक यद्यपि पर्वत-प्रदेशमें पैदा हुआ था, लेकिन वह अपने बहिनके साथ कुमारामात्यके पास कई वर्षोंसे रह आया था, और हमारे रीति-रिवाजको ख़ूब समझता था। उसे हाथ-मुँह धोनेकी आदत थी। पूछने पर उसने बतलाया—"भेड़-बकरियोंपर सामानको तो ले जाया जा सकता है, किन्तु वह चलती बहुत धीमी हैं, उनके साथ हम लोग एक या सवा योजनसे अधिक नहीं चल सकेंगे।"

आख़िरमें पाँच भारवाहक ले चलनेका निश्चय हुआ। विज्जकने बत-लाया कि आगे शीत बहुत पड़ता है। इसलिए ऊर्ण-वस्त्रका पूरा प्रबंध करके चलना चाहिए। कंचुक, सुत्थन, कनटोप और मज़बूत उपानह (सारा पैर ढँकनेवाला जूता) हमने तैयार करवा लिया। खानेकी चीज़ोंमें लवण कुछ अधिक ले लिया। एक दिन हम सात आदमी खलतिकासे चल पड़े। यद्यपि खलतिका बस्तीमें आनेकेलिए हमें थोड़ा पहाड़ चढ़ना पड़ा था, लेकिन वह कुछ नहीं था। पहिले दिन तो तीन घंटा चलनेके बाद हमारे पैर भर गए। बार-बार तालू सूख जाता था। हम दोनों ही व्यायाम और कठिन नृत्यके निरंतर अभ्यासी थे, तो भी संध्यासे पहिले जब हम अगले गाँवमें विश्रामकेलिए ठहरे, तो जान पड़ता था, कि अंग-अंग चूर्ण कर दिया गया है। उस दिन हम दो योजन (१२ मील) से ज्यादा नहीं चल पाये। थोड़ी ही दूर चलनेपर सुस्ताने-

केलिए बैठना पड़ता था। पर्वत नीचेसे ऊपर तक हरे-हरे वृक्षों और उनपर लिपटी लताओंसे ढँका हुआ था। नाना प्रकारके पक्षी भिन्न-भिन्न स्वरोंमें कलरव कर रहे थे, उनका स्वर बहुत मधुर था, हरे-पीले, लाल रंगोंके उड़ते चमकीले पक्ष बहुत सुन्दर मालूम पड़ते थे। और झिल्ली तो एक दूसरेसे आगे बढ़नेकेलिए निरंतर झंकार कर रही थी। झरने जगह-जगह थे और उनका पानी बड़ा शीतल था; लेकिन विजकने हमें डरा दिया था कि चलते-चलते पानी पीना विषपान समान है। क्या करते, तालू सूखते रहनेपर भी ठंडे पानीके पास कितनेही क्षण चुपचाप बैठना पड़ता। विजकको रास्तेके सभी गाँव मालूम थे। वह ऊपरी उत्सव-सकेतसे बहुत आगे तक विशाल सरोवरोंके प्रदेश तक को देखे था, इसलिए हम रास्तेकेलिए निश्चिन्त थे। यद्यपि उसे आज्ञा थी, कि वह हमारे बारेमें इसके सिवा और कुछ न बतलाये कि हम लोग कुमारा-मात्यके स्वजातीय हैं लेकिन वह खुद जानता था कि हम कौन हैं।

दो योजन मार्ग आधे दिनकी भी यात्रा नहीं है, लेकिन हम संध्या होनेसे थोड़ा ही पहिले विश्राम-स्थानपर पहुँचे। विजकने चार भारवाहकोंको आगे भेज दिया था।

पहिला गाँव सौ घरोंकी एक अच्छी खासी बस्ती थी। वह नदी-तटसे जरा ऊपर कुछ थोड़ी समतल-सी अधित्यकामें बसा था। नीचे होता तो हम ग्राम-ज्येष्ठकको ग्रामिक कहते, लेकिन यहाँ वह राजा कहा जाता था। उसे मगधराज को पर्वतकी कितनी ही चीज़ें उपायनमें देनी पड़ती थीं, बाकी इस बड़े गाँव और वहाँसे पाँच योजन और ऊपर तकके पहाड़ी गाँवोंपर उसीका शासन था। राजाको खबर लग गई थी, उसने अपने प्रधान द्वारपर हमारा स्वागत किया। उसकी पोशाक दूसरे पहाड़ियों ऐसी नहीं थी। वह ज्यादातर शकों जैसी थी, मगर अब मध्यदेशका भी प्रभाव पड़ने लगा था। मकान किला और निवास-स्थान दोनों था। वह काफ़ी बड़ा था। दीवारें छोटे-बड़े पत्थरों की थीं, और छत लकड़ीकी; फ़र्श और सजानेकेलिए लकड़ीका बहुत उपयोग किया गया था। हमें कोठेपर, अपने जान, खूब साफ़-सुथरी दो कोठरियोंमें ठहराया गया। जाते ही गर्म पानी आया—यह विजकका प्रबन्ध था। विजकने हमारे पैर

धोये और फिर बिस्तरेपर लेट जानेकेलिए कहा। उस थकावटमें हमें खाने की इच्छा नहीं थी, इसलिए चुपचाप छोड़ देनेकेलिए कह दिया।

मैं कभी छतकी बड़ी-बड़ी कड़ियोंकी ओर देख रहा था और कभी लकड़ी के फ़र्शकी ओर। मैं पर्यंकपर सोया था, लेकिन अभी यह नहीं समझ पाया था कि यह नीचेके संपर्कका फल है। ज़रा ही देर हुई कि देखा, काष्ठपात्रमें तेल लिए एक षोड़शी मेरी कोठरीमें दाखिल हुई। उसके हाथ-मुँह धुले हुए थे, कपड़े भी साफ़ थे और केशोंकी दो वेणी पीठपर लटक रही थी। एक झलक देखते ही मालूम हो गया कि उसमें सौन्दर्य और तारुण्यका सुन्दर सम्मिश्रण है। षोड़शीने सिर झुकाकर प्रणाम किया, फिर मेरे पैरोंमें तेल मलने लगी। यह बातें कुछ इस तरहसे हुईं और इतनी जल्दी कि मैं कुछ बोल नहीं सका। अब जब तेल लगाकर वह पैरोंको धीरे-धीरे दाबने लगी, तो मुझे इतना आराम मालूम होने लगा कि इनकार करनेकी इच्छा नहीं रह गई। वह कितनी देर तक तेल मलती रही, यह मुझे मालूम नहीं। मुझे थकावटसे या उसके संवाहन (दाबने) के कारण निद्रा आ गई। न जाने कितनी देर तक सोता रहा, फिर देखा कोई मेरे पैरोंको दबाकर जगाना चाहता है। इस वक्त रात हो गई थी। कोठरीके एक कोनेमें पीतलकी दीवटपर चतुर्मुख दीपक जल रहा था। विज्जकने आँख खोले देख कहा—"भर्तृदारक! भोजन तैयार है।"

मेरी इच्छा हुई कि षोड़शीके बारेमें पूछूँ। किन्तु नींदसे तुरन्त उठनेके कारण यह विचार कुछ देरसे आया। मैं आँख मलते यंत्रवत् उसके पीछे चल पड़ा। चन्द्र मुझसे पहले ही पहुँच चुका था। राजाने हमारे खानेकेलिए कई तरहके मांस, गंधशालीका ओदन, सूप और व्यंजन तैयार कराये थे। राजाको अक्सर कुमारामात्यके पास जाना पड़ता था, इसलिए गुप्तोंकी सूप-शालाके कितनेही भाजनोंको उसने अपना लिया था। उदुंबरी सुरा भी वहाँ रखी हुई थी। चन्द्रगुप्त तो सारी थकावट भूल चुका था, लेकिन मेरे ऊपर अभी तन्द्राका ज़ोर था। खाते-पीते बात करते कितनी ही रात और बीत गई। जब मैं अपने कक्षमें आया, तो साथ ही चन्द्रगुप्त भी वहाँ आ गया। मैंने पूछा—"क्या बात है?"

"मुझे तो थकावट मालूम ही नहीं होती, और तुम्हें जय ?"

"मुझे तो कुछ-कुछ थकावट मालूम हो रही है।"

"तो तुमने थकावट की औषधि नहीं की ?"

"तेल तो मेरे पैरोंमें भी लगा, और उससे आराम भी हुआ।"

"जय ! तुम निरे वही रहे।"

"वही क्या ?"

"गँवार पूरे गँवार ! षोड़शीने तो मेरी सारी थकावटको ही हर लिया।"

"यह बात ! आश्चर्य ! तुम्हारेलिए तो चन्द्र यहाँ भी पाटलिपुत्रका अन्तःपुर आ गया।"

"और इसे ही कहते हैं भाग्य जय ! और तुम तो निरे अभागे हो।"

"अभागा क्यों ?"

"षोड़शीसे कुछ बातचीत की ?"

"मुझे तो उसके हल्के-हल्के संवाहनसे नींद आ गई थी और आँख मलते हुए खाने गया था।"

"तो तुम्हें सिखलाना पड़ेगा। षोड़शी हमारी सेवाकेलिए भेजी गई थी। यह उत्सव-संकेत है। यहाँ माननीय अतिथिके आनेपर घरकी कुमारीको अतिथिकी सेवामें अर्पण किया जाता है, वैसे ही जैसे भोजन और पान। षोड़शी कुमारी न होनेपर घरकी किसी भी तरुणीको प्रदान करना अतिथि-सेवा धर्मका अभिन्न अंग समझा जाता है।"

"मुझे कुछ समझ में नहीं आता।"

"नीचेके बड़े-बड़े राजभवनोंमें भी यह बात है, लेकिन वहाँ अपनी कन्या अपनी बधू नहीं भेजी जाती। वहाँ वह काम दासी या परिचारिकासे लिया जाता है।"

"तुम्हें यह मालूम कैसे हुआ चन्द्र ?"

"थका तो मैं भी था, किन्तु षोड़शीके आते ही मैं उसे वहाँ रहनेका इशाराकर विजकके पास चला गया। उसने बतलाया कि राजाकी ये दोनों छोटी-बड़ी राज-कुमारियाँ हैं, अभी विवाहिता नहीं हैं, इस तरहकी अतिथि-सेवा करना हमारे उत्सव-संकेतका धर्म है।"

"तो फिर ?"

"तो फिर क्या ? षोड़शीके स्पर्शके बाद भी क्या शरीरमें थकावट रह सकती है, शरीरमें जहाँ-जहाँ उसका स्पर्श हुआ, वहाँ-वहाँसे सारी व्यथा दूर हो गई।"

"तुम बड़े·····"

"नीच हूँ, यही न कहना चाहते हो। लेकिन उत्सव-संकेतमें अतिथि को यह अधिकार है।"

"अधिकारको मैं बुरा नहीं कहता, लेकिन उत्सव-संकेत-वासी अतिथियों को ही यह अधिकार होना चाहिये।"

"हम क्यों वंचित रहें ?"

"क्योंकि हमारे हृदय ज्यादा कुटिल, ज्यादा संकीर्ण हैं। ये पर्वतीय लोग बहुत सीधे-सादे हैं, खान-पानकी और वस्तुओंकी तरह वे स्त्री-पुरुष-संसर्गको भी उसी शुद्ध भावसे देखते हैं। लेकिन हमारे दिलमें इसे देखकर वेश्याओंका खयाल आ जाता है। वेश्याको शरीर बेचना पड़ता है; वह पैसेकेलिए वैसा करती है; लेकिन यहाँ पैसेका कोई खयाल नहीं। देशमें सर्वत्र यही प्रचलित प्रथा होनेसे उपकार या कृतज्ञताका भी खयाल नहीं; यह शुद्ध भाव मेरा ध्यान किसी पुरानी कथाकी ओर ले जाता है।"

"ठोस धरती छोड़कर कभी पुरानी कथाकी ओर दौड़ते हो और कभी आकाशकी ओर। आखिर तुम्हें पुरुष क्यों बनाया गया ?"

"मनुष्य बननेकेलिए बिचारनेकेलिए पुराने ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि एक देशमें भी भिन्न-भिन्न समयमें भिन्न-भिन्न आचार माने जाते थे। शाक्योंकी उत्पत्तिके बारेमें कहा जाता है कि पिताने अपने कितने ही पुत्रों और पुत्रियोंको जंगलमें भेज दिया, जहाँ उन्होंने वर्ण (रंग) बिगड़ जाने के डरसे अपनीही बहनोंके साथ ब्याह किया। इसी तरह देवकन्याओंके बारेमें कथाएँ आती हैं उनमें स्थायी विवाह नहीं होता था, वह एक-एक दिनकेलिए किसीकी पत्नी हो जाती थीं। यहाँपर भी हम इस प्रथाको देख रहे हैं, इसमें वेश्यावृत्ति या पैसेकेलिए शरीर बेचनेका कोई खयाल नहीं। लेकिन हमारे समाजसे आये हुये आदमी इसे उस अर्थमें नहीं ले सकते।"

"तुम्हारी चले तो हम जैसोंको गंगाके पास पहुँचकर भी प्यासा ही रहना पड़े। सौभाग्य यही है कि तुम उत्सव-संकेत-वासियोंको इस जीवन भरमें तो अपना दर्शन नहीं समझा सकते। अच्छा मैं चला, अब तुम भी आराम करो। और हो सके तो इस यात्रा भरकेलिए उत्सव-संकेत-निवासी बन जाओ।"

चन्द्र चला गया। मैं अपनी चारपाई पर पड़ा-पड़ा सोचने लगा। कुछ देर बाद पैरोंकी आहट सुनाई दी और षोड़शी मेरे कोष्ठकमें दाखिल हुई। मेरेलिए अब कुछ तय करना था—मेरे सामने कठिनाइयोंके पहाड़ खड़े थे: अपने भावोंको समझानेकेलिए कोई ढंग नहीं मालूम होता था। षोड़शी जिस सनातन सदाचार धर्मसे परिचित है, उसके विरुद्ध जाकर मैं उसके दिलमें कितनी तरहकी शंकाओंको पैदा करूँगा। वह आकर चारपाईपर बैठ गई। मैंने पैरोंको फैला दिया। वह चापने लगी। मुझे सोचनेका मौक़ा तो मिला, लेकिन किसी निश्चयपर पहुँचना मुश्किल था। जैसे ग्रीष्मके परिधानको लेकर शिशिरमें पहुँच जानेसे आदमीकी हालत होती है, वैसी ही मेरी हालत हुई। वह चुपचाप बैठी पैरोंको दाबती रही। उसकी आँखें नीचेकी ओर थीं, लेकिन कभी-कभी वह मेरी ओर भी देख लेती थी। पहिली झाँकीमें मैंने जैसा समझा था, वह उससे भी ज्यादा सुन्दर थी। हृदयमें तरुणाईका तूफ़ान आया, आखिर मैं भी तरुण था, मैं भी पुरुष था। षोड़शीके कोमल स्पर्शसे सारे शरीरमें रोमांच हो आया था। कभी मनमें आता धर्मका अनुसरण देश-कालके अनुसार करना चाहिए; लेकिन फिर सोचने लगता, क्या मैं मनको भी इस धर्ममें ढाल सकता हूँ। यदि ढाल नहीं सकता, तो यह पतन होगा।

न जाने कितनी देर इसी उधेड़बुनमें रहा फिर निद्राने मुझे आ घेरा। सवेरे नींद खुली तो देखा षोड़शी मेरे बग़लमें सोई हुई है। मैं जल्दीसे उठकर बाहर चला गया। प्रातः शौचसे निवृत्त होते-होते सूर्योदय हो गया। विजकने बतलाया कि चन्द्र बेख़बर सो रहा है। प्रातराशकेलिए वह नहीं उठ सका। मध्याह्न भोजनकेलिए ख़ैर तैयार होकर आया। मैंने कहा—"चलना है कि नहीं?"

"इच्छा तो नहीं होती, अभी थकावट पूरी तौरसे दूर नहीं हुई है।"

"यह अतिथि-सत्कार उत्सव-संकेतमें कहीं भी दुर्लभ नहीं है। अभी तो उत्सव-संकेतकी सीमाके भीतर ही तुमने पैर रक्खा है। आखिर हमें हिमालयके वैभवको भी देखना है।"

"हाँ, ठीक कहा, भँवरेको एक पुष्पमें अपनेको साट नहीं देना चाहिए। चलो, चलें।"

दोपहर बाद हम लोग चल पड़े। विज्जकने बतलाया था कि अगला गामड़ा डेढ़ योजनसे अधिक दूर नहीं है। हम भी पहाड़की चढ़ाईके अभ्यस्त होनेकेलिए तुले हुए थे। व्यायामके अनुभवसे हम जानते थे कि पैरोंका दुखना बराबर नहीं रहेगा। हमारे पर्वतीय भार-वाहक भारी बोझको पीठपर-लिए उछलते हुए चलते थे। विज्जककी पीठपर थोड़ी-सी खाने-पीनेकी चीज़ें रहती थीं। मैंने उसे सभी भार-वाहकोंको अगले गाँवमें भेज देनेको कहा। पहाड़ नीचे होनेकी जगह ऊँचे ही होते जा रहे थे। हम जितना ही आगे बढ़ते, उतना ही हमारे सामनेका आकाश नई पर्वत श्रेणियोंसे आच्छादित दिखाई पड़ता। आज चलनेमें कलसे कम श्रम मालूम होता था। आज इस मनोहर उपत्यकाके सुन्दर दृश्योंसे आँखोंको आप्यायित करते हम चल रहे थे। कल जैसी मानसिक विकलता आज नहीं थी, यद्यपि चढ़ाई वैसी ही थी। कहीं-कहीं पैर रखनेमें भय होता था। अभी हमें अजपथपर चलनेका अभ्यास नहीं था। सीधी चढ़ाई, चार अंगुलका रास्ता और एक तरफ़ हज़ारों हाथ नीची खड्ड, फिर कलेजा क्यों न काँप उठता। लेकिन मैं सोचता था, जो काम विज्जककर सकता है, वह मैं क्यों नहीं कर सकता। विज्जककी पीठके भारमें मैंने बाँसुरी देखी। मेरे कहनेपर उसने एक पर्वतीय राग बजाया, यद्यपि वह बहुत सीधा-सादा था, किन्तु था बहुत मधुर। उस वक्त मुझे अपनी वीणा याद आई। लेकिन इस अजपथमें वीणा लेकर चलना बुद्धिमानी नहीं कही जाती। बंशी बजानेका मैंने ज्यादा अभ्यास तो नहीं किया था, यहाँकेलिए वह बड़ा ही अनुकूल वाद्य मालूम हुआ। मैंने उसे लेकर एक द्विपदी छेड़ी। विज्जक यह देखकर परम प्रसन्न हुआ। इस एक समानधर्मताने विज्जकको मेरा घनिष्ट मित्र बना दिया।

शामको जिस गाँवमें हम ठहरे, उसमें चार घर थे। एक घर कुछ अच्छा

था, उसीमें हमें ठहराया गया। यहाँ अलग-अलग कोठरियाँ कहाँ मिल सकती थीं। दो ही घर थे जिनके नीचे भेड़-बकरियों और गायोंके बाँधनेका स्थान था। राजाके हाथका लिखा पत्र भारवाहकोंने ग्रामिक (मुखिया) को दिखला दिया था, ग्रामिक बेचारा पढ़ा तो था नहीं किन्तु वह अपने राजाकी मुहर पहचानता था और भोजपत्रके ऊपर जहाँ लेख समाप्त होता था, वहाँ वह मौजूद थी। भारवाहकोंने हम लोगोंकी खूब लम्बी-चौड़ी प्रशंसाकी—मध्यदेशके युवराज (तरुण राजकुमार) आदि न जाने क्या-क्या कहा था। ग्रामिकने अपने जान हमारेलिए बहुत अच्छी जगह दी थी। गर्म पानीसे पैर धोनेकेलिए दो स्त्रियाँ आईं। चन्द्रको वह पसन्द न थीं। क्योंकि वह उमरमेंभी कुछ ज्यादा थीं, उनके शरीरपर मैलकी तह पड़ी हुई थी और उतनी सुन्दर भी न थीं।

आज हम कम थके थे। ग्रामिकने लाकर हमारे सामने चषक और यवको मेरय (कच्ची शराब) का कुतुप लाके रखा। हमने ग्रामिकके साथ उसमेंसे दो-एक चषक पिए। इस घरमें चार-पाँच पुरुष थे, स्त्रियाँ दो ही थीं, जिनमें एक घरकी बहिन थी। लड़के थे, किन्तु कोई लड़की नहीं थी। विज्जकने बतलाया, उत्सव-संकेतमें सभी भाइयोंकी एक ही पत्नी होती है। इन पाँचों भाइयोंकी वही एक स्त्री है। मैं विज्जकसे उत्सव-संकेतके बारेमें कितनी ही बातें पूछता रहा। उसका संकोच हट गया था, इसलिए हम लोग खुलकर बात करते थे।

खाना खाया। राजाके रसोईका खाना तो यहाँ नहीं था, लेकिन मांस आगमें भुना हुआ तथा लवणके साथ पानीमें उबाला भी था; साथ ही सोनेसे पहिले छै घड़ी तक पकते मांस-मिश्रित हड्डीका गर्मागर्म सूप मिला। वह पीनेमें बहुत अच्छा लगा। हम लोगोंका बिस्तर जिस घरमें पड़ा था, उसे घर वालोंने खाली कर दिया था। मैं सोच रहा था कि कलवाली बात फिर यहाँ दुहरायी जायेगी, लेकिन इसी समय शरीरमें चुनचुनी लगने लगी। मैं उसे खुजलाकर दूर करना चाहता था, किन्तु चुनचुनी बढ़ती ही जाती थी। हाथसे छूकर देखा तो सारे शरीरमें चकत्ते पड़ गए थे। मैंने चन्द्रसे पूछा—"कहो नींद तो आ रही है? चिन्ता मत करो, घरका काम-काज कर लेनेके पाद-संवाहिका आ ही जायेगी।"

"छोड़ो पादसंवाहिकाकी बात, यहाँ तो सारे शरीरमें आग लगी हुई है।"

"विरह-ज्वर है क्या ?"

"तो तुम्हारे शरीरमें कुछ मालूम नहीं होता क्या जय ?"

"मालूम होता है कि सारे शरीरमें सुइयाँ चुभ रही हैं। कोई चीज़ काट रही है! यहाँ सोया नहीं जाया सकता, चलो बाहर चलें!

विज्जकको बुलाकर पूछा। उसने कहा—"अब हम पिस्सुओं के देशमें आ गए। आगे तो शायद ही कोई घर मिले, जहाँ इनसे जान बच सके।"

मैंने चन्द्रसे कहा—"क्या राय है ?"

"राय क्या है ? क्या पिस्सुओंके डरसे हमें भाग निकलना चाहिए ?"

"नहीं, रणक्षेत्रसे भागे वीरकेलिए घरका द्वार बन्द हो जाता है। हम बाहर खुली जगहमें क्यों न सोयें ?" विज्जकने एक चबूतरेको झाड़-झूड़कर साफ़कर दिया। वहाँ हम आरामसे सोए। चन्द्रने विज्जकको समझा दिया कि आज और अतिथि-सत्कारकी आवश्यकता नहीं।

तीसरे दिनसे हमारी चाल काफ़ी तेज़ हो गई थी, सप्ताह बीतते-बीतते तो हम भी पहाड़ोंको लाँघनेमें शेर बन गए थे; चार-चार पाँच-पाँच योजन दिनमें चल लेना हमारेलिए कठिन नहीं था। आगे बढ़नेके साथ सर्दी और बढ़ती जाती थी, लेकिन हमारे पास काफ़ी कपड़े थे। सात दिनके बाद पर्वतियोंका सीधा-सादा मांस भी चन्द्रगुप्तको फीका नहीं मालूम होता था। आगे पिस्सुओंके लिए भी हमें उपाय मालूम हो गये थे। यदि नया या बहुत दिनोंसे ख़ाली कोई मकान मिलता, तो हम घरके भीतर सोते; नहीं तो हमारा बिस्तर खुली जगहमें लगता। अब चढ़ाई थकावट की चीज़ नहीं थी कि विश्रामस्थानपर पहुँचते ही चित पड़ जायँ। अधिक घरवाले गाँवमें संध्याको मेरय-पानके बाद नर-नारी मिलकर नाचते थे। उनकी नृत्य-मुद्राओंको हमने पहले सीखा नहीं था, लेकिन वह बड़ी सरल थी। दो-तीन दिनके अभ्यासके बाद हम भी उसमें शामिल हो जाते थे। विज्जक ने मेरेलिए बाँसकी एक वंशी बना दी थी। मैं देखता था, कि यहाँवाले हमारे रागोंमें उतना रस नहीं लेते; इसलिए मैंने यहाँके भी कुछ

गीतोंको सीखा। अब हम उत्सव-संकेतवालोंके उत्सव-पूर्ण जीवनका पूरा आनन्द ले सकते थे।

हमारा रास्ता कभी तो सीधी चढ़ाईका होता, कभी सीधा उतरनेका और कभी पर्वतके मेरुदण्डपर हमें चलना पड़ता। डांड़ेपर काफ़ी मैदान मिलता था, जहाँ कहीं-कहीं मेष-पालकोंके डेरे मिलते थे। कितने ही दिन हमें गाँवकी जगह इन डेरोंमें बिताने पड़े थे। डाँड़ोंसे हिमाच्छादित शिखरोंकी श्रेणियां मध्याह्नमें रुपहली और प्रातः-सायं सुनहली दिखलाई पड़ती थीं। हम दोनों पहले तो पंद्रह-बीस दिनमें लौट आनेका निश्चय करके आये थे, किन्तु अब हिमालय अयस्कांतमणिका तरह हमारे हृदयोंको अपनी ओर खींच रहा था। हम उसे और नज़दीक से देखना चाहते थे।

इस यात्राकी दो घटनायें हमें नहीं भूल सकतीं। दोनोंने हमारे शरीरको रोमांचित कर दिया था। एकके समय हमारा तालू सूख गया था और दूसरीके समय हम अद्भुत आनंद अनुभव कर रहे थे। हिमालयकी नदियाँ बड़ी चपल और प्रगल्भ होती हैं, वहाँकी नारियोंसे बिल्कुल उल्टी। पानी बहुत कम जगह पानीकी तरह दिखलाई पड़ता है। चट्टानोंसे टकराकर जहाँ एक ओर वह घोर घर्घर नाद करता था, दूसरी ओर उबलते फेनिल दुग्ध-सा दिखाई पड़ता था। एक जगह हम नदीके पास पहुँचे। पार जानेकेलिए न वहाँ लकड़ीका कोई काष्ठ-सेतु था और न रज्जुसेतु हा। रज्जुसेतु तो हम कई बार पारकर चुके थे। यद्यपि पहिले उसे हिलते देखकर कुछ घबड़ाहट होती थी, किन्तु पीछे हाथ-डेढ़ हाथ ऊँची लकड़ी—रस्सीकी बनी बारियोंसे ढारस बँध जाता था। लेकिन यहाँ पार उतरनेकेलिए सिर्फ़ एक बल्कलका रस्सा था, जो दोनों किनारेके वृक्षोंसे बाँध दिया गया था। विजक और दूसरे भारवाहकोंने अपनी कण्डियों (पीठपर रखनेकी चोंगीनुमा टोकरी)से आठ-आठ अंगुल-लंबी एक लकड़ी निकाली। लकड़ीके निचले भागमें रस्सेकी आधी गोलाई जाने भरकेलिए गड्ढा था, और ऊपर पतली रस्सी थामनेकेलिए कुछ लीक-सी बनी थी। उन्होंने लकड़ीको रस्सेपर रखा, फिर पासकी रस्सीको बेड़े लकड़ी पर रखकर दो फन्दे बना लिए। मेरे देखते ही देखते एक भारवाहक कण्डी को पीठपर रखे अपने पैरोंको फन्देमें फँसा दोनों हाथोंसे रस्सेको दृढ़ता सरसर

खिसकने लगा, और थोड़ी देरमें वह दूसरे पार उतर गया। इस तरह एक-एक करके सब उतरते जा रहे थे। मैं अपने हृदयको टटोल रहा था, बुरी अवस्था थी। सारे शरीरपर काँटेसे उग आये थे, कलेजा सिहर रहा था। मैंने चन्द्रसे पूछा—"कहो क्या राय है?"

"राय क्या है? जिस तरह पाँच पार उतर गए, वैसे ही हम भी उतर जायँगे। डर तो लगता है, किन्तु पहिले-पहल ऐसा ही होता है।

विज्जकने हमारेलिए भी फन्दा तैयार कर दिया और रस्सेको पकड़े आगे बढ़नेकी विधि बतलाई। अपनेको अधिक निर्भय दिखलानेके लिए चंद्रसे पहिले ही मैंने अपने पैरोंको फन्देमें डाल दिया। एक ही सरकनमें मेरे पैर चट्टानसे आगे निकल गए। अब मैं प्रलय-कोलाहलके साथ खौलते पानी और उसकी अनगिनत चट्टानोंसे बीस हाथ ऊपर लटक रहा था। गिरनेका फल क्या होता, इसे सोचना भी मनकेलिए मुश्किल था; लेकिन जैसे ही मैं अधरमें लटका, वैसे ही मेरा सारा भय जाता रहा। अब रस्सेके सहारे सरकनेसे भी मुझे झूलेका आनन्द आ रहा था। पार जाकर हम दोनोंको हृदयकी अपनी पहिली अवस्थाका खयाल करके हँसी आती थी।

दूसरा दृश्य वह था, जब कि हम देवदारुके वनमें पहिले-पहल प्रविष्ट हुए। वह दुनियाका सुन्दरतम वृक्ष है। इसमें संदेह नहीं, प्रकृति-लक्ष्मीका वह जय-स्तम्भ है। उसकी सीधी सरल यष्टि जिससे निकलकर सामनेकी ओर फैले सहस्रों हाथ। हाथ भी कैसे क्रमसे नीचेसे ऊपरकी ओर छोटे और छोटे होते-होते अन्तमें वृक्षराजको नुकीले शिखरका रूप देते हैं। उन घनहरित पत्तियोंपर कभी पतझड़का प्रभाव नहीं पड़ता। उनमें सदा वसंतश्री बसा करती है। नीचे तो जान पड़ता है, वनदेवीने परिमल-वासित कलशोंसे सारी अरण्यानीको सींच दिया है। शताब्दियोंसे उनके नीचे झड़कर एकत्रित हुए सूचीपत्र नीचेकी भूमिको मृदुल शय्याका रूप देते हैं। इस भूमिमें गाँव नहीं दिखलाई पड़े, कहीं-कहीं एकाध घर मिले, जो अधिकतर पशुपालोंके जब-तब ठहरनेके स्थान थे।

जिस दिन हमने देवदारुका दर्शन किया, उसी दिन हमने पहिले-पहले चमरी भी देखी। मैं श्वेत चमर राजकुल (दरबार)में बराबर देखा करता

था। यह भी सुना था कि यह चमरी मृगकी पूँछ है। चमरियाँ प्रायः सारी काली होती हैं। किन्हीं-किन्हींकी पूछें श्वेत होती हैं, वही काटकर राज्य-लक्ष्मी का चिह्न बनाई जाती हैं। चमरियाँ महिषियों (भैंसों)के बराबरकी थीं और उनके सारे शरीरमें भूमि तक पहुँचनेवाले काले-काले बाल थे। लेकिन वह मृग नहीं है। पशुपाल गाय-बैलकी तरह उन्हें पालते हैं। वह दूध भी खूब देती हैं। हमने विज्जकसे हिम देखनेके बारेमें पुछवाया। पशुपालने बतलाया—"कठिन रास्तेसे जाओ तो दो दिनमें हिमक्षेत्रमें पहुँच सकते हो, नहीं तो सप्ताह लगेंगे। यदि दो महीने पहिले आए होते तो यह जगह हिमसे ढँकी दीखती।"

हमने दो दिन वाला रास्ता पकड़ा और साथमें दो पशुपालकोंको भी ले लिया। पशुपालकोंने अपने साथ दो चमरियाँ ले लीं।

हम अब शतद्रुकी उपत्यकामें थे। यद्यपि धारा इतनी दूर थी कि न उसके जलको हम देख सकते थे और न उसके घर्घर-नादको ही सुन सकते थे। पशुपालकोंने बतलाया कि हम हिमक्षेत्रमें पहुँचकर दूसरी ओर उतर सकते हैं, जहाँ गंगाकी उपत्यकामें होते नीचे जानेका रास्ता मिल जायेगा। बहादुर बननेके लिए हमने दो दिनवाला रास्ता ले लिया, लेकिन अब पछता रहे थे। दस पग भी नहीं चल पाते थे कि जान पड़ता था, कलेजा मुँहसे बाहर निकल आएगा। हाँफते-हाँफते साँस टँगने लगती थी। हम हर दस क़दमपर ठहर जाते थे। हमारे साथी भी उतना तेज़ नहीं चल रहे थे। पशुपालकोंने बतलाया कि इस भूमिमें नाना प्रकारकी विषैली जड़ी-बूटियाँ हैं, जिनके कारण साँस रुकने लगती है। आखिरी दिन उसने हम दोनोंको चमरियोंपर चढ़ा दिया, फिर तो कहीं साँस नहीं फूलती थी। चन्द्र कहता था—"झूठ ही कहते हैं कि विषैली औषधियाँ हैं, चमरीके पीठपर चढ़नेके बाद क्यों नहीं विष लगता।"

हिमके आरंभ होनेके बहुत पहिले हीसे देवदारु ख़तम हो चुके थे। देवदारु यकायक खतम नहीं हुए थे, पहिले उन्होंने अपनेसे भी अधिक सुगन्धित लेकिन छोटे-छोटे वृक्षोंको स्थान दिया। इन छोटे देवदारु जातीय वृक्षोंमें जहाँ-तहाँ भोजपत्र (भुर्ज) वृक्ष भी थे। इनकी पत्तियाँ सूई जैसी (सूचीपत्र) नहीं थीं बल्कि नीचेके वृक्षोंकी तरह चौड़ी-चौड़ी थीं। उनकी त्वचा दूरसे देखनेपर

हिमके रंगमें मिल जाती थी। हम भोजपत्रमें लिखा करते थे, बचपनसे ही इन चौड़े-चौड़े पत्रोंको देखा था, किन्तु अब तक हम समझते थे कि भोजपत्र कोई पत्र है। हमारे सामने विजकने एक वृक्षसे हाथभर लम्बी वितस्तिभर चौड़ी आध अंगुल मोटी भोजपत्रकी छाल काट निकाली, फिर उसमेंसे कई तहें निकालीं। उससे भी पतले-पतले कितने ही स्तर निकाले। उतनी छालमें पचीसों पत्रे (भोजपत्र) मौजूद थे। यहाँके लोग लकड़ीके छाजनके नीचे भोजपत्रकी तह जमा देते हैं जिसमें पानी नीचे न टपके। मैंने सुना कि भोजपत्रको पानी नुक़सान नहीं पहुँचा सकता। गर्मियोंमें मैंने खुद देखा था कि सूखकर वह टूटने लगता है। पाटलिपुत्र और दूसरी जगहोंमें भी भोजपत्रसे ज़्यादा तालपत्रका व्यवहार होता है। शायद उसका कारण तालपत्रका ज़्यादा मज़बूत होना हो। तालपत्रकी पुस्तकें दो ढाई अंगुलसे चौड़ी नहीं बन सकतीं। भोजपत्रकी पुस्तकें काफ़ी चौड़ी बन सकती है, लेकिन उलटने-पलटनेमें वह शायद जल्दी टूटता, इसीलिए हमारे यहाँ पुस्तकें ताल-पत्रपर लिखी जाती हैं। तो भी मध्यदेश और उत्तरापथमें चिट्ठी-पत्री और साधारण काममें भोजपत्र बहुत इस्तेमाल किया जाता है, दक्षिणा-पथ और सिंहलमें, शायद हिमालयसे बहुत दूर होनेसे बहुत मँहगा पड़नेके कारण उसका उपयोग नहीं देखा जाता। पर्वतीय लोगोंको गर्मियोंमें भोजपत्रकी छाल उतारकर नीचे भेजनेसे काफ़ी दीनार मिलते हैं।

भोजपत्रोंके जंगलमें भी कहीं-कहीं कुछ हिम दिखाई दिया, उसके आगे पर्वत-पृष्ठपर धुने कपासकी तरह, किन्तु दानेदार, हिम ही हिम पड़ा था। हमारे साथियोंने भोजपत्रके हरे पत्तोंको टोपीके नीचे दबाकर आँखके ऊपर लटका लिया था। हमने भी उनका अनुकरण किया। कहते थे, ऐसा न करनेसे हिमकी श्वेत-राशिको देखते-देखते आँखें दुखने लगती हैं और आदमी एकाध दिनके लिए अंधा हो जाता है। चन्द्रने टिप्पणी करते हुए कहा—"यह भी विषैली बूटियों जैसी बात है।" लेकिन मैंने देखा, उसने भी आँखोंके सामने हरे पत्ते लटका रखे थे। पूछने पर बोला—"दो दिन अन्धा होनेका तजर्बा नहीं करना चाहता।" पर्वतके सर्व्वोच्च स्थानपर पहुँचकर हम दोनों चमरियोंसे उतर पड़े। अपने चारों ओर आँख फैलाकर देखा, उत्तरकी ओर हिमाच्छादित शिखरोंकी

श्रेणी पूरबसे पच्छिमको चली गई है। बाक़ी तीन दिशाओंमें हरे-हरे पर्वत हैं, जो क्रमशः छोटे होते गए हैं; नज़दीक, पर्वतकी दोनों ओर देखनेमें वही नुकीले सदाहरित मंजु देव-द्रुमोंकी वनाली है। हमने हिमके एकाध टुकड़े मुखमें डाले, लेकिन वहाँ हिम खानेकी कहाँ हिम्मत थी? इस वक्त पाटलिपुत्रमें गर्म हवा चल रही होगी, लोग पसीनेसे तर होंगे और पखा या गर्भ-गृहों (भुँइघरों)-की शरण लेते होंगे। लेकिन, यहाँ, हमारे शरीरपर बहुत मोटा ऊनी कंचुक, और वैसा ही सुत्थन भी है; सिरपर चमड़ेका कनटोप, जिसके बाल बहुत नरम और गरम हैं। कुमारामात्यने दो जोड़े शकोंके जूते दे दिये थे, अब हमें उनका फ़ायदा मालूम हो रहा था। यदि वह जूते न होते, तो हमारे पैर सुन्न हो जाते, लेकिन इतना होनेपर भी हम ठिठुरे जा रहे थे। विज्जकने कहा, यह सौभाग्य है, जो हवा नहीं चल रही है, नहीं तो नाक और गालके खुले भागोंपर सर्दी निष्ठुर कोड़े-जैसी पड़ती। मैं सोच रहा था, आखिर पाटलिपुत्र या खलतिका-से यहाँ इतना अंतर क्यों है? एक ही भूमिपर कहीं उग्र-ग्रीष्म और कहीं उग्र-शिशिर। उतरते वक्त मैंने देखा जितना ही हम नीचे जा रहे हैं, उतनी ही गर्मी बढ़ती जा रही है, इससे यह समझमें आया, कि वहाँ इतनी सर्दी अधिक ऊँचाईके कारण है। यदि सर्दी ऊँचाईके कारण है, तो सूर्यके पास जानेमें और सर्दी होगी, फिर सूर्य इतना गर्मी क्यों देता है, इस तरहके कितने ही विचार मेरे मनमें चक्कर काटने लगे।

हम लोग अब पहाड़की दूसरी ओर उतरने लगे। नीचे जानेकेलिए सवारीकी ज़रूरत नहीं और अब विष-बूटीका भी असर नहीं था। चन्द्र कहने लगा—"ऊपर चलनेमें मेहनत ज्यादा, हवाका खर्च भी ज्यादा होता है, जान पड़ता है हवा वहाँ कम है। विज्जक बोला—"खैरियत थी, जो आज चारों ओर शांति रही, नहीं तो ऊपर हवा ऐसी चलती है, कि आदमीको भी उड़ा ले जाती है।" तो भी हम दोनों विषैली बूटीके बारेमें ज़रूर संदेह करने लगे। हिमके अन्तपर पहुँचकर एक बार फिर हमने सूर्यातपमें चमकती उस रौप्य-राशिको आँख भरके देखा, फिर नीचे उतरने लगे। कहीं-कहीं रास्ता बहुत खराब था—रास्ता तो बल्कि कहना नहीं चाहिए, उसका चिह्न किसी-किसी जगह यदि मिलता था तो भेड़-बकरियोंकी लेंड़ी या खुर-चिह्नके रूपमें।

जान पड़ता है इन ऊपरी पहाड़ोंमें पशुपालक अपने भेड़ोंको लेकर विचरण करते हैं या भोजपत्रकी छाल काटनेवाले। हमने एक जगह एक शिकारीको कस्तूरी हरिना मारे देखा, नाभिमें उग्र गंधीकृष्ण कणाकी गुठली मौजूद थी, कस्तूरी मृगका मांस हमें हरिन जैसा ही मालूम हुआ, किन्तु उसके शरीरपर बहुत मोटे बाल थे। एक नहीं दो-दो तरहके बाल। एक देवदारुके पत्तोंकी तरह रूखा-रूखा सूई जैसा और दूसरा था उनके बीच-बीचमें अत्यंत सूक्ष्म अत्यंत मृदुल। शिकारीने बतलाया कि आजकल यह कोमल ऊर्णा। (पशम) कहीं-कहीं बच रही है, जाड़ोंमें ये मोटे बालोंके भीतर वैसे ही भर जाती हैं, जैसे वर्षामें बड़े-बड़े वृक्षोंके नीचे कोमल तृणराशि। मुझे गांधारके पाण्डु कंबल याद आये। आखिर उतनी सूक्ष्म, उतनी कोमल, उतने चमकीले ऊन तो भेड़ोंकी नहीं दिखाई पड़ती।

उस दिन शामको हम देवदारोंके जंगलमें पशुपालकोंके तंबूमें ठहरे। यहीं हमें कस्तूरी-मृगका मांस खानेको मिला। यहाँ साथ आये पशुपालकोंको लौटाना था। हमने हरेकको तीन-तीन दीनार दिये, वह बड़े संतुष्ट हो अपनी चमरियोंके साथ लौट गए।

हमारा रास्ता गंगाकी उपत्यकासे नीचेकी ओर था। भेड़ोंके बनाए हुए रास्तों (अजपथ)के सिवा वहाँ कोई रास्ता नहीं था। हम इतना जानते थे, कि हमें नीचेकी ओर जाना है। भारवाहकोंमेंसे एक कई बार इस ओर भोज-पत्र और ऊन लेनेके लिए आया था।

कई दिनोंकी उतराईके बाद अब हमें गर्मी मालूम हो रही थी। हिम और देवदारकी स्मृति भी क्षीण होना चाहती थी। विज्जकने कहा कि यहाँसे हम कई दुर्गम पहाड़ोंको लाँघते खलतिका पहुँच सकते हैं, कनखलका रास्ता यहाँसे बहुत सुगम है। हमने कनखलका रास्ता पकड़ा। कनखलमें यद्यपि गंगाका जल अभी अपनी शीतलताको बिलकुल खो नहीं बैठा था, किन्तु अब गंगा अपने पितृ-भूमिको छोड़कर मैदानमें आ चुकी थी। कनखलके अधिकारीने युवराज और हमारा बहुत स्वागत किया। फिर हमें राज-रसोईके सुस्वादु भोजन मिले, फिर उदुंबरवर्णा द्राक्षी-सुरासे भरा काच-कुतुप (बोतल) आया। चंद्रने कुतुपकी लंबी पतली गरदन और नीचे फैले उदरको हाथमें ले बड़े प्रेमसे

अपने कंठमें लगाया। परिचारिका मुस्कुराई फिर चन्द्रने कहा—"सुंदरि! जानती हो कितने दिनों बाद इस अरुण-वर्णा देवीके दर्शन हो रहे हैं? जौकी मेरय पीते-पीते जी उकता गया।"

मैंने कहा—"तो तुम्हें यह यात्रा पसंद नहीं आई।"

"पसंद? जय! मैं सदा तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा। एक तरहसे बे-मनही मैं तुम्हारे कारण खिंचा चला आया था, लेकिन हिमालयने मुझे सदाके लिए अपना भक्त बना लिया।"

कनखलसे हम कुछ दूर घोड़ोंपर जा नावपर सवार हुए। खलतिकाके कुमारामात्यके नाम एक लेख और पुरस्कार दे विज्जकको हमने विदा किया और ख़ुद पाटलिपुत्रकी ओर जानेवाली नावपर सवार हुए। उससे हम कान्य-कुब्ज तक जा सके। कान्यकुब्जसे हमने दूसरी नाव ली। वर्षा-समाप्त हो रही थी, जब तीन महीनेके बाद हम अज्जुकाके सामने उपस्थित हुए।

(८)

पाटलिपुत्रके अंतिम वर्ष

आचार्य वर्षा वासकेलिए साकेत चले गये थे, लेकिन प्रवारणा (आश्विन-पूर्णिमा)के बाद वह अशोकाराम लौटनेवाले थे। कई महीनोंसे मैंने पोथी छुई नहीं थी, किन्तु तातके चरणोंमें और हिमालयकी गोदमें बीते दिन बेकार नहीं थे। मैं अब अपनेको एक दूसरा आदमी देखता था। जान पड़ता था, छः महीने पहले जब मैंने पाटलिपुत्र छोड़ा था, तो अभी शैशवकी सीमाके भीतर था, लेकिन अब मैं अपनेको सब तरह तरुण समझता था। अज्जुका हिमालयकी यात्राके बारेमें कई दिनों तक पूछती रही। मैंने उत्सव-संकेतके सभी तजरबोंको तो नहीं बतलाया, लेकिन यह ज़रूर कहा कि वे लोग बुद्धके धर्मको मानते हैं, कहीं-कहीं बौद्ध-भिक्षु भी देखे जाते हैं। उसने कहा—"तब तो मैं संघसे प्रार्थना करूँगी कि उत्सव-संकेतमें कोई बड़ा विहार बनाया जाय, जिसमें सौ-पचास भिक्षुक रहें और लोगोंमें जाकर उपदेश करें।"

अज्जुकाने पीछे सहस्रों दीनार इस कामकेलिये दिये। वहाँ एक रमणीय स्थानपर बहुत सुन्दर सुगतालय और भिक्षु-आवास बनवाए। विहार-

निर्माणके लिए कितने ही प्रस्तर-शिल्पी और मूर्त्तिकार पाटलिपुत्र तथा मथुरासे भेजे गये, लेकिन मुझे सन्देह है, उत्सव-संकेतमें जाकर ये भिक्षु वहाँके धर्मसे प्रभावित हुए बिना रहेंगे।

कार्त्तिक-पूर्णिमाको आचार्य अशोकाराममें आये और फिर मेरी पढ़ाई शुरू हुई। अगले ढाई साल जो मैंने आचार्यके चरणोंमें बिताये, मैंने जितना पढ़ा और सीखा, उतना फिर ज़िन्दगीके किन्हीं वर्षों में नहीं कर पाया। दर्शनकी ओर मेरी खास रुचि थी। आचार्यके पास पहले भी कुछ पुस्तकें पढ़ी थीं, किन्तु उनका विशाल दर्शन-ज्ञान तो अब मेरी समझमें आने लगा। वह भी समझने लगे कि मैं इसका पात्र हूँ, इसलिए रुचिसे पढ़ाया करते थे। यवन दार्शनिकोंकी प्रशंसा सुनकर एक दिन मैंने पूछा—"क्या यवन भी दार्शनिक हुए हैं?"

"बहुत बड़े-बड़े दार्शनिक हेराक्लितु (५३५-४२५ ई० पू०) देमोक्रितु (४६०-३७० ई० पू०), सुक्रात (४६६-३६६ ई० पू०), प्लातो (अफलातूँ ४२७-३४७ ई० पू०), अरिस्तात (३८४-२२ ई० पू०), जैसे बड़े-बड़े दार्शनिक आजसे बहुत पहले पैदा हुए थे।"

"हमारे यहाँ जो कितने ही बौद्ध, ब्राह्मण दार्शनिक पैदा हुए हैं, क्या उनसे भी वे बड़े थे?"

"तुलना करके किसीके बारेमें 'हाँ' या 'नहीं' एक शब्दमें कहना संभव नहीं। कितनी ही बातोंमें वे ज़रूर बड़े थे। हमारे यहाँके पुराने दार्शनिक शुद्ध दर्शनपर बहुत पीछेसे लिखने लगे हैं और वह भी यवन दार्शनिकोंके विचारोंके भारतमें आनेके बाद।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि हम यवन दार्शनिकोंके ऋणी हैं?"

"इसमें सन्देह नहीं, यद्यपि आजके ब्राह्मण इसे स्वीकार करनेकेलिए तैयार नहीं हैं।"

"तो भी उन्होंने कितनी ही चीज़ें ली हैं।"

"ज़रूर, तीन सौ वर्षके क़रीब होते हैं, जब कि साकेतमें ब्राह्मणी सुवर्णाक्षीकी कोखको पवित्र करनेवाले भदन्त अश्वघोष पैदा हुए। कनिष्कके

सेनापतिने मगधके भिक्षु-संघसे एक महाविद्वान्‌को गंधार ले जानेकेलिए माँगा। भदन्त अश्वघोष ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने गंधारमें जाकर यवन-दर्शनका पूरा ज्ञान प्राप्त किया, और उसकी बहुत-सी बातें स्वीकार की।"

"किन-किन दार्शनिकोंको उन्होंने ज़्यादा पसन्द किया?"

"जिन दार्शनिकोंके नाम मैंने अभी गिनाए। हेराक्लितु यवन देशमें उसी सिद्धान्तका प्रचार कर रहा था, जिसे हम बुद्धके दर्शनमें पाते हैं। वह कहता था, दुनियामें कोई चीज़ स्थिर नहीं, परिवर्त्तन दुनियाका सार है, हम उसी धारामें दो बार नहीं उतरते, धाराकी हरेक बूँद उस स्थानको छोड़ चुकी होती है, जब कि दूसरे क्षण हम उसी धारामें खड़े होते हैं। देमोक्रतुने धाराके परिवर्त्तनको तो स्वीकार किया, किन्तु वह विन्दुको स्थिर मानता था।"

"विन्दु क्या?"

"विन्दुको उपमाके तौरपर लो। धारा ही नहीं ईंट, पत्थर, काच, मणि, सबमें परिवर्त्तन हो रहा है ज़रूर, लेकिन यह सभी चीज़ें जिन अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं (कणों) से बनी हैं, वे सदा एक रस रहते हैं।"

"तो उसने स्थिरता और अ-स्थिरता दोनों जगत्‌में मानीं।"

"लेकिन प्लातो जड़ परमाणुओंको विश्वकी सूक्ष्मतम ईंटे नहीं मानता, वह कहता है अन्तिम ईंट है, विज्ञान चेतना।"

"तो विज्ञानको वह नित्य मानता है?"

"हाँ, हमारे अग्रज असंग प्लातोके इस बातसे सहमत हैं कि विश्वका मूल कारण विज्ञान है, लेकिन साथ ही वह बुद्धके 'सर्व अनित्य'को भी स्वीकार करते हैं।"

"तो विश्वके अंतस्तलमें विज्ञान-धारा प्रवाहित हो रही है!"

"वह विज्ञान-धारा ही विश्वके रूपमें व्यक्त हो रही है, इसी बातपर असंग बहुत ज़ोर देते हैं। भदंत अश्वघोषने परमाणु-सिद्धान्तको व्यवहार रूपमें स्वीकार किया, किन्तु परमार्थ (वास्तविक) रूपमें विज्ञान-प्रवाहको ही असली तत्त्व माना। असंगने उसी विज्ञान-दर्शनका और स्पष्ट रूपमें प्रचार करना शुरू किया।"

"और सुक्रात, अरिस्तात?"

"सूक्रातके सिद्धान्तोंको हम उसके शिष्य प्लातोके ग्रन्थोंसे ही जान सकते हैं, उसने कोई पुस्तक नहीं लिखी। तथागतने भी कोई पुस्तक नहीं लिखी। सैकड़ों वर्ष तक उनके उपदेश, उनके मुँहसे निकली गाथाओंको लोग कंठाग्र करते आए।"

"तो जो यह दीर्घ-आगम, मध्यम आगम, संयुक्त आगम आदि ग्रन्थ मिलते हैं, इन्हें बुद्धने नहीं लिखा ?"

"बुद्धने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा।"

"तो बहुत-सी पीछेकी बातें भी उनके नामसे इन ग्रंथोंमें आ गई होंगी ?"

"यह निश्चित है, अभी भी विनय—भिक्षु-भिक्षुणियोंके आचार-नियम मौखिक ही पढ़े जाते हैं।"

"बुद्धके समय ये ग्रंथ लिखे नहीं गये ?"

"उस समय ग्रथ बहुत कम लिखे जाते थे। फिर जानते हो ? बुद्ध ठीक दृष्टि (दर्शन) देना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने कहा भी, मेरी बातोंको गौरवके खयालसे मत मानों, जो तुम्हारे तजर्बे और बुद्धिकी कसौटीपर सच्चा उतरे, उसे मानों। फिर ४४ साल तक वह यौधेय-भूमिसे अंगभूमि तक विचरण करते लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर, संदेहोंका समाधान करते रहे, इन सबको कैसे लिखा जा सकता था।"

"तो उनका जीवन ही ग्रन्थ था।"

"उनके ४४ वर्षके जीवन-ग्रन्थको ही हम इन सूत्र-विनय और अभि-धर्म-पिटकोंके रूपमें देखते हैं।"

"जो कि शताब्दियों तक तालपत्र या भोजपत्रपर नहीं लिखे गये थे।"

"हाँ, इसीलिए जो पिटक हमारे सामने हैं उनके एक-एक अक्षर बुद्धके मुँहसे निकले हुए थे, यह हम नहीं कह सकते, साथ ही बुद्धके वचन, इन्हें छोड़ बाहर मिल भी नहीं सकते थे।"

"उस समय तो भाषा भी दूसरी रही होगी ?"

"अशोकके लेखोंकी भाषा तुमने पढ़ी है, वह आजसे प्रायः पाँच सौ बरस पुरानी भाषा है। भगवान् बुद्ध ढाई सौ बरस और पहले हुए थे, इसलिए हम अनुमान कर सकते हैं, कि उसमें कुछ और भिन्नता रही होगी।"

"लेकिन भन्ते! आज जो पिटक हैं, उनकी भाषा तो बिगड़ी-सी संस्कृत है।"

"हाँ, सर्वास्तिवादियोंके पिटकोंकी भाषा संस्कृत है। और भी कितने ही बौद्ध निकाय (संप्रदाय) हैं, जिनके पिटकोंकी भाषा संस्कृत है, लेकिन सिंहलके बौद्ध निकायके पिटककी भाषा पुरानी कोसली (पाली) है।"

"तो उन्होंने उसी भाषाको सुरक्षित रखा, जिसमें बुद्धने उपदेश दिया था?"

"बिल्कुल सुरक्षित रखना तो असंभव है, क्योंकि उनके यहाँ भी सैकड़ों वर्षों तक पिटक कंठाग्र ही आये, लेकिन मैं समझता हूँ, वह भाषा बुद्धकी भाषाके बहुत नज़दीक है, और उनके पिटक बुद्ध-वचनके बहुत समीप हैं।"

"तो क्या इसी तरह सुकूरातके उपदेशोंका भी संग्रह किया गया?"

"सुकूरातको तुम जानते हो, विष पिलाकर मारा गया। राज्य उसका दुश्मन हो गया था।"

"कौन राजा था उस वक्त आचार्य?"

"अभी अथेन्स नगरीमें राजतंत्रके आनेमें आधी शताब्दीकी देर थी।"

"तो गणतंत्रवालोंने सुकूरातको मारा?"

"यह गणतंत्रका नहीं, गणतंत्रके धनिक सत्ताधारियोंका दोष था।"

"हाँ, आचार्य गणतंत्रमें धनिकोंका बढ़ना उसके लिए ख़तरेकी चीज़ है।"

"सुकूरातने देवी-देवता और धर्मके नामसे जो सैकड़ों कहानियाँ और मिथ्या-विश्वास फैलाए जाते थे, उन्हें बच्चोंकी बकवास कहा और लोगोंको बुद्धिके रास्तेपर ले जाना चाहा। इसे अथेन्सके धनिकों और उनके धनसे ख़रीदे सदस्योंने खतरेकी बात समझी, क्योंकि अथेन्समें भी धनी-ग़रीबकी व्याख्या देवताओंके न्यायसे की जाती थी।"

"अर्थात् वह समझने लगे कि यदि देवताओंपरसे लोगोंका विश्वास उठ गया, तो जाड़े और गर्मीमें ख़ून-पसीना एक करके धन पैदाकरनेवाले दास—कमकर और किसान-शिल्पी भूखे रह इन राज-प्रासादों, पुरोहित-प्रासादों, श्रेष्ठि-प्रासादोंको खड़े न रहने देंगे।"

"लेकिन इस बातको साफ़ नहीं कह सकते थे। लोगोंके हृदयमें देवताओंके प्रति अंधी श्रद्धा थी, उन्होंने कह दिया—सुक्रातने हमारे देवताओंका अपमान किया, वह अधर्मी है, वह हमारे सभी तरुणोंको अधर्मी बना देगा।"

"और फिर सुक्रातको विषका कड़वा प्याला दे दिया गया?"

"सुक्रातने बड़े प्रसन्न मुखसे उस कड़वे प्यालेको पिया।"

"लेकिन सुक्रातके .खूनका बदला नहीं लिया गया, यह बड़ी लज्जाकी बात है।"

"अभी बदला लेना बाक़ी है।"

"लेकिन विष पिलानेवाले तो अब दुनियामें नहीं हैं।"

"तुम समझते हो कि गण-संस्थाके अमुक-अमुक सदस्योंने सुक्रातकी हत्या की। सुक्रातकी तरह हमारे यहाँ भी यदि कोई कहता—'ये सारे देवी-देवता झूठे हैं, उनके न्यायपर मेहनत करनेवालोंकी कमाईको लूटकर धनी बनना घोर अन्याय है। इसकी जगह हमें ऐसा गण स्थापित करना है, जिसमें न कोई धनी हो न ग़रीब। सभी अपनी योग्यताके अनुसार काम करें और खाना-कपड़ा तथा और दूसरी चीज़ें जितनी आवश्यक हो उन्हें दी जायें।"

"क्या सुक्रातने ऐसा कहा था?"

"मैंने कहा नहीं, सुक्रातने कोई ग्रंथ नहीं लिखा; किन्तु उसके शिष्य प्लातोने 'गण'के नामसे पुस्तक लिखी है, उसमें अपने गुरुके इन विचारोंको रक्खा है।"

"गणोंके दोषोंको सुक्रात जानता था। मैं भी यौधेयोंमें ऐसे दोषोंको देखता हूँ। मैं भी यदि अग्रोदकाका सुक्रात बनने जाऊँ, तो मेरे साथ भी वैसा ही बर्ताव होगा, जैसा सुक्रातके साथ हुआ था।"

"यह धन है जिसके जमा करनेकेलिए आदमी सब कुछ करता है। शिल्पियों, किसानों और कमकरोंकी कमाईकी लूटको गण भी धर्म मानता है; राजतंत्र तो उसमें दस पग और आगे है। सुक्रातने कहा—उन्हीं लोगोंको गण संस्थाका सदस्य बनाया जाय, उन्हींके हाथमें राज-काजकी बागडोर दी जाये, जिनके पास कोई अपनी संपत्ति न हो, कोई अपनी स्त्री भी न हो।"

"स्त्री भी न हो इसका क्या मतलब भन्ते ! क्या सुकरात चाहता था कि राज-काज चलानेका काम भिक्षुओंके हाथ में दे दिया जाय ?"

"नहीं, वह भिक्षु नहीं बनाना चाहता था, वह अलग स्त्री रखनेके ख़िलाफ़ था। वह कहता था, अलग स्त्री होगी तो अलग बेटी-बेटे होंगे, जिनकेलिए बाप पक्षपात करेगा और अपने अधिकारका दुरुपयोग करेगा। इसीलिए उसने कहा कि गण-संचालकोंका सब कुछ साझेमें हो, घर-द्वार और पत्नी भी।"

"तो सुकरातने भी ऐसा सोचा था ! मैं भी अभी-अभी उत्सव-संकेतमें साझी पत्नियाँ देख आया हूँ।"

"उत्सव-संकेतके लोग अभी बहुत पिछड़े हुए हैं। वह यदि यौधेय गण या पाटलिपुत्रकी अवस्थामें आये और उन्हें धन जमा करनेका मौक़ा मिला; तो वहाँ भी यह बात नहीं चलने पाएगी।"

"इससे जान पड़ता है कि सुकरात दुनियाको अच्छा बनाना चाहता था, स्वार्थी इसे अपनेलिए हानिकी चीज़ समझते थे, इसलिए उसे दुनियासे बिदा कर दिया।"

"परलोकको अच्छा बनानेका प्रयत्न करो, दूसरे जन्मको अच्छा बनानेकी कोशिश करो; गणके धनिक मुखिया, राज्यके परमभट्टारक, ब्राह्मण और श्रेष्ठी तुम्हारे लिए दीनारोंकी वर्षा करेंगे; लेकिन यदि तुमने इस दुनियाको अच्छा बनानेकी कोशिश की तो वही हालत होगी जो सुकरातकी हुई।"

"किन्तु भन्ते ! जितने दीनार वह दान-पुण्यमें ख़र्च करते हैं, उन्हींसे दुनियाको अच्छा बनानेकी कोशिश क्यों नहीं करते ?"

"उतनेसे कुछ नहीं बन सकता। परमभट्टारकके नीचे मान लो तीन करोड़ प्रजा है। तीन करोड़ दीनार बाँटनेपर एक-एक दीनार हाथ आएगा, जिससे एक आदमीका क्या बन सकता है ? और तीन करोड़ प्रजामें बाँटनेकेलिए राजाको हाथी-दाँतके पीठ और मरकतके सिंहासनपर नहीं चटाईपर बैठना होगा; अन्तःपुर और उसके विलासको खतम करना होगा, सैकड़ों सूपकारों और उनके विविध प्रकारके भोजनोंको जवाब देना पड़ेगा। तीन कोटि दीनारको जमा करके बाँटनेकेलिए कितनी तपस्या करनी पड़ती, और फल भी

कोई उतना साफ़ नहीं दिखलाई पड़ता; इससे बेहतर है कि तीन करोड़मेंसे दो करोड़ निन्यानबे लक्ष अपने कामकेलिए रखा जाय और शतसहस्र (लाख) दीनारको लगाकर देवालय, चैत्य बनवाए जायँ, ब्राह्मणोंको दान दिया जाय, यज्ञ किया जाय। ये सब लोग परमभट्टारककी जय-जयकार बोलेंगे। हरिषेण लंबी-लंबी प्रस्ति लिखकर पाषाण-स्तंभोंपर खुदवाएगा।"

"और परमभट्टारक धर्मराज कहलाएँगे।"

"देखा न, दोनोंमें कौन आसान है; दुनियाको अच्छा बनाना या परलोकको अच्छा बनाना।"

"और जिन श्रमण ब्राह्मणोंको दान-पुण्य दिया जाय, वह तो कह ही देंगे कि परमभट्टारक अपनी तपस्याका फल भोग रहे हैं; और, दरिद्र प्रजा अन्न-धन पैदा करके भी अपने पुरबिले कर्मोंके कारण दुःख भोग रही है। लाठी भी नहीं टूटी और साँप भी मर गया।"

आचार्य ने मुस्कराते हुए कहा—"वत्स जय! तुम मेरी बातोंको समझोगे। बुढ़ापेमें तुम्हीं मुझे एक अच्छे विद्यार्थी मिले। मैं गंधारसे चला था इस ख्यालसे कि किसी राजकुलको पकड़ूँ, किसी होनहार राजकुमारको सिखलाऊँ, पढ़ाऊँ और वह सारी शक्ति लगाकर इस दुनियाको बेहतर बनाए। मैं जानता था कि अरिस्तात मुझसे छ शताब्दियों पहले ऐसे प्रयत्नमें असफल हो चुका है, लेकिन दुनियामें लोग ग़लतियोंको दुहराया करते हैं।"

"अरिस्तातने क्या किया था?"

"अरिस्तात प्लातोंका शिष्य था। प्लातोने अपनी आँखोंके सामने अपने गुरुको मारे जाते देखा था। वह गुरुके ख़ूनका बदला लेना चाहता था।"

"ख़ूनका बदला ख़ून?"

"ख़ूनका बदला ख़ून अदूरदर्शी लिया करते हैं। मैंने कहा नहीं, यदि यौधेयमें तुम सुक्रातकी तरह इस दुनियाके बेहतर बनानेमें लग जाओ और दूसरोंकी कमाईकी मोटरी बना उसपर फूलकर बैठे धनियोंको खिसकनेकेलिए कहो; तो तुम्हें भी विषका प्याला पीना पड़ेगा। और यदि किसी परमभट्टारकके यहाँ वैसा करो तो वह इतने आरामकी मौत मरने नहीं देगा, वह अंगुल-अंगुल काटकर नमक छिड़क-छिड़ककर मारेगा।"

"मैं इसे मानता हूँ।"

"प्लातोने देखा कि यह धनकी विषमता, धनके कारण प्रभुता, प्रभु होने के कारण और अधिक धन लूटनेका अवसर और उसके रास्तेमें बाधा डालने वालेके सिरपर वज्र। इन सबकी दवा यही है कि संपत्तिमें 'मेरा-तेरा' न रहे। उसने अपने जीवनभर इसकेलिए कोशिश की, इसीकेलिए उसने अपना ग्रंथ 'गण' लिखा। सुकरातको मारकर बहुतसे लोग पछताये थे, क्योंकि गण-संस्थाके सभी सदस्य धनी न थे। इसीलिए प्लातोको विष पीनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। अरिस्तातने अपने गुरु और दादा-गुरुके उद्देश्यको पूरा करनेके लिए सोचा—'यदि मैं किसी होनहार राजकुमारको शिक्षा-दीक्षा देकर ऐसा बनाऊँ कि वह हमारे कामको करे, तो वह बड़ी आसानीसे हो सकता है।' इसी उद्देश्यको लेकर वह राजा फ़िलिपके लड़के अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का गुरु बना। लेकिन अलिकसुन्दर दुनियाको अच्छा क्या बनाएगा। उसने दुनियाके बहुत बड़े भागको ख़ूनसे रंग दिया।"

"गण-सन्तानसे तो भन्ते! कुछ आशा की जा सकती है, लेकिन राज-कुमारसे वही आशा रख सकता है, जो राजान्तःपुर और राजाओंके स्वार्थपूर्ण जघन्य जीवनको नहीं मानता।"

"हो सकता है, मेरी तरह अरिस्तातको भी इसका परिचय नहीं था।"

"मैं समझता हूँ भन्ते! ख़ूनका बदला ख़ून आसान था, परन्तु सारे जाल को तोड़ फेंकना एक व्यक्तिकेलिए असंभव है, और बहुत व्यक्ति मिलकर भी एक पीढ़ीमें ऐसा नहीं कर सकते।"

"तो भी हमें करना चाहिए वही, जो कि उचित है।"

"अर्थात् बहुजनहिताय।"

"हाँ, जो बहुजनहिताय बहुजनसुखाय है। जानते हो न तथागतने अपने प्रथम शिष्योंको यही कहकर दुनियामें भेजा था—'चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय।"

"लेकिन भन्ते! क्यों नहीं वे अपने उद्देश्यमें सफल हुए?"

"सभी कारणोंको तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन तथागतने भिक्षु-संघके

भीतरसे 'मेरा-तेरा' उठा देनेकेलिए बड़ा कड़ा नियम बनाया। वे नियम अब भी विनय-पिटकमें मौजूद हैं; लेकिन तथागतके निर्वाण हुए सौ साल भी नहीं बीतने पाए कि भिक्षु-संघमें 'मेरा-तेरा' घुस आया। जहाँ तथागतने शरीर तकके कपड़े और सुई, अस्तुरा, भिक्षा-पात्र जैसी दो-चार चीज़ोंको छोड़कर भिक्षुओंकी सारी सम्पत्ति संघकी साझी बतलाई, वहाँ अब भिक्षु सुवर्ण और पण जमा करके आपसमें बाँटने लगे। जब आस-पासकी सारी दुनिया 'मेरे-तेरे' में फँसी है तो उनमेंसे आये मुट्ठीभर भिक्षु कैसे बचे रह सकते हैं?"

"अब तो भन्ते! भिक्षुओंमें भी धनी-ग़रीब दीख पड़ते हैं।"

"हाँ, भिक्षु-संघसे तथागतने जो आशा रखी थी, वह नहीं हो पाई।"

"तो भन्ते! दुनियाकेलिए कोई आशा नहीं!"

"निराशा जीवनका चिह्न नहीं है, असफलतायें यही बतलाती हैं कि इस कामकेलिए और पीढ़ियोंकी आवश्यकता है, और साधनोंकी आवश्यकता है।"

पिछले ढाई वर्षोंमें मैं ही अपनी पढ़ाईमें अधिक तत्परता नहीं दिखलाता था, बल्कि आचार्य भी अपने हृदयको खोलेनेकेलिए प्रस्तुत रहते थे। जान पड़ता था वह इसे भार हलका करना-सा समझते थे। उनका सबसे अधिक समय मैं लेता था। कितनी ही बार वह पाटलिपुत्रसे मुझे लिये राजगृह चले जाते थे। हम वहाँ गृद्धकूटपर रहते। एक दिन आचार्य गृद्धकूटकी बड़ी शिला पर खड़े थे। उनके सुगौर शरीरपर एकांस (बायाँ हाथ खुला रखकर) अरुण चीवर पड़ा हुआ था। उनकी आँखोंमें करुणा और चिन्ता, आशा और वेदना की अद्‌भुत छाप थी। उन्होंने दाहिने हाथको फैलाकर पाँचों पहाड़ोंसे घिरी खाली भूमि को दिखलाते हुए कहा—"वत्स! यह वह जगह है, जहाँ किसी समय एक महानगरी बसती थी; कितने ही हाट-बाट, चौराहे और बीथियाँ थीं, धनियोंके सुन्दर-सुन्दर महल, उनके सजे कोठे थे। जिनमें शृङ्गार-विभूषित कामिनियाँ कोकिल-आलाप करती थीं। यहीं इस दक्खिनवाले छोरपर राजा बिम्बसारका अन्तःपुर था, उसी तरह जैसे पाटलिपुत्रमें परमभट्टारकका, पुरुषपुरमें देवपुत्रशाहीका। आज उनमेंसे क्या किसीका चिह्न है?"

"नहीं आचार्य कामिनियोंके कोकिल कंठकी जगह यहाँ शाम ही से शृगालियोंकी फेक्कार सुनाई देती है।"

''यहीं बिम्बसारको उसके पुत्र अजातशत्रुने जेलमें डाल दिया और उसे घुला-घुलाकर मारा। क्यों? राज्यके लिए, भोगके लिए। उसने परलोककी, परजन्मकी कोई परवाह नहीं की।''

''धनिकों और प्रभुओंके लिए परलोकवाद, पुनर्जन्मवाद, हाथीका दाँत है, दिखानेके लिए और खानेके लिए और। भन्ते! बौद्ध लोग भी परलोक पुनर्जन्म मानते हैं, किन्तु मैं समझता हूँ परलोकवाद और बहुजनहिताय एक साथ नहीं चल सकते।''

''तो वत्स! परलोकमें तुम्हारा विश्वास नहीं है?''

मैं परलोकवाद पुनर्जन्मवादको विश्वास और अविश्वास दोनोंसे परेकी बात समझता हूँ।''

''नहो जय! निःसंकोच कहो?''

''भन्ते! आपसे मैं संकोच नहीं करता, आप मेरे संकोचको हटा चुके हैं। परलोकवादकेलिए एक क्षण भी देना मैं उसे जीवनका अपव्यय समझता हूँ और जो कोई ऐसा अपव्यय करता है, उसे मैं बेसमझ, धूर्त या पागल समझता हूँ।''

''बड़े कड़े शब्द प्रयोग कर रहे हो जय!''

''परलोकवाद'' धोखेकी टट्टी है आचार्य। इसीकी आड़में बहुजनके जीवन को नरक बना दिया गया है, हज़ारमें नौ सौ निन्यानबे आदमियोंको भेड़ बना दिया गया है और एकको सबका खून चूसनेवाला बाघ। मैं केवल बहुजन-हिताय कामको मानता हूँ। परलोकवाद केवल एक रूपमें मानता हूँ?''

''वह क्या है वत्स जय?'' कहकर आचार्यने मुस्कुरा दिया।

''पुत्र पिताका परलोक है, पुत्र पिताका पुनर्जन्म है। पिता मरनेसे पहले अपने शरीर अपने मानसिक और शारीरिक संस्कारका एक अंश माताके शरीर में स्थापित करता है। माता उसमें अपना अंश मिलाती है और नौ मास गर्भ में रख उसे शिशुके रूपमें अगले लोक, अगलीपीढ़ीके लिए देती है। इसे मैं परलोक मानता हूँ। इस परलोकका मैं पक्षपाती हूँ।''

''और इस परलोककेलिए हमें मरकर आनेवाले किसी दूसरे लोकके ध्यान करनेकी ज़रूरत नहीं!''

"हाँ भन्ते ! ऐसे परलोकके माननेमें किसीको धोखा देनेकी ज़रूरत नहीं । ऐसे परलोकके माननेसे हम इसी संसारको बेहतर बनाएँगे ।"

"तुम्हारे विचार सुन्दर हैं जय ! मैंने अपने अभिधर्म-कोषमें ब्राह्मणोंके आत्मवाद—आत्मा एक नित्य सनातन वस्तु है—का खंडन करते हुए लिखा है कि आत्माके नित्य होनेकी लालसा, मृत्युसे डरनेका भय बहुत ही तुच्छ स्वार्थान्धता और कायरता है । जो तुच्छ लोभ और कायरतामें फँसा हुआ है वह क्या मुक्त हो सकता है, क्या निर्वाण प्राप्त कर सकता है ?"

"आपने ठीक कहा आचार्य ! मैं भी परलोकवाद और पुनर्जन्मवादको ऐसी ही तुच्छ स्वार्थान्धता और कायरता समझता हूँ । मैं सर्वदाकेलिए मर न जाऊँ, इस डरके मारे मरनेके बाद भी जीवित रहनेकी कल्पना करूँ, यह कितना महँगा सौदा है ? यदि पुनर्जन्मका विश्वास हाथ-पैर और मनको न बाँधे होता तो हज़ार में नौ सौ निन्यानबे जनता अपने सामनेकी परोसी थाली एक आदमीके सामने रखकर भूखों न मरती, और न भूखे और नंगे रहनेवालोंकी कमाईसे, उनके खून और हड्डियोंसे बड़े-बड़े प्रासाद तैयार होते ।"

"साधु ! वत्स ! साधु ! मैंने बुद्धके दर्शनको पुष्ट करनेकेलिए बहुत लिखा है, लेकिन परलोकवाद और, निर्वाणवादकी पुष्टिमें मैंने जो युक्तियाँ दीं, वह मुझे भी अत्यंत निर्बल मालूम होती थीं । जब कोई नित्य सनातन आत्मा ही तथागत नहीं मानते, तो निर्वाण किसका होगा ? हाँ यदि दीप-निर्वाणकी तरह जीवन-निर्वाणका भी अर्थ बुझ जाना हो, तो हमें निर्वाण और उसके बादकी बातकेलिए तनिक भी ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं; ध्यान यदि देना है, तो निर्वाणसे पहिले रहनेवाले जीवनकेलिए ।"

"पुनर्जन्म इस शरीरमें तो सिद्ध है, हम सब जानते हैं भन्ते ! जो हम शैशवमें रहे वही तरुणाईमें नहीं हैं । मनुष्य हर क्षण मरता और नया पैदा होता है । दुनियाकी हर वस्तुकी तरह मनुष्य जिन मन और शरीर दोनों चीज़ों-से बना है, वह भी प्रवाह है, क्षण-क्षण मरकर नये बन रहा है । जो जीवित-मन शरीर है वह इहलोक है और जो दूसरे क्षण तीसरे क्षण······आने-वाला मन शरीर है, वही परलोक है। इसके अतिरिक्त परलोक वह है,

जिसका प्रवाह अनंत काल तक जारी रहता है, वह है संतान—पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र ········।"

"तुम्हारा यह परलोकवाद श्रमण—ब्राह्मणोंके परलोकवादसे ज्यादा अच्छा है, यह मैं मानता हूँ; क्योंकि बहुजनहिताय यही हो सकता है। श्रमण-ब्राह्मणोंका परलोकवाद तो एकहिताय—नौ सौ निन्यानबे की कमाईको चोरी-डकैती करके मौज करनेवाले एक आदमीको प्रोत्साहन देना है।"

"प्रोत्साहन ही नहीं, जहाँ उस चोर-डकैतका स्थान शूली और बध्य-भूमिमें होना चाहिए था, वहाँ वह सिंहासनपर बैठाया जाता है, उसपर छत्र-चँवर डुलते हैं, उसे धर्मराज कहा जाता है। भन्ते! मैं श्रमण-ब्राह्मणोंके परलोकवादको चोरों-डकैतोंका परलोकवाद मानता हूँ, यह परलोकवाद बहुजन-हिताय नहीं हो सकता।"

"तो जय! तुम सब पढ़-गुनकर इसी परिणामपर पहुँचे?"

"मेरी बुद्धि, मेरा तजर्बा मुझे इसी निष्कर्षपर पहुँचाता है। तथागतको अनित्यवाद, क्षणिकवाद—दुनियामें हर चीज़का बदलना ही परम सत्य है—को मैं मानता हूँ। बदलना विश्वका स्वाभाविक गुण है, इसलिए किसी बदल देनेवाले कर्त्ता या ईश्वरकी आवश्यकता नहीं। मैं समझता हूँ, ईश्वरके विचारको फैलानेमें राजाओंका सबसे बड़ा हाथ है। पृथिवीके परमेश्वर (राजा)-को देखकर आकाशके परमेश्वरकी कल्पना की गई। आकाशके परमेश्वरकी निरंकुशताको बतलाकर पृथिवीके परमेश्वरको निरंकुश बताया गया। 'सब कुछ छोड़कर अपनेको परमेश्वरके हाथमें दे दो' यह सिद्धान्त काल्पनिक परमेश्वरके फ़ायदेके लिए नहीं राजाके फ़ायदेकेलिए है।"

"वत्स जय! जब मैं विचार करता हूँ, कि वे लोग जो किसी समय इस खाली भूमिको आबाद करते थे, उन्होंने यदि तुम्हारे परलोकका खयाल किया होता तो दुनिया क्या हुई होती?"

"मैं समझता हूँ भन्ते! यह दुनिया बेहतर होती। राजगृहके उस वक्तके कोटिपति श्रेष्ठियोंकी संतानोंको आज हम नहीं जान सकते। नहीं जान सकते—इसका मतलब यही है कि अब वे नौ सौ निन्यानबेके खून चूसनेवाले अकेले व्यक्ति नहीं रह गये। अजातशत्रुने अपने पिताका खयाल नहीं किया, मातुल-

कुलका खयाल नहीं किया और हर तरहसे सिर्फ़ अपना खयाल किया; उसकी संतानें आज नौ सौ निन्यानबेमें हैं। मैं समझता हूँ भन्ते! जब तक नौ सौ निन्यानबे और एकके भेदको मिटा न दिया जायेगा, तब तक इस दुनियाको बेहतर नहीं बनाया जा सकता, तब तक यह दुनिया नरक बनी रहेगी और लोगोंको एक काल्पनिक स्वर्गकी आशामें मरना होगा।"

× × ×

मैं अब बीस वर्षका हो रहा था। आचार्य वसुबन्धु गंधार जानेकेलिए तैयार थे, और शायद मैं उनका विद्यार्थी न होता और अज्जुकाके स्नेह सम्मानका वह खयाल न करते, तो कभीके पाटलिपुत्रसे चले गए होते। मैंने आचार्यके सारे गम्भीर ज्ञानको प्राप्त कर लिया था, यह बात तो नहीं थी; तो भी आचार्यने अपने मुखसे कहा था—"वत्स! तुम मेरे योग्यतम शिष्य हो।" अब मैं भी उन्नीस सालसे बराबर देखते आते उन प्रासादों, उस राजसी जीवनको छोड़कर विस्तृत दुनियामें कूदना चाहता था। आचार्यने कहा था, सिंहलमें तथागतका उपदेश शुद्ध रूपमें मिलता है। परमभट्टारककी स्वीकृतिके अनुसार कुछ ही साल पहले वज्रासन (बोधगया)में सिंहल भिक्षुओंकेलिए वहाँके राजाने एक विहार बनवाया था। मैं एकसे अधिक बार वहाँके भिक्षुओंसे मिला। उन्होंने उस पुरानी भाषामें लिखे कुछ सूत्रोंको मुझे दिया। लेकिन उतने ज्ञानसे तृप्ति नहीं हुई, इसलिए भी मैंने सिंहल जानेका निश्चय किया।

प्रश्न था, सिंहल जाया कैसे जाय? दस-बीस हज़ार दीनारकेलिए मुझे कोई दिक़्क़त नहीं थी। लेकिन दीनारोंके भरोसे यात्रा करना मुझे पसन्द नहीं था। अज्जुका परमभट्टारककी ओरसे विशेष दूत बनाकर मुझे भिजवा सकती थी, किन्तु राज-सम्बन्धसे मैं कोई लाभ नहीं उठाना चाहता था। मैंने विद्या पढ़ी थी किन्तु नवतरुण था, और विद्या भी तो आज तभी सफल हो सकती है, जब किसी तरह प्रभुओंकी कृपा-दृष्टि अपने ऊपर हो। मैं स्वच्छन्द-विहारी यात्री होना चाहता था, किन्तु भिक्षा-जीवी नहीं। लेकिन मैंने किसी समय मूर्त्तिकला सीखी थी, उसमें दक्षता प्राप्त की थी। मैं अब भी कभी-कभी वीणा

बजाया करता था, गा भी लेता था। मैंने सोचा यही दो कलाएं हैं, जिनकी सहायतासे मैं स्वच्छन्द-यात्री हो सकता हूँ। मैंने अन्तिम वर्ष उनपर विशेष ध्यान दिया, अपने हथियारोंपर शान लगाए; लेकिन सबसे कठिनाई मालूम हो रही थी, कैसे अज्जुकासे विदाई लूँ। पिछले साल तातका देहांत हो गया था तबसे अज्जुका मेरे लिए और खयाल करने लगी। एक दिन भी न जानेपर स्वयं मेरे स्थानपर चली आती। चन्द्र अब बहुत कुछ स्वच्छन्द हो गया था। स्वच्छन्द इसी अर्थ में; कि उसने अपनी एक दुनिया बना ली थी, जिसके भीतर ही वह अपना सारा समय देता था। अज्जुका कभी-कभी जानना चाहती कि मैंने आगेकेलिए क्या सोचा है। मैं कहता—"अभी तो अज्जुका! मैं विद्यार्थी ही रहना चाहता हूँ।"

"लेकिन तात! आचार्य तुम्हारी विद्याकी बड़ी प्रशंसा करते थे।"

"आचार्यकी बड़ी कृपा थी। उनके पास जो विद्या-भण्डार था, उसमें सीखनेकेलिए बहुत कुछ रह गया था, किन्तु आचार्य अब रुकना नहीं चाहते। मैं चाहता हूँ अभी कुछ साल और विद्यामें लगाऊँ।"

मैं पाटलिपुत्रके कुछ दूसरे विद्वानोंके भी पास जब तब जाने लगा था; अज्जुकाको यह दिखलानेकेलिए कि मैं पाटलिपुत्रमें ही रहकर और विद्या सीखना चाहता हूँ। लेकिन अज्जुकाको संतोष नहीं होता था, विशेषकर जब वह मेरे बारेमें सुनती कि जय तरुणियोंके साथ हेल-मेल नहीं रखना चाहता। यह बात नहीं थी कि मैं तरुणियोंसे घृणा करता था, मैं उनके सौन्दर्यकी प्रशंसा नहीं करता था, मैं उनके नृत्य-गानमें आनन्द नहीं लेता था। लेकिन, न जाने क्यों चन्द्र जैसा प्रणय मैं नहीं प्रदर्शित कर सकता था। उसका खयाल आते ही हृदयके भीतर हिमालयकी ठण्डी हवा चलने लगती थी। किन्तु मुझे जीवन नीरस नहीं मालूम होता। उसे सरस करनेकेलिए तरुणियोंके प्रणयको छोड़कर दूसरी भी चीज़ें थीं, जिनमें विद्या-व्यसन, व्यायाम, संगीत तथा मूर्त्ति-कलाका अभ्यास मुख्य थे। तो भी एक खास सीमा तक मैं किसी तरुणीसे घनिष्ठता स्थापित करनेकी कोशिश करता, सिर्फ़ इस अभिप्रायसे कि अज्जुका मेरे बारेमें निश्चिन्त हो जाय। उसका यह खयाल हट जाय कि आचार्य वसु-बन्धुकी संगतमें रहकर मैं अब संसारका त्याग करना चाहता हूँ।

दक्षिणापथके कितने ही नरेशोंके कुमार या अमात्य पाटलिपुत्रमें रहा करते थे, उनसे मैं वहाँके बारेमें अधिक पूछा करता था।

(९)

भग्न पोत

एक दिन आचार्य सुघ्न जानेवाली नावपर सवार हुए। बहुतसे लोग नाव तक उन्हें बिदाई देने गए। मैं तो उनके साथ सरयू और गंगाके संगम तक गया। अन्तिम वन्दना करते वक्त मेरी आँखें गीली हो गईं। आचार्यने कहा "स्नेह बुरा नहीं है, क्योंकि यह आदमीको उत्सर्ग करना सिखलाता है, संकीर्ण अपनत्वकी सीमाको तोड़नेकी शक्ति देता है; लेकिन हमें समझना चाहिए कि हम चलते हुए संसारके चलते हुए पथिक हैं; जिसमें संयोग-वियोग अवश्यंभावी हैं। हाँ, ठीक है मैं पका फल हूँ, किसी वक्त वह वृन्त छोड़ सकता है। लेकिन वत्स! जो अवश्यंभावी है, उसकेलिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए; चिन्ता करनी चाहिए अपने उद्देश्यकी। जीवनभर मैं आशाकी दृष्टि से तुम्हारी ओर देखता रहूँगा। जीवनके बाद भी, दीपकसे दीपक जलाया जाता है।"

मैं आचार्यको अन्तिम वन्दना कर अपनी छोटी नावपर कूद पड़ा, और चित्तके अवसादको दूर करनेकेलिए नाविकोंके साथ पतवार चलाने लगा।

अज्जुकासे छुट्टी लेना मेरेलिए बहुत मुश्किल था, उसके बिखरे प्रेमका भारी अंश अब मेरे ऊपर केन्द्रित था। यद्यपि अज्जुका असाधारण नारी न थी, उसमें धैर्य था, दूर तक सोचने-समझनेकी शक्ति थी, उदारता थी, लेकिन पहिले-पहल जब मैंने जानेकी चर्चा शुरू की, तो देखने लगा, वह अपने ऊपर संयम करनेकेलिए बड़ा प्रयत्न कर रही है, आँखोंको अपलक कर उसने आँसुओंको रोकना चाहा, लेकिन वह असफल रही। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आँसुओंसे भर गईं और पलक गिरते ही उसके दोनों कपोलोंपर दो रौप्य-धार बह चली। वह कुछ कहना चाहती थी, किन्तु वह ओठके कम्पन तक सीमित रह गया। मैंने आगे कुछ नहीं कहा, उस दिन यही कहके चला आया—"अज्जुका अपने उद्देश्यकी पूर्त्तिके अर्थ मेरा परदेश

जाना ज़रूरी है, मैं किसी बहानेसे भाग भी सकता हूँ, किन्तु मैंने निश्चय किया है कि मैं तब तक जानेका नाम नहीं लूँ जब तक अज्जुका इसकेलिए आज्ञा नहीं देती।"

अज्जुका अब रोज़ एक वक्त मुझे अपने हाथसे खिलाती। उसको मेरे वास-स्थानपर रोज़ आते देख, मैं ही उसके पास जाने लगा। रोज़ मिलनेपर भी मेरी हिम्मत नहीं होती थी कि मैं फिर उस बातको छेड़ूँ। एक दिन उसने अपने ही कहा—"तात! तुम्हारा मेरे ऊपर बहुत स्नेह है।"

"क्यों कि अज्जुका तू मेरी माँ भी है और बहिन भी।"

"लेकिन तात! मैं भूल गई थी कि मैं पाटलिपुत्रके प्रासादमें नहीं पैदा हुई, मैं पैदा हुई थी यौधेयोंकी अग्रोदकामें। यौधेयिका अपने स्वामीको कमरमें खड्ग बाँधकर समरभूमिमें भेजते वक्त भी आँसू निकालना नहीं जानतीं। तुम्हारे ऊपर बहुत दायित्व है, तुम्हारे जैसे भाईको पाकर बहन, तुम्हारे जैसे पुत्रको पाकर माँ धन्य हो सकती है।"

एक दिन अज्जुका ने मेरा परिष्वंग करके पाटलिपुत्रसे बिदाई दी। मैं सिंहलकेलिए प्रस्थान कर रहा था; किन्तु सीधे नहीं जाना चाहता था, मैं दक्षिणापथके देशोंको देखना चाहता था। मुझे पाटलिपुत्रमें ही मालूम हो गया था, कि सुह्मकी सीमा पार करते ही ऐसी भाषाओंसे संबंध होगा, जिनका समझना मेरेलिए आसान नहीं होगा; किन्तु साथ ही यह भी पता लग गया था कि वहाँके राजकुलों और ब्राह्मणोंके घरोंमें जो भाषा बोली जाती है, वह मागधी जैसी है। मेरे सामने दो रास्ते थे, एक तो गंगासे नावद्वारा सागरमें पहुँचनेसे पहिले ही कुछ देर पैदल चलकर फिर नावसे ताम्रलिप्ति पहुँचना और फिर वहाँसे किसी सामुद्रिक वोहितपर चढ़कर आगेकेलिए रवाना होना; दूसरा रास्ता था अटवीका, जो बहुत संकटापन्न था। सौभाग्यसे मुझे सिंह वर्मा जैसा साथी मिल गया। वह भी मेरी तरह संकटको आवाहन करनेकेलिए तैयार था और साथ ही चित्र-तूलिकाका ही नहीं खड्गका भी धनी था। हमने अटवीके रास्ते ही जाना तै किया। हम गया होते आगेकेलिए रवाना हुए। यहाँसे कलिंगका रास्ता गया था। हम रास्तेमें कभी पांथशालाओंमें ठहरते और कभी किसी गाँवमें। यद्यपि परमभट्टारकका परिचय-पत्र मैंने ले लिया था,

किन्तु उसे साधारण परिस्थितिमें इस्तेमाल करना नहीं चाहता था। रास्तेमें हमें कई सार्थ मिले, लेकिन किसी सार्थसे बँधकर हम जानेकेलिए तैयार नहीं थे। अटवीके आरम्भ होते तक हमने अपने साथ भारवाहक रखा, किन्तु अब अपने बहुतसे सामानको छोड़ दिया और कामकेलिए अत्यावश्यक चीज़ोंको खुद उठाया। सिंह वर्माने बतलाया कि सुह्म तक ही हमें थोड़ी बहुत सर्दी मिलेगी, उसके बाद ऊनी कपड़ोंकी आवश्यकता नहीं होगी। हमने अपने पास एक-एक मोटे और रूखे ऊनी कम्बल रखे। जिसे कहीं भी हम बिछा सकते थे। पहिननेकेलिए एक-दो अतिरिक्त जोड़े थे, किन्तु क्षौम और दुकूल नहीं, वह सूती कपड़े थे। हमने साधारण यात्रीका रूप धारण किया था। खड्ग हमारे शरीरका अभिन्न अङ्ग था और जंगलमें आखेट करनेकेलिए हमने एक धनुष और तरकसमें कुछ बाण रख लिये थे। इन सबके साथ मेरे पास कुछ दीनार भी थे।

अटवीमें हम कई दिन चल चुके थे। हमारे साथ बीस आदमियोंका एक छोटा-सा सार्थ था। दोपहरका वक़्त था। हम वृक्षकी छायामें बैठे विश्राम कर रहे थे। उसी वक़्त बीस-पचीस आदमी भागते हुए आए। उनमेंसे कितनोंके कपड़े ख़ूनसे सने थे। शरीरपरके वस्त्र और खड्गके सिवा उनके पास कुछ नहीं था। उन्होंने बतलाया कि हमारा सत्तर आदमियोंका सार्थ था, बीस गाड़ियाँ थीं जिनमें दक्षिणापथकी कितनी ही पण्य वस्तुएँ थीं। यहाँसे एक योजनपर हम रात्रिमें विश्राम कर रहे थे। सबेरे जब हम चलनेकी तैयारी कर रहे थे, तो सैकड़ों शबरोंने हमपर यकायक आक्रमण कर दिया। हमने कुछ देर तक मुक़ाबिला किया। हमारे तीस-पैंतीस आदमी हत-आहत होकर गिर पड़े। शबरोंका बल अधिक देखकर अपनी जान बचानेकेलिए हम जंगलमें जहाँ-तहाँ छिप गये। शबरोंने हमारी चीज़ों, हमारी गाड़ियोंको लूट लिया और कितने ही आदमियोंको पकड़कर ले गये। हमारे कितने ही आदमी अब भी जंगलमें छिपे हैं और मालूम नहीं हमारे सार्थवाह विष्णुदासके ऊपर क्या बीती।

हमने उनकी बातोंको ध्यानसे सुना। हमें भी उसी रास्तेको पार करना था और शबर वहाँ मौजूद थे। प्रश्न था, आगे चला जाय या पीछे लौटा जाय। लोग हिचकिचा रहे थे, किन्तु मैंने और सिंह वर्माने कहा—"पीछे

लौटना भी सुरक्षित नहीं है। शबर एक दूसरेके पास जल्दी खबर पहुँचा देते हैं। पीछे जानेका रास्ता भी उतना ही संकटापन्न है, जितना चार दिन आगे जानेका। संभव है आगे वाले शबर इतने मालको पाकर आक्रमण करनेकी इच्छा न करें। और हम पैंतीस आदमी हैं, जंगलमें छिपे हुए लोग भी मिल जायेंगे, इसलिए आगे ही चलना अच्छा है।"

कुछ देर आगे-पीछे सोचकर लोग हमारी रायसे सहमत हुए और हम आगे बढ़े। दो-दो चार-चार करके पिछले सार्थके पैंतीस आदमी और आ गये। अब सत्तर आदमियोंकी जमात थी। सबके पास खड्ग और कुछके पास धनुष-बाण भी थे। आगेसे आनेवाले साथी अपने सब मालको बटा चुके थे। इसलिए उन्हें मगध जानेकी ज़रूरत नहीं थी और हमारे सार्थके कुछ लोग जो हिचकिचा रहे थे, अब वह भी पूरे मनसे आगे बढ़ रहे थे। एक याम भर दिन था, जब हम उस जगह पहुँचे, जहाँ आज सबेरे युद्ध छिड़ा था। वहाँ सिर्फ़ दो आदमी सिसकते मिले। अट्ठाईस आदमी मर चुके थे। उनको जलानेका ख्याल हम नहीं कर सकते थे, क्योंकि यह आग के धुएँसे शबरोंको खबर देना होता। वहाँ सिर्फ़ एक गाड़ी बच रही थी और कुछ खाने-पीनेकी चीज़ें भी। घायल प्यासके मारे तड़प रहे थे। हमने नालेसे पानी लाकर उन्हें पिलाया। उनसे मालूम हुआ कि विष्णुदास भी घायल थे, लेकिन वह तब तक बड़ी बहादुरीसे लड़ते रहे, जब तक शबरोंने उनकी टाँगमें भाला मार कर गिरा नहीं दिया। वह उन्हें अपने साथ गाड़ीपर ले गये हैं। उनके कहनेसे यह भी मालूम हुआ, कि शबरोंकी संख्या पचाससे अधिक नहीं थी। आक्रमण अचानकसे हुआ था, इसलिए वे घबड़ा गये और जमकर लड़ नहीं सके। हमने घायलोंकी मरहम-पट्टी की, उन्हें गाड़ी पर रखा और चल पड़े। मैंने सिंह वर्मा से कहा—"वयस्य सिंह! विष्णुदासने डटकर मुक़ाबिला किया है। शबर उन्हें बुरी तरह मारेंगे। वह गाड़ी अपने साथ ले गये इसलिए रास्ता मालूम होना कठिन नहीं है। हमें पाँच-छः आदमियोंको गाड़ीके साथ छोड़कर जल्दी उनका पीछा करना चाहिए।"

सिंह वर्मा मुझसे सहमत थे। कुछ लोग हिचकिचा रहे थे। इसपर हमने कहा कि जो लोग गाड़ीके साथ आना चाहें, वह उसके साथ आएँ

जल्दी थी। बिखरकर हम एक पेड़से दूसरे पेड़की आड़में छिपते गाड़ियों-के पास पहुँच गये। हमने बहुत सावधानी रखी थी, किन्तु शबर गाफ़िल नहीं थे। हमने तुमुलध्वनि करके हमला बोल दिया, वह मुक़ाबिलेकेलिए तैयार थे। उनके ऊपर दोनों ओरसे एक ही बार हमला हुआ। वह तीरका पूरा इस्तेमाल न कर पाये, नहीं तो हमें अधिक क्षति उठानी पड़ती। खड्ग और भाला चलानेमें हम उनसे अधिक सिद्धहस्त थे। खड्ग खप-खप चल रहे थे, और कभी-कभी आपसमें टकरा जाते थे। हमारे साथी भालेका इस्तेमाल करते थे। आधे शबर हताहत हुए, और कुछ जङ्गलकी ओर भाग गये। हमने गाड़ियोंको ढूँढ़ा। विष्णुदास एक गाड़ीपर रस्सीसे बँधे अधमरे पड़े थे। सिंह वर्माने उनकी रस्सीको खोल दिया! उनका तालू सूख रहा था, इसलिए सिर्फ़ हाथके संकेतसे पानी माँगा। मशकसे पानी देनेपर मालूम हुआ कि कुछ शबर गाड़ीकी कितनी बहुमूल्य चीजोंको लेकर अपनी पल्लीकी ओर चले गये हैं। हमें अब जल्दी-जल्दी रवाना होना था; न जाने कब शबर और आदमियोंको लेकर आ जायँ।

हमने गाड़ियाँ जोड़ीं और मुड़कर वहाँ पहुँच गये जहाँ हम लाल कपड़ा छोड़ आये थे। वहाँ हमारे बाक़ी छः साथी गाड़ी लिये पहुँच गये थे। विष्णु-दासके सामने सवाल था—"मगध जायें या देश लौटें।" लेकिन उन्होंने कहा—"बहुमूल्य पण्य तो लुट गया है, बाक़ीको लेकर आगे बढ़ना बेकार है। ऊपरसे सार्थके भी बहुत आदमी मारे जा चुके, जिनमें सबसे लड़ाके योधा अधिक थे।" अंतमें उन्होंने पीछे लौटनेका निश्चय किया।

अटवीमें सिर्फ़ शबरोंका ही भय नहीं था। उस रातमें चलनेका मतलब था, हाथियोंके झुण्ड और बाघके मुँहमें पड़ना। लेकिन हम यह भी जानते थे कि शबर मार खाकर चुपचाप बैठ नहीं जायँगे। सार्थका पथ-प्रदर्शक अगली गाड़ीपर बैठ गया और हम लोग पीछे-पीछे चलने लगे।

उस दिन सारी रात चलते रहे। सबेरे हम एक जलाशयपर पहुँचे। वहाँ एक छोटासा चंडिकाका स्थान था। मंदिर नहीं एक वृक्षके नीचे चबूतरा और सिन्दूर पुता ऊबड़-खाबड़ पत्थर था। इसे ही लोग चंडिका-स्थान कहते थे। पुजारी भट्ट, अपनेको ब्राह्मण कहता था, लेकिन कोयले जैसे काले चेहरे पर लाल-लाल आँखें उसे झूठा कर रही थीं। वह और एक अधेड़ परिव्राजिका

यहाँके निवासी थे। परिव्राजिकाका रंग गोरा था, यौवनके बसंतमें वहाँ सौन्दर्यकी भी सुवास रही होगी; लेकिन अब तो पतझड़ था। उसके शरीरपर काषाय वस्त्र, गलेमें अक्षमाला और सिरपर पिंगल जटा कुण्डलित थी। परिव्राजिका बोलने चालनेमें ज़्यादा होशियार थी। उसने स्मित बदनसे हमारा स्वागत किया। विष्णुदास दो दिन पहले यहाँ ठहरे थे और उन्होंने परिव्राजिकासे शकुन पूँछा था। परिव्राजिकाने सब ठीक कहा था, लेकिन साथ ही रास्तेमें छोटीसी खतरेकी बात बतलाई थी। विष्णुदासको घायल देखकर उसने बड़ी समवेदना प्रकट की। परिव्राजिकाको स्मरण दिलानेकी ज़रूरत नहीं थी। विष्णुदासने स्वयं कहा—"आर्य्या! आपने ठीक ही बतलाया था, खतरा तो बहुत बड़ा आया, लेकिन आपकी कृपासे मैं बाल-बाल बच गया।" परिव्राजिकाने विष्णुदासके घावको देखा। उसने कोयला और क्या-क्या चीज़ पीस-पीसकर घावोंमें भरकर पट्टी बाँध दी, और आगे निश्चिन्त रहनेकी भविष्यवाणी करके ढाढ़स बँधाया।

हम लोग थके तो थे ही ऊपरसे भूख सता रही थी, लोग भोजन बनानेमें लग गए। भट्टसे पूँछनेपर मालूम हुआ कि शबरोंका यहाँ भी डर है। मुझे तो मालूम होता था, वह स्वयं भी उनके काममें शामिल रहता है; नहीं तो इस जङ्गलमें इस तरहकी तपस्याकी क्या ज़रूरत? सिंह वर्माने कहा—"तपस्या काहे की? अधेड़ परिव्राजिकाकेलिए किसी पुरुष की आवश्यकता थी और काक भट्टकेलिए इससे बढ़कर सुन्दरी कहाँ मिल सकती थी।" पारिव्राजिका प्रसवकी आयुको पार कर गई है, इसलिए दो-से तीन होनेकी चिन्ता नहीं है। भट्ट ज़रा भी इधर-उधर जाता तो हमारे कान चौकन्न हो जाते कि कहीं वह शबरोंको पता देने तो नहीं गया है। हम इस स्थानको जल्दीसे जल्दी छोड़ देना चाहते थे।

भोजनके बाद हम लोगोंने थोड़ा विश्राम किया। विष्णुदासने चंडिका और परिव्राजिकाकेलिए उपायन भेजे और दोपहर बाद वहाँसे चल पड़े। अटवी चार दिनमें नहीं पूरे दस दिनकी यात्राके बाद खतम हुई। सिर्फ़ एक बार हाथियोंके झुण्डका खतरा आया। लेकिन हमने अपने आसपास खूब

आग बाल ली थी। जङ्गली जानवर आगके पास नहीं आया करते, यह हमें विश्वास था।

हम सुह्मदेशके पहिले नगरमें पहुँचे। विष्णुदासका घाव बहुत कुछ अच्छा हो चुका था। किन्तु वह अब भी निर्बल थे। यहाँ उनका कुटुम्बी एक सार्थवाह रहता था। विष्णुदास हम दोनोंको अपना प्राण-रक्षक समझते थे, और मैं तो सारे सार्थका मुखिया मान लिया गया था। विष्णुदासने दूसरे सार्थवाहसे हमारी बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने अपने नगरमें चलनेकेलिए बहुत कहा मगर वह रास्तेमें नहीं था इसलिए हमने उधर जाना पसंद नहीं किया। सुह्म, उत्कल और कलिङ्गके कितने ही सार्थवाहोंसे उनका संबंध था, उन्होंने हमारेलिए कई परिचय-पत्र लिखे। दस पत्रके बाद हमने और न लिखनेके लिए प्रार्थना की। आखिर पत्रोंका भी एक गट्ठा हो गया था, बिना दो हाथ लंबे तालपत्रके वह हमारी पूरी प्रशंसा नहीं कर पाते थे। फिर एक-एकको लपेटकर उसमें रस्सी डालकर बाँधना और फिर गीली मिट्टी रख नामांकित मुहर लगाना।

एक मास तक हमारा नागरिक जीवनसे कोई संबंध नहीं रह गया था। न खानेका कोई ठीक प्रबन्ध और न नहाने-धोनेका; ऊपरसे शबरोंके आक्रमणके बाद तो हमें अपनी गति और तीव्र करनी पड़ी और आधे बैलों और गाड़ियोंको छोड़ देना पड़ा। सुह्म नगरके सार्थवाहके घरमें बहुत-सी चीजें सुलभ थीं, जो कि पाटलिपुत्रके किसी श्रेष्ठिके घरमें मिल सकती हैं। पाटलिपुत्रका नागरिक जीवन पहिलेसे भी इन देशोंकेलिए अनुकरण की चीज़ थी; परमभट्टारक की दिग्विजयके बाद तो उसका प्रभाव दूना हो ही गया। रास्तेकी धूप-थकावट आदिके कारण हमारा शरीर सूख गया था और चेहरेका रंग भी बदला हुआ था। लेकिन सार्थवाह हमारी ख़ातिरमें कोई बात उठा नहीं रखना चाहता था। अब हम अभ्यंजनके साथ स्नान करते, सुस्वादु आहार ग्रहण करते। श्वेत धौतवस्त्र पहिनते। सार्थवाहकी तरुण दासियाँ संवाहन और सेवाकेलिए तैयार थीं। लेकिन तो भी पाटलिपुत्रके रूपके नज़दीक पहुँचनेमें हमें एक सप्ताह लग गया। हमारे मनोरंजनकेलिए नगरमें बहुत-सी चीज़ें थीं, लेकिन हम सिर्फ़

नृत्य-गीतको पसंद करते थे। सिंह वर्माने अपनी तूलिका निकाली और पहिला चित्र बनाया। पाटलिपुत्रके विख्यात चित्रकारकी ख्याति नगरके श्रेष्ठियों, सार्थवाहों और कुलिकों (महाजनों)में फैल गई और उसका सारा समय तूलिकासंचालनमें लगने लगा। हमारे नये मित्र सार्थवाहकी कन्याने दासीद्वारा कई बार अपना चित्र बनानेकेलिए प्रार्थना की। सिंह वर्मा इन्कार नहीं कर सकता था, उसने चित्र खींचनेकी कोशिश की, लेकिन वह भारतीय चित्रकलाका ममज्ञ था, कल्पनासे वह सुंदर चित्र बना सकता था, किन्तु सजीव मूर्त्तिको देखकर उसे चित्रपटपर उतारना बहुत मुश्किल हो जाता था। कई दिनके प्रयत्न करनेपर भी उसे असफल रहते देख मैंने एक पट तैयार किया और जिस वक्त सार्थवाह-कन्या वातायनपर बैठती, उस वक्त मैं अपनी तूलिका चलाने लगता। चार दिनके परिश्रमके बाद मैंने अपने चित्रको सिंहके सामने रखा। उसने भी अपना चित्र पूरा कर लिया था, किन्तु वह सार्थवाह-कन्याका नहीं, एक कल्पित सुन्दरीका चित्र था। मैंने उससे कहा—"इस चित्रको सार्थ-कन्याके सामने भेंट कर सकते हो, किन्तु एक शर्त है, इसे तुम्हें अपना कह करके भेंट करना पड़ेगा।"

"लेकिन इसे तो वयस्य! तुमने बनाया है।"

"लेकिन हम दोनों को चित्रकारके तौरपर प्रसिद्ध नहीं होना चाहिए। मुझे खड्ग चलानेवाला योद्धा रहने दो और तुम बन जाओ कलाकार।"

मैंने देखा था, जब श्रेष्ठि कन्या चित्रांकनकेलिए सिंहके सामने बैठती, उस वक्त उसकी आँखें तल्लीन हो सिंह वर्माके तरुण मुखपर पड़तीं और जब मैं किसी कामकेलिए भीतर आता तो वह दृष्टिको चुरा लेती थी। सिंह वर्माने दोनों चित्रोंको तरुणीके सामने रखकर कहा—"सुन्दरि! यह है तुम्हारा वास्तविक चित्र, और यह है कल्पित चित्र।"

तरुणीने बहुत कृतज्ञता प्रकट की, लेकिन जब सिंह वर्माने प्रस्थान करनेकी बात कही, तो तरुणीका चेहरा एकदम खिन्न हो गया और उसने आँखोंको छिपानेकेलिए मुँहको दूसरी ओर फेर लिया। दूसरी बार जब सिंह वर्माने उन्हें देखा तो उनमें आँसू भरे हुए थे। तरुणीने इतना ही कहा—"इतनी जल्दी जानेकी क्या ज़रूरत है, कुछ दिन और रहो।"

सिंह वर्माने मुझसे सब बात बतलाई, मैं बड़े असमंजसमें पड़ गया। मैं देख रहा था, सिंह वर्मा भी इतना जल्दी जानेके पक्षमें नहीं था, किन्तु वह मेरी इच्छाके प्रतिकूल कोई काम न कर सकता था। हमने कुछ दिन और रहनेका निश्चय किया, किन्तु सार्थवाहके अतिथि बनकर नहीं। सार्थवाहने पहिले तो अपने घरपर रहनेकेलिए बहुत आग्रह किया, लेकिन जब हमने कहा कि यदि मुझे नगरमें अधिक दिन रखना चाहते हैं, तो अच्छा है हमें अपनी कलाके बलपर रहनेकेलिए छोड़ दें। सार्थवाहने इसे मान लिया और नगरसे बाहर अपने उद्यानमें रहनेका इन्तिज़ाम कर दिया।

उद्यान बड़े रमणीक स्थानपर था। चतुर मालीने उसमें तरह-तरहके फूल लगाये थे, जो वसंतके आगमनकी सूचना दे रहे थे। बाग़के बीचमें एक छोटासा किन्तु बहुत ही स्वच्छ सौध था। उद्यानसे कुछ दूरपर सुवर्ण-रेखासी नदीकी धारा बह रही थी। हमें यह उद्यान बहुत पसंद आया। सिंह वर्माके कामकी तो इतनी माँग थी कि उसे उन्हींसे नहीं छुट्टी थी। लेकिन मुझे समय काटनेकेलिए अब किसी काममें लगनेकी ज़रूरत थी। मैं मूर्त्ति बनानेका काम ले सकता था, लेकिन मैं नहीं चाहता था कि हम दोनों रूपकारके तौरपर प्रसिद्ध हों। सिंह वर्माका कहना था कि मैं भी चित्रका ही काम करूं, नाम उसका दे दिया जाय। विद्या और खड्गके लिए हम प्रसिद्ध होना नहीं चाहते थे, क्योंकि उससे राजकुल तक ख़बर पहुँचनेका डर था। अन्तमें मैंने संगीताचार्य बननेका निश्चय किया। मैं वीणा और दूसरे वाद्य ख़रीद लाया, दो-तीन ही संगीतगोष्ठियोंमें मुझे कौशल दिखलाना पड़ा, फिर मेरे गुणकी माँग होने लगी। परमभट्टारक समुद्रगुप्तके संगीत-प्रेमने पाटलिपुत्रमें ही संगीतकी ओर लोगोंकी रुचि नहीं बढ़ा दी है, बल्कि दीनारोंपर बने वीणा सहित उनके रूपको देखकर दूर-दूरके नगरोंमें लोग संगीतका विशेष सम्मान करने लगे हैं, खासकर पाटलिपुत्रीय राग और लयकी हर जगह माँग है। नगरकी तरुणियोंकेलिए नृत्य और गीतका ज्ञान बहुत आवश्यक समझा जाता है। इस प्रकार हम दोनोंकी पाटलिपुत्रके चतुर चित्रकार और संगीताचार्यके तौरपर ख्याति बढ़ चली। मुझे कई कुलोंमें कन्याओंको नृत्य और संगीत सिखलानेकेलिए जाना पड़ता था।

सार्थवाह-कन्याका सिंह वर्माके साथ प्रेम और बढ़ चला। वसंतके दिन थे। सहकार मंजरीमें भौरोंका कलरव सुनाई देता था। दिशाएँ सुगंधिसे भरी हुई था। जगह जगह वसंतोत्सव मनाये जा रहे थे। सार्थवाह-कन्या प्राय: उद्यानमें चली आती। अब दोनोंके संबंधमें इतनी घनिष्ठता बढ़ते देख चिन्ता का होना ज़रूरी था। सिंह वर्माने एक दिन अपनी प्रेयसीसे कहा—"प्रिये! अब हम उस जगह पहुँच गये हैं, जहाँ कि हमें किसी निर्णयपर पहुँचना है।"

कुमारीने व्यंगका हँसी हँसते हुए कहा—"क्या अभी एक निर्णयपर हम पहुँच नहीं चुके हैं।"

"जहाँ तक हम दोनोंका संबंध है, हम निर्णय कर चुके हैं, किन्तु अब इस निर्णयपर तुम्हारे गुरुजनोंकी भी मुहर होनी चाहिए।"

"यदि गुरुजनोंकी अनुमति नहीं हुई तो?"

"तो इससे पहले तुम्हें उनकी राय जाननी चाहिए।"

"नहीं तो क्या" कहते हुए कुमारी का स्वर कंपित हो उठा।

सिंह वर्माने कुमारीके अलकोंको हल्का-सा स्पर्श देते हुए उसकी आँख-की ओर देखा और फिर बोलने लगा—"तुम घबड़ाओ नहीं, मेरा वयस्य कोई रास्ता निकाल लेगा।"

लेकिन रास्ता निकालनेकी कौन-सी वहाँ मुश्किल बात थी। मैं जानता था कि सार्थवाहका संबंध हम दोनोंसे दिनपर दिन घनिष्ठ होता चला गया है। वह हमें अच्छे कुलका तरुण समझता है। जब-जब हमने चलनेका ज़िक्र किया तब-तब उसने मना किया।

मैंने एक दिन फिर प्रस्थान करनेकी बात उठाई। सार्थवाहने कहा—"आपको कलिंग पट्टन ही जाना है न? मैं स्वयं कलिंग जिनके दर्शनकेलिए जानेवाला हूँ। आपको हमारे साथ चलना चाहिए।"

"लेकिन हम तो अटवीके दुर्गम रास्तेसे जाना चाहते हैं।"

"यहां से ताम्रलिप्ति जानेमें भी दुर्गम अटवी मिलेगी, उसमें भी हाथी और बाघ रहते हैं; आपको अटवी यात्राका भी आनंद आ जायेगा और समुद्र-यात्राका भी।"

मैंने उस दिन 'हाँ' या 'नहीं' कुछ नहीं कहा, दूसरे दिन सिंह वर्माने बतलाया कि सार्थवाह सपरिवार जिन-प्रतिमाका दर्शन करनेकेलिए कलिंग पट्टन जानेको तैयार है।

× × ×

यात्रा हमारी निर्विघ्न होती आई थी, इसलिए हम निश्चिन्त सोये थे। नीले आकाशमें सफ़ेद फूलोंकी तरह बिखरे तारोंको देख नाविक पोतको चला रहे थे। कुछ नाविकोंको छोड़ बाक़ी सभी पोतारोही गंभीर निद्रामें निमग्न थे। यकायक पोत ज़ोरसे हिल उठा और निश्चिन्त सोये आदमी पोतकी एक ओर लुढ़क गये। नींद खुली तो देखा, बड़ा तेज़ तूफ़ान चल रहा है और लहरें उठ-उठकर पोतके काष्ठतलको धो रही हैं। सभी लोग घबड़ाये हुए थे। पालकी एक ओरकी रस्सियाँ टूट गई थीं और वह प्रतिकूल दिशाकी ओर जहाज़को खींचे ले जा रहा था। नाविकोंने पोतके संभालनेकी कोशिश की मगर वे उस अँधेरेमें लहरोंकी बौछार लोगोंकी घबड़ाहट और जहाज़के एक ओर करवट हो जानेके कारण कुछ करनेमें अपनेको असमर्थ पा रहे थे। वे लोगोंको जहाज़की दूसरी तरफ होनेकेलिये चिल्ला रहे थे, लेकिन पोतारोही स्वयं इतना क्रंदन कर रहे थे कि कोई क्या किसीकी बात सुनता? सभी बातें बड़ी तेज़ीसे हो रही थीं, उससे भी तेज़ जितना कि हमारा मन सोच रहा था। नाविकोंको भी न मालूम था और न हमें कि हमारी नाव किसी चट्टानकी ओर बढ़ रही है। यकायक बड़े ज़ोर की आवाज़ आई। उस वक्त मैं नावकी छत पर था। आवाज़के साथ ऐसा धक्का लगा कि मुझे मालूम हुआ, किसीने उछालकर समुद्र में फेंक दिया। मैं पानीमें तैरने लगा। कुछ देर आवाज़ सुनाई देती रही, फिर चारों ओर निस्तब्धता छा गई। मैं कहाँ हूँ, इसका कुछ पता नहीं था। हो सकता है मैं बीच समुद्रमें हूँ, जहाँ न नज़दीक तट है और न कोई द्वीप। फिर इस तैरनेसे फ़ायदा? लेकिन जीनेकी इच्छाको इतनी जल्दी छोड़ना भी मैं कायरता समझता था। अंतिम समय तक प्रयत्न करना और सब तरहसे असमर्थ होकर ही पराजयको स्वीकार करना, यही हमारे जीवनका ध्येय होना चाहिये, इसलिए मैं तैरता ही रहा। सोचने लगा, जब कोई दिशा मालूम ही नहीं होती, तो इस वक्त ज्यादा हाथ-पैर चलाना बेकार है। मुझे अपनी शक्ति

को उस वक्तकेलिए सुरक्षित रखना चाहिए, जब कि आस-पास कुछ दिख-लाई पड़े। उत्तर दिशामें ध्रुवके किनारे सप्तर्षिके सात तारोंमें चारकी चौकी समुद्रके नीचे चली गई थी, सूर्योदय होनेमें तीन तारोंके और भीतर जानेकी देर थी। तूफ़ान अब ख़तम हो गया था। ऊपर-नीचे उठाने और पटकने-वाली तरंगें बंद हो चुकी थीं। मैं चित्त पानीपर पड़ा था। जान पड़ता था कि किसी शांत सरोवर में, शव-प्लवन कर रहा हूँ। इसी समय मेरे पैरोंमें कोई ठोस चीज़ लगी। देखा एक बड़ा-सा काष्ठ-फलक है, जिसपर टाँग फैलाकर लेटा जा सकता है। मैं सोचने लगा, यदि तटसे बहुत दूर पोत-निमग्न हुआ है, तो यह फलक क्या करेगा। यह इतनी सहायता कर सकता है कि भूखे-प्यासेको कुछ दिनों और ज़िन्दा रहने दे। मैंने आँख मूँद ली, समझने लगा सो गया, फिर मुँदी आँखोंके भीतर दिखलाई पड़ता था,—वर्षों मैं उसी फलकपर चुपचाप तैरते लेटा रहा, फिर जीवन रत्ती-रत्ती करके शरीरको छोड़ने लगा। पहले पैर, फिर कटि, फिर हृदयकी गति बन्द होने लगी, फिर चित्रपटपर काली मसी-सी पुत गई। तब देखा उस शवपर कुछ कौए बैठे हुए हैं, वह बीच-बीच-में चोंच भी मारते हैं और काँव-काँव भी करते हैं।

मुझे नींद ज़रूर आई होगी, क्योंकि इन बातोंके सिवा कोई दूसरा खयाल नहीं आता।

मैं जग रहा था, लेकिन देर तक आँखोंको खोलनेमें हिचकिचाता था। सोचता था अभी रात है, या दिगन्त-व्याप्त समुद्रको देखनेसे लाभ क्या? लेकिन अब उषाका प्रकाश पलकोंसे छन-छनकर भीतर प्रवेश कर रहा था। आँखें खोलीं तो देखा, स्वच्छ नीले आकाशमें तारोंका कहीं पता नहीं। मैं उठ बैठा। पूरबकी ओर समुद्रके गर्भसे निकलकर लाल किरणें छा रही थीं। फिर खड़ा होकर देखा, तो नील तालपंक्तियाँ पश्चिम दिशाको लिप्त करतीं दिखाई पड़ रही थीं। मेरे शरीरमें स्फूर्ति आने लगी, रोम-रोममें आशा भर गई। समुद्रमें चारों ओर नज़र दौड़ानेपर कहीं कोई जीवन-चिह्न दिखलाई नहीं पड़ता था। इतने प्राणोंकी बलि लेकर वह शांत हो गया था।

मैं पानीमें उतर गया और बाएँ हाथसे फलकको पकड़े दाहिने हाथ और पैरोंसे तैरते तटकी ओर जानेकी कोशिश करने लगा।

किनारेकी वालुकापर पैर रखकर खड़ा हुआ, फिर अपने लंबे केशोंके पानीको निचोड़ दिया। उस वक्त शरीरपर एक कंचुक और अन्तरवासक (धोती)के सिवा कोई चीज़ नहीं थी। कटिपर हाथ फेरते मैंने देखा, सौ दीनारोंकी थैली (गांजिया) बँधी हुई है। मुझे और संतोष हुआ। अब मुझे फ़िक्र पड़ी, अपने सहयात्रियोंकी। कूलके साथ दक्षिणको जाऊँ या उत्तरको, इसमें किसीके पक्षमें मैं निश्चय नहीं कर सकता था। मैं उत्तर मुँहकरके चलने लगा; क्रोश भर जानेके बाद एक फलक किनारेसे लगा दिखाई दिया। फलक किसी पोतका था इसमें तो सन्देहकी गुञ्जायश नहीं थी; किन्तु, वह हमारे ही पोतका था इसका क्या प्रमाण? तो भी मेरी मृत-आशामें थोड़ा-थोड़ा जीवन आने लगा। मैं उसी दिशाकी ओर आगे बढ़ा। और फलक मिले, जहाज़से बहकर आई कुछ और चीज़ें दिखलाई दीं। मानव-चिह्नोंमें एक लाश सामने आई। मेरा हृदय काँपने लगा। मैंने जल्दी-जल्दी जाकर मुँहको देखा। वह हमारे मित्र सार्थवाह थे। उनसे देर तक तैरनेकी आशा नहीं रखी जा सकती थी। उनका शरीर भी बहुत स्थूल था और अब तो पानी भर जानेसे पेट और भी फूल गया था। मुझे खेद हुआ, किन्तु साथ ही सिंह वर्माकेलिए आशा-तन्तु अभी टूटा नहीं। आगे भग्न पोतके और भी कितने ही चिह्न मिले। पोतारोहियोंके पाँच-छः शव भी देखे। किन्तु उनमें सार्थवाह-पत्नीके सिवा मेरा और कोई परिचित न था। याम भर जानेके बाद जब कोई फलक या पोत-चिह्न नहीं मिला, तो मैं हताश हो गया। तटसे दूर बहुतसे ताड़के वृक्ष थे। मैं उनके पास गया, किन्तु वहाँ कोई बस्ती नहीं थी। मुझे अफ़सोस हुआ कि मैंने ताड़पर चढ़ना क्यों नहीं सीखा। वहाँ कहीं-कहीं बबूलके भी वृक्ष थे और नागफनी तथा दूसरी कटीली झाड़ियाँ भी, इसलिए नंगे पैर चलना अच्छा नहीं समझ कूलके बालूपर चलने लगा। आगे मैंने एक बरगद देखा। सोचा, इसपर चढ़कर देखूँ, आस-पास कहीं कोई मानव-चिह्न है या नहीं। लेकिन बरगदके पास जानेपर उसकी आड़में ताड़के पत्तोंसे छाये छोटे-छोटे घर दिख-लाई पड़े। मैं नज़दीक पहुँचा तो कुत्ते हाँव-हाँव करते दौड़े।

मेरे कपड़े बहुत कुछ सूख गये थे, तो भी मैं जिस अवस्थामें था, उससे आदमी समझ सकता था, कि मैं किसी विपत्‌का मारा हूँ। कुत्तोंकी आवाज़

सुनकर दो-तीन स्त्रियाँ दौड़ी हुई आईं। कुत्तोंको उन्होंने भगा दिया। वह कुछ बोल रही थीं, किन्तु मैं एक शब्दको भी नहीं समझ रहा था। मैं सोचने लगा, क्या मैं किसी दूसरे द्वीपमें पहुँच गया हूँ। लेकिन तूफ़ानसे पहले नाविक पोतकी दिशाकेलिए बिल्कुल निश्चिन्त थे; हम तटसे बहुत दूर होकर नहीं चल रहे थे। फिर दूसरे द्वीपमें कैसे पहुँच गया? उनके जामुन जैसे शरीरपर नीले रंगका अन्तरवासक सिर्फ़ कटिके नीचे था। कटिके ऊपर सिर्फ़ सिरको ढाँके काले केश थे, जो पीछेकी ओर जूड़ेके रूपमें बँधे थे। गलेमें सीप, पत्थर और कौड़ियोंकी माला थी; हाथमें कई-कई कांसेकी चूड़ियाँ? कानमें कोई चीज़ लटक रही थी, जिससे वह पतले सूतकी तरह तनकर कंधा छूना चाहते थे। मैंने द्वीपोंकी बहुत-सी कथाएँ सुनी थीं, बचपनमें कुलूपाने एक राक्षसियोंके द्वीपकी कथा सुनाई थी। भग्न-पोत यात्री जब किनारे पर पहुँचा, तो पाँच सौ राक्षसियोंने उसे चारो ओरसे घेर लिया, और वह हमेशाकेलिए उनका बंदी बन गया। मैं सोचने लगा, क्या यह उसी तरहका तो कोई द्वीप नहीं है। लेकिन यहाँ पाँच सौ नहीं सिर्फ़ तीन थीं।

उन्होंने हाथसे आनेका इशारा किया। मुझे स्मरण हो आया, मनुष्यके पास एक और भी भाषा है। मैंने समुद्रकी ओर हाथ बढ़ाया फिर अपने हाथको छाती पर रखा और भी संकेत कर रहा था, लेकिन मुझे आगे बढ़ते देख खुद हाथका इशारा करते वह घरकी ओर चल पड़ीं। घर वस्तुतः ही बहुत छोटे-छोटे थे। छत नहीं दीवारें भी डंठल सहित ताड़के पत्तोंकी थीं। एक घरके द्वारपर जाकर उन्होंने भीतरकी ओर संकेत किया। मुझे रोमांच हो आया। राक्षसियोंके होनेका तो मुझे बिल्कुल विश्वास नहीं था, किन्तु साथ ही मैं इसे भली प्रकार समझता था कि आदमी राक्षससे बढ़कर हो सकता है। यदि मैं कोठरीमें चला जाऊँ और इन्होंने दरवाज़ा बंद कर दिया, तो समुद्रसे बचा हुआ प्राण इनके हाथमें चला जायेगा। मैं द्वारपर ज़रा ठमक गया। फिर दाहिने हाथको मुँहपर रख संकेत किया। खाने-पीनेका संकेत जान पड़ता है, दुनिया भरमें एक ही है। उनमेंसे दो प्रौढ़ाएँ आपसमें कुछ बात करतीं दूसरे घरोंकी ओर चली गईं। अब वहाँ रह गई थी एक षोड़शी। उस जम्बू-श्यामा तरुणीका अंग-अंग साँचेमें ढला हुआ था। उन्मुक्त गोल

स्तन श्रीफलसे स्पर्द्धा कर रहे थे। बड़ी-बड़ी विस्फारित आँखोंकी शुभ्र श्वेतिमा बड़ी मोहक थी, साथ ही उसमें कथाकी राक्षसियोंका कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ता था। मैंने सोचा, इन हाथोंमें बंदी होना बुरा नहीं होगा। सिर नीचे कर द्वारके भीतर घुसा। पहले मुझे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं आया, वहाँ तालकी चटाईके ऊपर सिंह वर्मा और उसकी प्रेयसी वासन्ती बेसुध सोए हुए हैं। सिवाय वक्षके ऊपर-नीचे उठनेके उनमें कोई गति नहीं थी। मैंने दूसरे विचारोंको दबाया। पाटलिपुत्रसे यहाँ तककी सारी ही घटनाएँ याद स्वप्न हैं, तो यह सारा जीवन ही स्वप्न है। मैं पासमें ज़मीनपर बैठ गया। जम्बू श्यामा-तरुणी भी आकर एक कोनेमें बैठ गई। थोड़ी देरमें वह दोनों प्रौढ़ाएँ भी आ गईं। मिट्टीके बर्त्तनमें गाढ़े सूप जैसा भात और दूसरे मिट्टीके जलपात्र-में भरा पानी उन्होंने मेरे सामने रख दिया।

मुझे भूख लगी हुई थी, इससे तो इनकार नहीं कर सकता, किन्तु उसके लिए पेटको चूहे नहीं कुतर रहे थे। मैंने गाढ़े भातमेंसे एक ग्रास मुखमें डाला, उसमें लवण भी था और मछली भी। सारे भातको खाकर पूरे जल-पात्रको पी गया। दोनोंको ख़ालीकर बर्त्तन प्रौढ़ाओंके सामने रख दिया। वह तरुणीसे कुछ कहकर चली गईं।

मैं अब सब तरहसे निश्चिन्त था। मेरा मित्र और उसकी प्रेयसी जीवित तथा मेरे सामने थे। मुझे भूख या प्यासकी कोई पीड़ा नहीं थी। अब उन उच्छ्वसित किन्तु निश्चल मूर्त्तियोंको देखते-देखते मैं प्रलय तक प्रतीक्षा कर सकता था। मुझे और कोई काम नहीं था, न और कुछ सोचनेकी ज़रूरत। मेरी नज़र श्यामा तरुणीपर गई, लेकिन जब हम एक-दूसरेकी भाषा ही नहीं समझते थे, तो बात क्या करते? मैंने एक क्षणकेलिए उसके मुखपर दृष्टि डाल फिर संकोचके मारे हटा लिया, लेकिन देखता था, वह निःसंकोच मेरी ओर देख रही है। मेरे कंचुकपर हंस-मिथुन बने हुए थे। षोड़शीकी दृष्टि उधर गई। वह बिल्कुल मेरे पास बैठकर हंस-मिथुनको बड़े ध्यानसे देखने लगी। उसने हाथको आकाशमें चलाकर कुछ कहते हुए हँस दिया। थोड़ी ही देरमें मेरा भी संकोच जाता रहा। वह भी मेरे कंचुक और अन्तरवासकको मलकर हाथसे देख रही थी, और मैं उसके भांगके रेशोंसे बने अन्तरवासकको

हाथसे छूकर उसके रूखेपनको अनुभव कर रहा था। और बातोंमें मैं उसका अनुसरण कर सकता था, किन्तु उसकी अव्याज हँसी और संकोच-शून्य शुभ्र दृष्टिका अनुकरण करना मेरे बसके बाहरकी बात थी।

शायद हम इस तरह मूक वाणीमें एक-दूसरेके पास बैठे एक-दूसरेके अन्तस्तलमें प्रविष्ट होनेकी चेष्टा करते एक युग तक बैठे रहे; इसी बीच सिंहने अँगड़ाई ली। उसने आँखें खोली। मैं झपटकर उसके पास चला गया। वह उठ खड़ा हुआ और कितनी ही देर तक बिना बोले ही हम आलिंगन-प्रत्यालिंगन करते रहे, फिर पहिले मैं ही बोला—"सखे सिंह! क्या यह हमारा दूसरा जन्म नहीं है?"

"और कितना सुन्दर जन्म, जिसमें जनमते ही तरुणाई, जनमते ही प्राणसे मित्रका मिलन।" हमारी चेष्टा और उद्‌गारको श्यामा षोड़शी स्मित-वदन हो विस्फारित आँखोंसे देख रही थी। हमारी आवाज़से वासन्ती भी जग गई। वह संकुचित हो अपनी शाटीके अञ्चलसे शरीरको छिपाने लगी। मैंने कहा—"वासन्ती भाभी! अब तक जो सीखा था उसे भूल जाओ। समुद्रके इतने गोतोंसे उसे धुल गया समझो। अब कुछ इस षोड़शीसे सीखो, जो कि तुम्हारे सामने बैठी है।"

वासन्तीने मुस्कुरा दिया, लेकिन तब भी आँचलको ठीक करना नहीं छोड़ा। मेरी तरह उन दोनोंके पास भी शरीरपरके ही कपड़े बच रहे थे। मैंने इस वक़्त सार्थवाहकी मृत्युके बारेमें कुछ कहना नहीं पसन्द किया।

अभी हमें बहुत-सी समस्यायें हल करनी थीं। सबसे पहले यह जानना ज़रूरी था कि हम हैं कहाँ? लेकिन जाना कैसे जाय, हम तो एक शब्द भी न उनकी भाषाका जानते थे न अपनी उन्हें समझा सकते थे।

सबसे पहले मैंने पूछा—"सिंह! यह बताओ, कुछ खाया भी है?"

"नहीं, खाया तो नहीं है, लेकिन अब भूख लगी है।"

अभी हम यह बात कर ही रहे थे कि वहीं मिट्टीके बर्त्तनमें लाल गीला भात और दूसरे बर्त्तनमें पानी आ मौजूद हुआ। मैंने वासंतीकी ओर मुख करके कहा—"शरमाओ मत वासंती रानी! यह सौभाग्य है जो हमारे शरीरपर इतने कपड़े भी बचे हैं; नहीं तो हम तीनोंको समुद्रके गर्भसे वैसे ही

निकलना पड़ता, जैसे माताके गर्भसे। अच्छा, तुम्हें यह श्यामा सुन्दरी सिखलाएगी।"

वासंतीने सिर्फ़ मुस्करा दिया। श्यामाके ओठोंपर हँसी नाचने लगी।

मैंने फिर कहा—"सखे सिंह! अभी सब बातोंको छोड़कर पहिले तो सामने आये इस अन्न-देवताकी पूजा करो। इसमें लवण, तंडुल, मत्स्य और जलके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, लेकिन मैं शपथ खानेको तैयार हूँ, कि मैंने किसी परमभट्टारककी रसोईमें भी इतना मधुर भोजन नहीं खाया।"

मिट्टीकी थाली सिंह वर्माके सामने रखी गई; जो वासंतीसे दूर नहीं थी लेकिन उसका हाथ अब भी उठ नहीं रहा था। मुझे फिर बोलना पड़ा—"भाभी! भायर सिंह मुझसे पाँच वर्ष बड़ा है, इसलिए मेरा-तुम्हारा यही नाता है। यदि मेरे मुखसे कोई अनुचित बात निकले, तो उसे उसी तरह ख्याल करना; जैसे भाभियाँ देवरकी बातोंका ख्याल करती हैं। और अब परमभट्टारिका भाभीके सामने दास देवरको यह प्रार्थना करनी है कि हमारी भाभी बननेसे पहिले ही भाभी भट्टारक सिंह वर्माकी महादेवी बन चुकी थीं यह हम तीनों जानते हैं; यह श्यामा और गाँवकी दूसरी स्त्रियाँ भी यह छोड़ दूसरा ख्याल नहीं करेंगी। फिर हाथ फैलानेमें संकोच क्या है। इस गाँवमें दो-दो थालकी आशा मत करो।"

सिंहने वासंतीके हाथको पकड़कर भातमें डाल दिया। उसने पहला ग्रास मुखमें डालते हुए झुकी गर्दन और दोनों विकसित आँखोंसे मेरी ओर देखा। मैंने चित्र बनाते वक्त और दूसरे वक्त भी वासंतीको अनेक बार देखा था। यद्यपि इस वक्त उसकी आँखें लाल थीं, उसके चेहरेपर थकावटके चिह्न थे किन्तु वह इतनी सुन्दर कभी नहीं दिखाई पड़ी थी। मैंने कहा—"बस भाभी। तुम अपने मधुर कटाक्षोंको इसी तरह कभी-कभी इस दासपर फेंक दिया करो, फिर लक्ष्मण अपने भैया और भाभीके साथ चौदह वर्ष नहीं सारे जीवनको बनवास में बितानेकेलिए तैयार हैं।"

सिंह बोल उठा—"बहुत आगे मत बढ़ो जय! मत समझो कि तुम्हारी

भाभी इसी तरह गूँगी बनी रहेगी। और, जब वह बोलने लगेगी, तो तुम्हें जवाब नहीं सूझ पड़ेगा।"

वासन्तीने सिर हिलाकर सिंहके वचनका अनुमोदन किया।

(१०)

मानवताके बाल्यजीवनमें

भोजनके बाद सिंहने अपनी कथा सुनाई। जिस वक्त पोतको धक्का लगा, चारों ओर मृत्युकी छाया और घबड़ाहट दिखलाई देने लगी, उसी वक्त उसने भयभीत वासंतीके हाथको पकड़ लिया। डूबनेसे पहले ही मानों वह डूब रही थी, और सिंहका हाथ पा उसे बड़ा सहारा मिल गया। एक क्षणमें ही दोनोंने समझ लिया कि हम जीवनके अंतिम क्षणमें खड़े हैं। रात थी, अँधेरेमें कोई किसीको देख नहीं सकता था। हम लोग एक ही जगह सोये थे, इसलिए वासंतीको हाथसे टटोलकर भी वह पा सकता था। किन्तु यदि दिन भी होता तो दोनों प्रेमी अंतिम क्षणको लाज-संकोचमें न बिताते। सिंहने दोनों बाहोंको वासंतीके पीठपर बढ़ाया और दोनोंका शरीर एक हो गया। यह सब बातें एक क्षणके भीतर हुईं और दूसरे क्षण दोनों उसी तरह अपनेको समुद्रके भीतर देख रहे थे। शायद उनका जीवन न बचा होता, यदि दोनों तैरना न जानते। सिंह कह रहा था—"पानीमें गिरते ही, जय! एक क्षणके बाद सारी घबड़ाहट जाती रही। मुझे याद है पानीमें हम उसी तरह परिष्वक्त गिरे थे, लेकिन तुरन्त हाथ छोड़कर तैरने लगे। वासंती ज़रा देरकेलिए अलग हो गई थी। मैंने आवाज़ दी और वह मेरे पास आ गई। मैंने उससे कहा कि बायें हाथसे मेरे कटिबंधको पकड़ ले। हम इस तरह कितनी ही देर तक तैरते रहे। फिर निराशा और थकावट आने लगी। मैं शवासनसे लेट गया और वासन्तीको भी उसी तरह करनेकेलिये कहा। दुर्घटनाके बाद ही समुद्रमें जो भीषण शांति स्थापित हो गई थी, उसने यह लाभ हमें ज़रूर पहुँचाया कि हम एक-दूसरेकी सांस तक सुन सकते थे, और अर्धालोड़ित हो तैर सकते थे। हमको तैरना बहुत पड़ा, इसीलिए इसमें शक नहीं, शरीर श्रांत होने लगा।"

मैंने वासंतीको चुप देखकर कहा—"भाभी, देख रही हो न, जान पड़ता है मृत्युके मुँहसे निकालनेका प्रयत्न भाई सिंहने ही किया है।"

वासन्तीने हँसते हुए अबकी अपना मुँह खोला—"पुरुषोंकी यह प्रकृति ही है।"

"लेकिन भाभी! पुरुषकी यह प्रकृति तभी हुई, जब कि नारीने उसे वैसा करनेकी स्वतंत्रता दे दी।"

"जय! यहाँ मुझे मतभेद है, किन्तु अभी कथा पूरी कर लेने दो। इतना मैं जानता हूँ कि उस वक्त वासंतीको अपने शरीरसे लगा देख जीवन-संग्रामकेलिए मेरे शरीर और मनमें दूनी शक्ति आ गई थी। यद्यपि हम बीच-बीचमें सुस्ताते भिनसार तक तैरते रहे, शरीर भी शिथिल हो रहा था; लेकिन हमारा उत्साह मंद नहीं पड़ा। इसी वक्त मेरा पैर ज़मीनपर पड़ा। मैंने पैरोंके बल कंठभर जलमें खड़े हो तैरती हुई वासंतीके बायें हाथको पकड़-कर कहा, सुन्दरि! अब तुम भी कंधेपर बैठो।"

"ओहो! भायर सिंह! तो तुम भीम हो गए, नहीं कोई और ढूंढ़ना चाहिए, शायद तुम कुंभकर्ण थे, जिसके लिये सातों समुद्र घुटनेभर ही पानी रखते थे। और द्रौपदीने तुमपर विश्वास कर लिया।"

"नहीं देव······" कहकर वासंती बीचमें ही रुक गई।"

मैंने कहा—"रुको मत भाभी! देवर हूँ ही जो मैं।"

"अच्छा देवर! यद्यपि मुझे मालूम हुआ कि हम तटके किनारे थाह जलमें पहुँच गए हैं; किन्तु मैंने पैर जो धरतीकी ओर बढ़ाया, तो नाक डूबने लगी।"

"इसलिए द्रौपदीने भीमके कंधेकी शरण ली।"

"यह ग़लत है, मैं हाथ पकड़े तैरना चाहती थी लेकिन सिंहने ज़बर्दस्ती मुझे अपने कंधेपर बैठा लिया।"

"तो भायर भट्टारक! ज़बर्दस्ती भीम बनना चाहते थे। मैं न रहा कि उस वक्त भीमको समुद्रसे द्रौपदीको निकाल लाते देखता। मैं समझता हूँ भीमसे अच्छी उपमा है महावराहकी, क्योंकि विष्णुने महावराह रूपमें पृथ्वीका

उद्धार किया था और शायद समुद्र से ही। लेकिन मैं ऐसी उपमाको पसंद नहीं करता।"

"हाँ देवर! यह भीम या महावराहका अभिनय करनेकेलिए उस वक्त बहुत उतावले हो गये थे। सारी थकावट न जाने कहाँ चली गई थी और बड़े विनोद-प्रिय बन गये थे।"

"विनोद-प्रिय क्यों न बनता जय! कोई तुम्हारी तरह स्वाभाविक विनोद-प्रिय होता है और कोई हर्षातिरेकमें थोड़े समयकेलिए। तुम खुद समझ सकते हो कि यदि समुद्रसे मुझे अकेले निकलना पड़ता, तो मेरी दशा क्या हुई होती। मैं अपनी उमाको अपना अभिन्न अंग बना मृत्युके मुखमें कूदा था, और उसी तरह हम दोनों अब जीवनमें प्रवेश कर रहे थे। मनुष्य वेदनाओं (सुख-दुख)को पहले अनुभव करता है, और उनके प्रकट करनेकेलिए शब्द पीछे खोज पाता है।"

"भाभी! तुम कैसा अनुभव कर रही थीं, जबकि भायर भीमने अपने कंधेपर लिए समुद्रका अवगाहन किया।"

"मैं पूर्व दिशाके अरुण मुखको देख रही थी।"

"अर्थात् जीवन प्रभातको और उसके अपार आनंदको।"

सिंह वर्माने अपनी बातको यह कहते खतम किया—"जब हम बालूपर खड़े हुए तो उस वक्त पूर्व दिशामें हल्की लाली दिखलाई पड़ने लगी। अब भी हमारा श्वास फूल रहा था। हमने इन ताड़ोंको देखा, किंतु अभी इधर-उधर घूमनेकी जगह थोड़ा सुस्ता लेनेका निश्चय किया। आगेकी कथा लंबी नहीं है। हम सुस्ता रहे थे, उसी वक्त कुछ पुरुष जाल लिये हुए तटकी ओर आये और उनमेंसे एक हमें यहाँ पहुँचा गया।"

"और तुम दोनों इस चटाईपर निस्तब्ध सो रहे थे, जबकि मैं यहाँ आ पहुँचा।"

"और तुम अपनी कहो देवर!"

"तुम्हारे ये शब्द कितने मीठे हैं भाभी! काश मुझे भी तुम्हारे साथ ही समुद्रमें कूदना पड़ा होता। फिर भायर सिंहको युधिष्ठिर ही रहकर संतोष

करना पड़ता। मेरी कथा बस तुमसे उल्टी है। तुमने अपनी नींद इस झोपड़ीमें इस चटाईपर पूरी की और मैंने क्षीर-समुद्रमें शेष-शय्यापर।"

वासंतीके ओठ और नेत्र दोनों हँस रहे थे। सिंह वर्माने कहा "अर्थात् आपको लकड़ीका कोई बड़ा तखता हाथ आ गया और तैरनेकी जगह आप उसपर लेट गये।"

"मुझे इतने नीचे मत गिराओ सिंह भायर।"

"भाभीकी नज़रमें क्यों? मैं तो भीम ही रह गया और आप बन गए शेषशायी भगवान्। यह क्यों नहीं कहते कि हाथ-पैर ढीला कर दिया और पराक्रम करनेकी जगह निर्जीव काष्ठ-फलक और समुद्रकी तरंगोंके हाथमें अपने जीवनको दे दिया।"

"भैया सिंह! भाभीके सामने मुझे इतना नंगा मत करो।"

"भाभी क्या इतनी निबुद्धि है देवर जय! कि तुम्हारे भैयाकी बातोंमें आ जाये। वह अपने मामा सार्थवाहके मुँहसे सुन चुकी है, अटवीमें शवरोंके सामने तुमने जो पराक्रम दिखलाया था, वह मुझसे छिपा नहीं है।"

"लेकिन भाभी! उस पराक्रममें मेरा भैया भी बराबरका हिस्सेदार था।"

"तुम्हारे भैयाको मैं पराक्रमहीन नहीं कहती, किन्तु तुम केवल शेषशायी नहीं हो, यह मैं जानती हूँ, ज़रूर कोई कारण रहा होगा।"

"धन्य भाभी भट्टारिका! इसकी चिकनी-चुपड़ी बातें सुनकर कैसे दो ही घंटेमें देवरका पक्ष लेने लगीं।"

"नहीं भैया सिंह! भाभीका कहना ठीक है। सुनो क्या कारण हुआ। मुझे दिशाका तो कोई पता था नहीं, उस अँधेरेमें न यह सूझता था कि तट किधर है। डरने लगा कि यदि मैं हाथ-पैर हिलाऊँ और मेरा मुँह समुद्रके गर्भकी ओर हुआ तो मेरा पराक्रम जीवनकेलिए नहीं मृत्युकेलिए होगा। तुमने पराक्रम ज़रूर किया, यह संयोग था जो कि वह तटकी ओर हुआ।"

"और मेरे देवरने अपनेको संयोगपर नहीं छोड़ा।"

"संक्षेपमें कथा यह है कि मैं फलकपर शेषशायी भगवान्की ही तरहसे दुनियाकी कोई पर्वाह न कर खूब सो गया। प्रातःकाल आँख खुली, तो देखा तट बहुत दूर नहीं है। फिर तटपर उतरा। किनारे-किनारे उत्तरकी ओर चला।

भग्न-पोतकी कितनी ही चीज़ें और कितने ही शव मिले। आखिरमें जब इस बरगदपर चढ़कर चारों ओर देखनेकी इच्छासे इधर आया तो यह झोपड़ियाँ देखीं। श्यामा तरुणी और उसकी दो साथिनोंने कुत्तेसे बचाया। यहाँ आकर भाभी और भैय्याको मीठी नींद सोते देखा।"

मैंने उस वक्त सार्थवाह और उनकी पत्नीके बारेमें कुछ नहीं कहा। कई दिन तक मुझे भाभीको वह कठोर समाचार सुनानेकेलिए तैयार करना पड़ा, और जब सुनाया, तो कई दिनों तक वह रोती रही, उसके कुम्हलाये मुखको फिर हरा करनेकेलिए हमें महीनों प्रयत्न करना पड़ा।

× × ×

हम यह जाननेकेलिए बहुत उत्सुक थे, कि हम हैं कहाँ। लेकिन भाषा न समझनेके कारण हम उनसे कुछ पूँछ न सकते थे। उस दिन शामको शिकार और खेतोंसे लौटकर गाँवके सभी नर-नारी आ गये, और वे सुनसान झोपड़े फिर जाग उठे। मुखिया बूढ़ेने हमें अपने घरपर बुलाया। वहाँ कितने ही और स्त्री-पुरुष थे। एक-दूसरेकी बात न समझनेके कारण वह हमसे कुछ बोल नहीं सके, लेकिन चावलकी मेरय (कच्ची शराब)की ख़ूब दावत हुई। मिट्टीके घड़ोंमें मेरय रखी हुई थी और सबके सामने तालपत्रके चषक (प्याले)। मैंने देखा, श्यामा तरुणी वासन्तीको अपने सहेलियोंके बीचमें बैठाकर उसे मेरय पिलानेकी कोशिश कर रही है। वासन्ती भी समझदार थी, अपनी परिस्थितिको जानती थी और यह भी कि न जाने कितने महीनों और वर्षों तक यही अर्धनग्न तरुणियाँ उसकी सहेली बनेंगी। पानके साथ आगमें भुनी मछली थी। हमने ख़ूब रुचिपूर्वक खाया-पिया; अँधेरा हो जानेपर माँदल और बंशी बजने लगी। गाँवके तरुण-तरुणियाँ बड़ी रात तक नाचते रहे। उनका नाच सीधा सादा था, किन्तु देखनेके साथ ही मैं अखाड़ेमें कूदनेकेलिए तैयार नहीं था। श्यामा तरुणी मेरी गुरु बनी और नृत्यकी सारी मुद्राओंके सीखनेमें कुछ दिन लगे। किन्तु बंशी तो दूसरे दिनसे मैं बजाने लगा। मैंने देखा कि बंशी द्वारा सहयोग देकर दो ही दिनमें मैं उनके कितना नज़दीक हो गया। जिस दिन मैं अखाड़ेमें नाचनेकेलिए उतरा और अपनेको नौसिखिया नहीं

साबित किया, उस दिनसे तो मेरे गोरे चमड़ेमें उनसे अलग करनेकी शक्ति नहीं रह गई।

तीसरे दिन मैंने श्यामा तरुणीसे भाँगके कपड़ेका एक पतला टुकड़ा प्राप्त किया और कमरमें रस्सी डालकर वहाँके लोगोंकी ही तरह लँगोटी पहन ली। कंचुक और अन्तरवासककी पोटली बाँध यकायक भाभीके सामने चला गया। मुझे देखते हुए उसकी आँखें हँस रही थीं किन्तु उनमें आश्चर्यकी भी छाया थी। मैंने भाभीके सामने गठरी रखी। सौ दीनार निकालकर उसके हाथमें देते हुए कहा—"तुम्हारे आश्चर्य का समाधान तो भाभी! मैं ज़रा पीछे करता हूँ, पहिले इन दीनारोंको किसी जगह ज़मीनमें गाड़ दो, शायद किसी वक्त यह काम आएँगे। तुमने जो अपनी निष्क-माला (मुहरमाला)को परसों शाम ही उतार दिया, यह अच्छा किया।"

सूखे बालूपर पहुँचते ही मैंने वासंतीसे गहनोंको उतार देनेकेलिए कहा। वैसे गहने तो ज्यादातर पेटीमें थे, जो समुद्रके गर्भमें जा नागलोगकी किसी अप्सराको मिले होंगे। लेकिन जो बच रहे थे, उसे उतारनेमें वासंती संकोच कर रही थी! मैंने बतलाया कि गहने प्राणोंके गाहक भी बन सकते हैं।

"खैर, गहनोंसे मुक्ति हुई, किन्तु भाभीको अभी बहुत-सी चीज़ोंसे मुक्ति लेनी हैं।"

"किन-किन चीज़ोंसे देवर?"

"देख रही हो न तुम्हारा देवर किस तरह मुक्त हो तुम्हारे सामने खड़ा है।"

"साधु-साधु जय! लो वासंती भट्टारिका! और देवरका पक्ष लो।"

"मैं देवरकी किसी बातको निरर्थक नहीं समझती। चाहे समझनेमें कुछ देर लगती हो, लेकिन मेरा देवर जो कुछ कहता है, वह किसी गम्भीर अर्थको लिये ही।"

"अच्छी बात है, यदि भट्टारिकाका देवर शुक्र और बृहस्पति है तो फिर देर क्या है, भट्टारिका भी उसी तरह मुक्त हो जायँ और फिर अन्तमें इस दासके-लिए भी कोई रास्ता नहीं रह जायेगा।"

"मेरी बातको परिहासमें मत उड़ा दो भैया! अभी न जाने कितने महीनों हमें यहाँ रहना होगा। बिना आसपासके स्थानोंके बारेमें कुछ जाने, हमें इन अपरिचित बंधुओंकी शरण नहीं छोड़नी होगी। तुम भाभी भट्टारिकाके हितैषी नहीं हो भैया।"

"मैं क्यों हितैषी होने लगा, हितैषी तो भाभीका देवर होता है, चारो युगके कवि भाभी-देवरके ही गीत गाते हैं।"

"सुनो भाभी! भैया इतने भोले नहीं हैं, यह मनमें दूर तककी सोचकर मेरी बातको मज़ाकमें उड़ा अपनी बात कराना चाहते हैं। वह चाहते हैं कि जब भट्टारिकाको अपने लोगोंके सामने जाना पड़े, तो उसी श्यामा तरुणीके वेषमें जाये और मैं चाहता हूँ कि मेरी भाभी अपने वेशमें अपने लोगोंमें जाय।"

"तुम बड़े धूर्त्त हो जय!"

"अभी पता लग जाता है कि मैं धूर्त्त हूँ या मेरा भैया। भाभी! तू ही बतला, यह तेरी कंचुकी और शाटी रात-दिन पहननेपर कितने दिनों चलेंगी?"

"पाँच नहीं तो छः महीने।" कहते वासन्तीके चेहरेपर कुछ गम्भीरता आ गई थी।

"और भैया भट्टारक! यहाँसे निकलकर अपने लोगोंमें पहुँचना कितने दिनोंमें होगा, ज़रा इसे तो बतलाओ।"

"तुम्हीं जोतिस जानते हो, तुम्हीं बतलाओ।"

"मैं जोतिस तो नहीं जानता, लेकिन मुझे कोई विश्वास नहीं है कि छः-आठ महीने या बरस दिनमें भी हमारे निकल चलनेकी कोई आशा है। और भैया भट्टारक! तब तक भाभीके कपड़े नहीं रह जायँगे फिर तुम क्या पहननेकी सलाह दोगे?"

सिंह चुप था और भाभी कुछ सोचनेमें लग गई थी। मैंने फिर कहा "भाभी! मैं यह नहीं कहता कि आज ही तुम भाँगके अन्तरवासक (लुंगी) को पहिनकर श्यामा तरुणी जैसी बन जाओ। लेकिन तुम्हें इन कपड़ोंको बचाकर रखना होगा। पहिले नहाने-वहानेके समय अन्तरवासक पहननेका अभ्यास करो और फिर धीरे-धीरे इन्हीं जैसी बन जाओ।"

"देवर! तुम्हारी बातोंमें तथ्य है, किन्तु...."

"किन्तु नहीं बड़ा किन्तु। पचासों पीढ़ियोंसे लगी आदत एक दिनमें नहीं छोड़ी जाती। लेकिन एक महीनेके भीतर ही बहुत-सी पुरानी आदतें महत्व-हीन मालूम होने लगेंगी। मैं समझता हूँ मेरी भाभी तब तक अपनेको तैयार कर लेंगी।"

"और तुम्हारे भैया भट्टारकका क्या होगा ?"

"भैयाको तो मैं कल ही तक ठीक कर देता हूँ।"

"बड़ा आत्मविश्वास है जय ! तुमको।"

"तो भैया ! हाथमें तूलिका पकड़नेकी आशाको यहाँ छोड़ो। हम अपने नव-परिचित मित्रोंके दानपर नहीं जीने जा रहे हैं। मेहमानी दो-चार दिनकी होती है। दीनार यहाँ संकट लायेगा या सुख, यह जाननेकी हमारे पास कोई तदबीर नहीं। इसलिए उन्हींकी तरह हमें काम करना होगा। यहाँ हल नहीं चलता, गाय-बैलकी भी ज़रूरत नहीं है, लेकिन हम भी खेतोंमें कुदाल चला सकते हैं। शायद दस दिन तक हमारे हाथ दुखें, हथेलीमें छाले पड़ जायँ, लेकिन हम किसीसे दुर्बल नहीं, इसलिए दस दिन बाद हम भी उतना ही काम कर सकेंगे। दूसरा काम है मछली मारना, वह भी हम इनके साथ सीख लेंगे।"

सिंह वर्माने मेरे हाथको अपने दोनों हाथोंमें लेकर पुलकित हो वासंती की ओर मुख करके कहा—"देखा न, मैं अपने भाईकी झूठी तारीफ़ नहीं करता, जितना तारीफ़का पुल मैं तुम्हारे सामने बाँधता था, उससे भी बढ़कर यह प्रशंसाका पात्र है, यह मानती हो न !"

"मानों मैं मानती ही नहीं थी। मुझे देवरकेलिए तुमसे ज़्यादा अभिमान है।"

"यदि अभिमान है तो तैयार हो जाओ देवरके पीछे-पीछे चलनेकेलिए।"

"तुम्हें उपदेश देनेकी ज़रूरत नहीं। मैं कल हीसे श्यामा तरुणीके कामोंको देखकर कुछ काम करूँगी। और नहीं तो भात पका सकती हूँ, पानी ला सकती हूँ।"

"और फिर शाटी कंचुकीके बारेमें क्या राय है।"

"देवरकी राय दुरुस्त है। उसे भी मैं कुछ ही दिनोंमें बदल लूंगी। लेकिन तुम अपनी कहो, मेरे नागरिक चित्रकार।"

"नागरिक चित्रकार बहुत दिनोंसे अपने छोटे भाईके पीछे-पीछे चलने का अभ्यासी हो चुका हूँ, और आज सूर्यास्तके बाद दोनों एक ही वेशमें अखाड़ेमें जायँगे।"

× × ×

उस पल्लीमें सालसे ऊपर हमें रहना पड़ा। हम सिर्फ़ अपने रंगको नहीं बदल सके, नहीं तो हम उन्हींमेंसे एक थे। खेतों और शिकारमें हम उनसे भी अधिक परिश्रमी थे, पान-गोष्ठीमें हम साथ बैठते साथ पीते। नाचके अखाड़ेमें तो मैं सबसे कुशल नर्त्तक था। बीमारी, दुख-सुखमें हम सबके आत्मीय थे, भाभीने तो रोगियोंकी सुश्रूषामें जागती ही रात-रातभर बिताकर अपनेको और सबका प्रेम-पात्र बना लिया था। काश कि हमारा ज्ञान हमारा संस्कार उन्हींके तलका होता, फिर तो वह हमारेलिए सर्वश्रेष्ठ सुखमय जीवन होता। लेकिन हमें तो रोज़ किसी न किसी समय अपनी दुनिया याद आती, कामसे छुट्टीके समय हम घड़ियों समुद्रकी ओर आँख फाड़कर देखते इधरसे उधर टहला करते। हमें क्या मालूम था कि यह तट गुप्त और प्रकट खतरनाक चट्टानोंसे भरा है और कोई नाविक इनके योजनों पास तक आनेकी हिम्मत नहीं करता। हम लकड़ी काटने दूर तक चले जाते और पहाड़ियोंके शिखरपर चढ़कर चारों ओर नज़र दौड़ाते, किन्तु कहींसे कोई आशाकी झलक नहीं दिखलाई देती। हमें यह संतोष ज़रूर था कि हम पल्लीके उपयोगी व्यक्ति हैं। सिंह वर्मा और वासन्ती पति-पत्नी थे, इसलिए उनकी अपनी झोपड़ी तैयार हो गई, लेकिन मैं अविवाहित था। पल्लीके निवासियोंके धर्मके अनुसार अविवाहित तरुण-तरुणियोंकेलिए अलग झोपड़ी थी, और काफी बड़ी थी। दिनभर हम काममें जाते शामको खाना खानेके बाद अखाड़ेमें देर तक नाच-गान होता। मैंने उनके कई गाने सीख लिये थे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। फिर हमारे सोनेकेलिए यही कुटिया थी। लड़के-लड़कियोंकेलिए इतना ही अंतर था कि कुटियाके एक ओर लड़कियाँ सोतीं और दूसरी ओर लड़के। सात-आठ वर्षसे चौबीस-पच्चीस वर्षके बीससे ऊपरके लड़के और लड़कियोंका

यह सम्मिलित शयन-गृह था। उनके एक-दूसरेसे मिलनेमें कोई बाधा नहीं थी। कुटियाके भीतर तो लड़के ही नहीं लड़कियाँ भी अक्सर पूर्णतया नग्न रहती थीं। इस अवस्थाको मैं कभी-कभी पाटलिपुत्रके अंतःपुरसे तुलना करता था, कितना भारी अंतर था? यहाँ पाटलिपुत्रके नर-नारियोंका सारा समय कामुकता (और उससे भी वीभत्स रूपमें)की बातें सोचने-कहने-करनेके सिवा उनके पास कोई काम न था। और यहाँ किसीका उधर ध्यान भी नहीं जाता था। इसका यह अर्थ नहीं कि वहाँ तरुण तरुणियोंमें किसीका किसीके प्रति आकर्षण नहीं था। आकर्षण उतना ही था जितना कि एक स्वस्थ मानव का भोजनके प्रति। वह सारे दिन भोजनकी ही कथा लिये नहीं बैठा रहता। मैं सोचता था, ऐसा क्यों है? पहिला उत्तर तो मुझे यह सूझा कि यहाँकी कुमारी उतनी परतंत्र नहीं। किसी तरुणको अपना प्रेमी बनाना उसके हाथमें है। न वहाँ माँकी ओरसे बाधा है न बापकी ओरसे, न गाँवकी ओरसे। तरुण बलात् प्रेमी बननेका खयाल भी नहीं कर सकता। तरुणके पास प्रलोभन पेश करनेकेलिए न कोई प्रासाद है, न दास-दासी, न यान-शिविका और न वस्त्र-आभूषण। तरुणी उसके घरमें दूसरेकी कमाई खानेकेलिए नहीं आ रही है, वह काम करनेमें पुरुषसे कम नहीं है। फिर क्या चीज़ है कि तरुण-तरुणी एक-दूसरेके प्रति आकृष्ट होते हैं? वह है स्वास्थ्य, सौन्दर्य्य, कार्य-निपुणता और गीत-नृत्यका कौशल। बल्कि नृत्य तो स्वास्थ्य बनानेका एक बड़ा साधन है। नृत्य एक मनोरंजक व्यायाम है। मल्लोंके दूसरे व्यायामोंमें आदमीका मन ऊब सकता है, लेकिन बंशी और मांदल (मानर)के मनोरम स्वर, तरुण-तरुणियोंके मधुर-कण्ठसे निकले मादक गीतोंके साथ याम-याम भर सारे गात्रका निक्षेप,—संचालन कभी अपनी सरलताको नहीं छोड़ता। पल्लीमें मैंने किसी पुरुषको नहीं देखा जो क्षीण-कटि, विशाल-वक्ष और वृषभ-स्कंध न हो। उनके शरीरपर चर्बी नहीं पुष्ट पेशी दिखाई पड़ती थी। स्त्रियाँ भी गोल-मटोल नहीं पुष्ट नस-पेशियों वाली, सिद्धहस्त यवन कलाकारकी गढ़ी श्यामा मूर्त्ति-सी दिखलाई पड़तीं।

कुमार-कुमारियोंकी कुटीका मैं सर्वमान्य नेता था। पल्लीके बड़े अखाड़े में जब नाच-गाना नहीं होता तो हम अपने अखाड़ेमें नाच करते। रोज़-रोज़ नाच

करनेसे जब दिल उकता जाता, तो मैं उन्हें मनोरंजक कहानियाँ सुनाता। मैंने इस वक्त कुलूपा दादीके मुँहसे सुनी कहानियोंका खूब उपयोग किया। ज्ञान-विज्ञानसे भरी हुई कहानियोंके सुनते ही उनको नींद आने लगती, लेकिन जब मैं राक्षसों, अप्सराओं, देवताओंकी मनोरंजक कहानियाँ सुनाता, तो वह बहुत प्रसन्न होकर सुनते, सोनेकेलिए मुझे एक तरहकी ज़बर्दस्ती करनी पड़ती थी। प्रेम और वीरता दो ही तरहकी कहानियाँ तरुणोंको सबसे ज्यादा पसन्द आती थीं, बच्चे भय और भूतोंकी कहानियाँ भी पसंद करते थे, और भयसे निर्भय करनेवाली कहानियाँभी। मैं एक दिन अरियों और दोल्फ़ीकी कहानी सुना रहा था—अरियो अपने देशका सर्वश्रेष्ठ गायक था, उसके मधुर-कण्ठके सामने कोकिलका स्वर फीका था। उसकी बंशीकी तानसे पशु-पक्षी तक झूमने लगते थे (तारवाले वाद्यसे अपरिचित होनेके कारण उनके सामने मैंने अरियोंको तंत्रीवादक नहीं बंशीवादकके तौरपर पेश किया) वह बहुत ही सुन्दर गीत जोड़ता था, जिसके शब्दोंको सुनकर रूठे प्रेमियोंके हृदय पिघल जाते थे। एक बार किसी दूसरे टापूमें नृत्य-गीत-वाद्यका महोत्सव था। अरियों वहाँ गया, और किसी बातकेलिए नहीं केवल अपने और अपनी पत्नीके गौरव-को बढ़ानेकेलिए। वहाँ उसने अपने वाद्य—अपनी बंशी और अपने संगीतसे लोगोंको मोह लिया।

धनके इनामकी बात समझाना मुझे मुश्किल मालूम हुआ, क्योंकि मैंने उनके पास सोने-पत्थरका धन देखा नहीं, मैंने अरियोंकी कथाको तिथोनूँ-की कथामें बदल दिया. और कथाको जारी रखते हुए कहा—"अरियों लोगों-की प्रशंसासे प्रसन्न नहीं हुआ, जब देखा कि सुन्दरी दोल्फ़ीने उसकेलिए प्रशंसाके एक भी शब्द नहीं कहे। उसके पक्व-जंबू-फल जैसे चमकते श्याम शरीरकी कांति, उसके दीर्घ कृष्ण-कुन्तल, उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंको अरियों बड़े ध्यानसे देख रहा था, और उन्हींको अपने छन्दोंमें बनाकर वह तन्मय हो गा रहा था। उस सुन्दरीके मुखको बन्द देखकर उसका मन उदास हो गया, उसकी आँखें धूमिल पड़ गईं। उसकी बंशी हाथसे छूट गई।

"अखाड़ा बरखास्त हुआ, अरियों अपने ठहरनेके स्थानपर गया, उसने देश जानेका भी नाम नहीं लिया। वह बीमार पड़ गया। धीरे-धीरे उसका

मुँह मुरझाने लगा। बंशीको मुँहमें लगानेमें उसे साँपका भय होता था। जिन लोगोंने उसकी उस दिन प्रशंसा की थी उनमेंसे हरेक उसके पास आया—नर और नारी दोनों। अरियोंकी आँखें बहुत भीतर धँस गई थीं, वह आँखें मूँदे रहता था, लेकिन जब कोई नया आदमी आता तो वह उसकी ओर आँख खोलकर देख लेता। गाँवके सब लोग आये, लेकिन वह तरुणी नहीं आई, जिसने अरियोंको बीमार बनाया था। अरियोंके बचनेकी आशा नहीं थी। उस तरुणीके सामने किसीने कहा। आखिर वह भी अरियोंके पास पहुँची। अरियों हड्डी और चमड़ेका ढाँचा-भर रह गया था। लेकिन जब उसने तरुणीको सामने देखा, तो उसकी आँखें चमक उठीं, उसके सूखे गालोंपर खुशी दौड़ आई और फिर उसने सदाकेलिए आँख मूँद ली।"

श्यामा सुन्दरी भी कुमारी होनेके कारण अभी कुटियाकी रहनेवाली थी। वह दूसरोंसे अधिक बोलती थी और आठ-नौ महीनोंमें मुझे भाषा सिखला देनेमें सबसे अधिक हाथ उसीका था। वह म्लान-मुख हो बोल उठी—"ऐसी तरुणी वही होगी जिसका हृदय पत्थरका होगा।"

मैंने कहा—"किसीका क्या पता ? कोमल शरीरके भीतर जैसे पत्थर-की हड्डी छिपी हुई है, उसी तरह शायद हृदयकी जगह भी पत्थर हो।"

भाभी अब अपनी सहेली श्यामा सुन्दरीकी तरह ही रहती थी। दोनों सौन्दर्य-की साकार मूर्त्ति थीं, जान पड़ता था कि एक श्वेत मर्मरकी मूर्त्ति और दूसरी कृष्ण मर्मरकी। एक दिन हम पासकी पहाड़ीपर लकड़ी काटने गये। महीनेका पता लगानेकेलिए हमारे पास कोई साधन नहीं था। लेकिन रातको चंद्रमाके पास रहनेवाले नक्षत्रसे कुछ-कुछ पता लगानेकी कोशिश मैं किया करता था। वह वसंत जैसा कोई महीना था। चारों ओर रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। हम लकड़ी काट चुके थे और उस वनमें प्रकृतिका आनन्द और विश्राम लेनेके लिए एक वृक्षके नीचे बैठ गए थे। सिंहके दिलमें कुछ ख्याल आया। वह जाकर फूल चुनने लगा, मैंने भी मदद की। लौटकर सिंहने कहा—"आज मैं भट्टारिका ! तुम्हारा फूलोंसे शृङ्गार करना चाहता हूँ।"

"और मैं कहूँगा भाभी ! कि जो कृत्रिम फूलोंसे चित्रको उतना सुन्दर सजा सकता है वह स्वाभाविक फूलोंसे और भी कौशल दिखलायेगा।"

भाभीने मुस्कुराते हुए कहा—"तो वन-कुसुमोंका शृङ्गार होगा ?"

"हाँ मेरी वनदेवी।

"और मेरी इच्छा हो रही है कि जब यह वनदेवी सज जाय तो, इसकी मैं एक मूर्त्ति बना दूँ।"

"मूर्त्ति ? मुझे भी जय कभी-कभी अपनी तूलिका याद आती है, डर लगता है कहीं भूल न जाऊँ"—सिंहने कहा।

"मुझे तो और भी डर लगता है, लेकिन मेरा काम तुमसे सरल है सिंह भैया ! मैंने लोहेकी दो-तीन छिन्नियाँ तैयार कर ली हैं, और पत्थर यहाँ आस-पास हैं ही।"

"तब फिर ?" भाभी मेरी ओर देखने लगी ?"

"तब फिर क्या चाहिए।

"भाभीकी आज्ञा।"

"मानो सुह्म नगरमें वह चित्र बनानेमें तुमने भाभीकी आज्ञा ली थी !"

"उस वक्त भाभी नहीं थी।"

भाभी बीच हीमें बोल उठी—"तुम किस चित्रकी बात कर रहे हो, ज़रा मुझे भी तो बतलाओ।"

"अरे ! वही जो मैंने तुम्हारे दो चित्र बनाये थे, जिनमेंसे एकको कहा था वास्तविक और दूसरेको कहा था काल्पनिक।"

"तो फिर ?"

"वास्तविक चित्र था तुम्हारे देवरके हाथका बनाया हुआ और काल्पनिक था मेरा।"

"और आप बन गए थे दोनोंके चित्रकार ?"

"क्योंकि, मुझे जयकी आज्ञा माननी थी।"

"अब समझी ! लेकिन देवर ! तुम किस चीज़की आज्ञा चाहते हो ?"

"यह, वनदेवीको पत्थरपर उतारना चाहता हूँ।"

"लेकिन मुझे उज़ुर होगा जय !"

"उज़ुर क्या भैया ?"

"यही कि तुम कहीं वनदेवीको भी पत्थर न बना दो। तुम्हारा क्या? पल्लीमें जाकर कह दिया कि हमारी भाभी जड़ी-बूटी छूकर पत्थर हो गई, तो लोग वैसा ही विश्वास करने लगेंगे।"

"लेकिन मैं जो सजीव मौजूद रहूँगी।"

"जयका क्या है, कह देगा, यह वह नहीं दूसरी है।"

"तो भी तुम तो घाटेमें नहीं रहोगे।"

"मैं घाटेमें नहीं रहूँगा, लेकिन तुम ज़रूर घाटेमें रहोगी। जानती हो? इस पोशाकमें वह तुम्हारे एक-एक अंगको पत्थरपर उतार देगा फिर अभी तो तुमने बरस-छः महीनेकेलिए यह भाँगका अन्तरवासक धारण किया है, अब वह हो जायगा अनंतकालकेलिए!"

"मेरी भी सुनो भाभी! यह ठीक है, वनदेवीको मैं इसी रूपमें उतारूँगा, यही फूलोंसे गुँथे हुए भ्रमर-श्यामल-चिकुर, यही कर्ण-पूर-शून्य अनुपम श्रवण शष्कुली, यही सुघड़ कपोल, यही कंबु-कंठ, यही लता-बाहु....."

"यही उन्नत श्रीफल-सदृश उरोज, यही क्षीण कटि, यही मोटे भंग वस्त्रके नीचे ढँके ऊरु-कदली—सब कुछ कह डालो। जान पड़ता है, भाभीको जब-तब तुम्हें देखनेसे तृप्ति नहीं होती और अब उसके नग्न सौन्दर्यको एकटक देखना और अनन्त काल तक दूसरोंको दिखलाना चाहते हो।"

"मुझे तो इसमें कोई दोष नहीं मालूम होता।"

"यदि भाभी-देवर राज़ी तो मैं कौन हूँ पाजी!"

"मैं पाजीको भी पास उत्कीर्ण करना चाहता हूँ भैया! और कौन समझेगा कि इस काले पाषाणमें उत्कीर्ण प्रतिमा किसकी है?"

"मैं इस शर्त्तपर माननेकेलिए तैयार हूँ कि पासमें तुम अपनेको भी उत्कीर्ण करो।"

"लेकिन मैं अपनेको खुद कैसे देख सकता हूँ?"

"पानीमें देखकर।"—भाभीने कहा।

"भाभीकी आज्ञाको पालन करनेकी मैं कोशिश करूँगा और लोग समझेंगे कि राम, लक्ष्मण, सीताने इसी जंगलमें बनवास किया था।"

मैं सामने बैठाकर भी सीधे पत्थरमें मूर्त्ति खोदने लगता तो भी शायद

सफल हो जाता; लेकिन चार-चार महीने तक वहाँ बैठाये रखना और फिर दूसरे दर्शकोंको निमंत्रित करना मैंने अच्छा नहीं समझा। मैंने पहले मिट्टीकी प्रतिमाएँ बनाईं और फिर जब-जब समय मिलता तब-तब अपनी छेनी और कुल्हाड़ेको लेकर यहाँ चला जाता।

भाभीकी मूर्त्ति बन चुकी थी और भैयाके कटिके नीचेका भाग रह गया था, उस वक्त, एक दिन देखा, झाड़ीकी आड़मे दो आँखें झाँक रही हैं। मेरी नज़र पड़ते ही आँखें हटना चाहती थीं, किन्तु वह मेरी परिचित आँखें थीं; मैंने आवाज़ दी—"श्यामा!" उत्तर मिला—"हाँ"।

मैंने उसे बुला लिया। श्यामा कई दिनोंसे यह जाननेकी फ़िकरमें थी कि मैं रोज़ कहाँ चला जाता हूँ। आख़िर उसने मेरा रहस्य ढूँढ़ ही निकाला। श्यामा देर तक भाभीके रूपको देखती रही, मैंने पूछा—"यह कौन है?"

"वासन्ती बहन, किन्तु रंग तो वैसा नहीं है।"

"रंग मैं नहीं बना सकता श्यामा! मैं केवल रूप बना सकता हूँ। रंग बना सकता तो मैं देवता बन जाता। लेकिन, तुमने और किसीको तो नहीं बतलाया?"

"नहीं, मैंने किसीको नहीं बतलाया। अकेले मन नहीं लगता था, इस-लिए मैं तुम्हें ढूँढ़ रही थी।"

"और अब मैं मिल गया। अब क्या चाहती हो?"

"देखना चाहती हूँ. कि कैसे तुम पत्थरसे आदमी बनाते हो।"

"पत्थरसे आदमी नहीं, आदमीसे पत्थर; जब आदमी नहीं रहेगा तब भी यह पत्थर रहेगा। श्यामा! यदि मैं तुम्हें भी यहाँ बना दूँ तो कैसा?"

"मुझे भी बना दोगे, लेकिन मैं तो श्यामा हूँ"

"यह पत्थर भी श्याम है, इसलिए तुम्हारी मूर्त्ति और भी ठीक उत-रेगी। लेकिन तुम्हें फिर रोज़ यहाँ आना होगा।"

श्यामा रोज़ मेरे साथ आती। मैंने उसे सीधे देखकर पहिले रेखाएँ अङ्कित की, फिर उतार-चढ़ावको आँकना शुरू किया। श्यामाको मैं रोज़ देखता, किन्तु जान पड़ता है, रोज़ देखनेपर भी मैं पहिले उसके सौन्दर्यको अधूरा ही देख सका था। मैं श्यामाके मुखको देखकर पत्थरकी ओर लग जाता, लेकिन

श्यामा निरंतर मेरे चेहरेकी ओर देखा करती। श्यामाकी आँखें बनाते वक्त कुछ अपनी सफलता और बहुत कुछ उसके सौन्दर्यने मुझे अपने वशमें नहीं रखा। मैंने कहा—"श्यामा! तुम्हारे नेत्र बहुत सुन्दर हैं।"

"मैं उन्हें नहीं देख सकती।"

"और मैं देख सकता हूँ और वह बड़ी सुन्दर हैं! मैं उन्हें चूमना चाहता हूँ!"

उसने अपने नेत्रोंको मेरे मुँहके पास कर दिया। मैंने उन्हें चूम लिया। उसने भी मेरी आँखोंको चूमते हुए कहा—"जय! तुम कितने सुन्दर हो। कितने दिनोंसे मैं तुम्हें चाहती थी।"

"लेकिन तुमने कभी कहा नहीं श्यामा?"

"हमारी पल्लीमें लड़कियाँ नहीं कहा करतीं।"

"तो मैंने अपराध किया।"

"ऐसे भी लड़के होते हैं जो कहनेमें झिझकते हैं।"

"अब मैं नहीं झिझकूँगा।"

मैंने सिंह और भाभीको यह कहकर आनेसे रोक दिया था कि जब तीनों मूर्त्तियाँ बन जायँ, तभी तुम्हें देखनेकेलिए बुलाऊँगा। लेकिन इस बीचमें श्यामा और मेरी इतनी घनिष्ठता बढ़ गई कि भाभीसे वह छिप नहीं सकती थी। एक दिन उन्होंने कहा, "देवर! मुझे प्रसन्नता होगी, यदि मैं देवरानी देख सकूँगी।"

"यहाँ इस पल्लीमें देवरानी देखनेका तुम्हें क्यों ख्याल आया भाभी?"

"क्योंकि मैं देवरको प्रसन्न देखना चाहती हूँ, आजकल देवर बड़ा प्रसन्न है।"

"क्या कभी अपने देवरको अप्रसन्न भी देखा था?"

"अप्रसन्न तो नहीं देखा था, सदा प्रसन्न ही देखा था। किन्तु अब वह पहिलेसे भी अधिक प्रसन्न है। और, मैंने एक देवरानी भी ढूँढ़ निकाली है।"

"तुम्हींको ढूँढ़ निकालना होगा, नहीं तो जानती हो न देवरानी और जेठानीका महाभारत?"

"वह पाटलिपुत्रकी देवरानी-जेठानियाँ होंगी, सुह्म नगरकी देवरानी-जेठानियाँ होगी। मैंने चुनी है ऐसी जो मुझे पसंद है, और मेरे देवरको भी।"

"मतलब ?"

"मतलब यह है कि अब तुम्हें धनकुटिया छोड़नी होगी और यहाँ हमारी झोंपड़ीकी बगलमें घर बनाना होगा।"

"घर-गिरस्ती। लेकिन तुम्हें यह भी पता है भाभी ! कि हम दूसरी जातिके लोगोंमें रह रहे हैं। यह काले हैं किंतु दास नहीं हैं। किसी मानवको भी ये अपनेसे बड़ा माननेकेलिए तैयार नहीं हैं। इसलिए ये जो कुछ करेंगे अपने मनकी करेंगे।"

"इसकी पर्वाह मत करो देवर ! मैंने श्यामाकी माँको भी राज़ी कर लिया है और मेरी सहेलियाँ गाँवकी सारी तरुणियाँ तो विवाह-नृत्यकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"लेकिन फ़ैसला तो केवल स्त्रियोंके हाथमें नहीं है !"

"श्यामाका बाप और बूढ़ा पल्ली-ज्येष्ठक सहमत है ? तुम्हारी तरुण-मंडली-से तो पूछना ही नहीं है।"

"तो फिर क्या सलाह है ?"

"बस अबकी पूर्णचंद्रको।"

पल्लीवासियोंको कभी गौर-वर्णोंसे वास्ता नहीं पड़ा था, जहाँ तक बूढ़ों और उनके पिताओं तकका संबंध है; लेकिन उनके हृदयके अंतस्तलमें कुछ दुराव ज़रूर मालूम होता था। जंगलमें, दूर-दूरपर बीच-बीचमें श्याम वर्णोंकी पल्लियाँ हैं, तो भी उनका आपसमें संपर्क होता ही रहता है। जान पड़ता है एक दूसरेसे सुनते-सुनते गौर वर्णोंके दोष इनके कानोंमें भी कुछ पड़े थे। सौभाग्य था, हम ऐसे श्याम वर्णोंकी पल्लियोंमें नहीं उतरे, जो गौरवर्णोंकी सीमापर बसती हों, नहीं तो हमारा दूसरी तरह स्वागत हुआ होता।

ग्राम-ज्येष्ठक और सारे नर-नारियोंने उस दिन बड़ा उत्सव मनाया, जिस दिन हम दोनोंने लोगोंके सामने उद्घोषित किया कि अब हम नारी-पुरुष हैं। उस दिन पल्लीके सभी लोगोंमें बड़ा उत्साह था। सारी रात पान और नृत्य होता रहा।

विवाहित दम्पतीकेलिए अलग झोपड़ी बनानेमें पल्लीके सारे लोग मदद करते हैं, और उसमें सिर्फ़ एक दिन लगता है। हमारी झोपड़ी सिंह वर्माके बग़लमें बनी। श्यामा और हम पति-पत्नीकी तरह उसमें प्रविष्ट हुए। भाभीने मज़ाक करते हुए कहा—"यदि हम किसी नगरमें होते, तो नववधूके कौतुकागारमें देवरके भेजनेका काम मुझे मिलता।"

"लेकिन भाभी—" मैंने कहा—"यहाँ तो तुमने सारे विवाहका ही अधिकार अपने हाथमें ले लिया।"

"हमारे नगरोंके विवाहमें और ही प्रकारका आनंद आता है।"

"और हम देवर-भाभी दोनों उस आनंदसे वंचित रहे! तुम्हारा विवाह समुद्रने कराया और मेरा इन ताड़के पत्तोंने। लेकिन मैं समझता हूँ कि नागरिक विवाहसे यहाँ प्रेम या आनन्दकी मात्रा कम तो नहीं है। बल्कि यहाँका प्रेम मुझे अधिक मधुर मालूम होता है, यह निरावरण अकृत्रिम प्रेम है। अनेक नागरिकाओंने मुझे प्रलोभित करना चाहा, किन्तु उनका प्रेम-तन्तु मुझे बहुत क्षीण दिखलाई पड़ा और यहाँ देखो, तुम्हारी श्यामा। उसने कभी वे नागरिक हाव-भाव नहीं दिखलाये। उसके स्वच्छ नेत्रोंमें एक सरल प्रेम था, उसके मंदस्मित मुखमें एक मधुर आकर्षण था, वह मुझे आकृष्ट करनेमें सफल हुई।"

"और देवर! तुम भी उसे आकृष्ट करनेमें सफल हुए। वह तुम्हारे ऊपर कितना जान देती है।"

"मैं समझता हूँ भाभी! हमारे यहाँके जीवनमें जो विषमता मनुष्य-मनुष्यके बीच, स्त्री-पुरुषके बीच, जाति-जातिके बीच, और वर्ग-वर्गके बीच आ गई है, यदि वह न होती तो हमारे यहाँका जीवन भी अधिक शुद्ध होता।"

"तो तुम चाहते हो कि मैं सुह्म नगरमें भी इसी तरह अर्धनग्न रहती और तुम दोनों दिगंबर?"

"नहीं भाभी! मैं यह नहीं चाहता कि हमने जो ज्ञान अर्जित किया है, जो कला सीखी है, उसे भूल जायँ। मूर्त्ति, चित्र, काव्य कितनी आनन्द-दायक कलाएँ हैं! प्रासाद, गृह, कूप, तड़ाग, कुल्या (नहर) आदिके निर्माण-की कला, मनुष्य जीवनके कितनी उपयोगी चीज़ोंको प्रदान करती है! ग्रन्थ

और लेखन-कलाने पचासों पीढ़ियोंके अनुभव और अर्जित ज्ञानको हमारे लिए सुलभ बना दिया है। इन सबको भूलनेका मतलब है, प्रौढ़ावस्थामें लौट-कर अबोध, असहाय बालक बनना। लेकिन हमारी इस पल्लीके निवासी उसी अबोध असहाय अवस्थामें हैं? और मैं इस अबोध असहाय अवस्थाको पसंद नहीं करता। इनके जीवनके मधुर अंशको मैं पसंद करता हूँ। यह कैसे आपसमें निष्कपट भावसे मिलते हैं, कैसे एक दूसरेकी सहायता करनेको तैयार रहते हैं? सब सुख-दुखके साझी हैं। कोई बड़ा नहीं. कोई छोटा नहीं, सब एक परिवारके मालूम होते हैं।"

"मैं इसे पसंद करती हूँ। एक तरफ़से हमारा ज्ञान-विज्ञान, हमारी कला, हमारी दूसरी सुख-सामग्री आती और दूसरी तरफ़ यह निष्कपट जीवन।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि इनकी अबोधता, असहायताको हटानेके लिए, हमें कला-विज्ञान सिखलाना पड़ेगा और कला-विज्ञान सीखकर क्या यह संभव नहीं कि यह भी उसी तरहके बन जायँ, जैसे हम नागरिक लोग हैं?"

"यह बिल्कुल संभव है। लेकिन जैसे सम्मिलित शासनके कारण हमारे गणतंत्रोंमें राजा, रनिवास और उसके सामंतोंके सामने सिर रगड़ना, अपमानित होना और उनके आनन्दकेलिए लाखों दीनार प्रजाके मुखसे छीनकर लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, उसी तरह यदि हम अपनी खेती, बाग़-बग़ीचे, शिल्प-व्यापारको साझेमें करते, तो धनी-ग़रीबका भेद होने नहीं पाता। दूसरे-की कमाई लूटकर दूसरोंको ग़रीब बना कोई धनी नहीं बनता।"

"लेकिन देवर जय! हमने तो सुना है न कि धनी-ग़रीब सदासे चले आए हैं?"

"मगधमें भी लोग कहते हैं कि राजा सदासे चला आया है; लेकिन आठ ही सौ वर्ष पहले वैशालीमें लिच्छिवियोंका बलिष्ठ राज्य था, जहाँ कोई राजा नहीं था, लोग पंचायतसे अपना राज्य चलाते थे।"

"तो धर्म-पुण्य, तीर्थ-व्रत करनेसे आदमी धनवान् रूपवान् होता है, यह बात झूठ हुई?"

"झूठ है इसमें सन्देह नहीं; जिन जिन ग्रन्थोंमें यह लिखा है, उनके लेखक या तो धनवानोंकी कुटिलताको समझते नहीं थे, या उनके लाभकेलिए यह, बातें लिख गये। यहीं पल्लीमें देखो, क्या यहाँ कोई धनवान् बन सकता है ! इनके पास खेत हैं, लेकिन खेत सारी पल्लीका है। उसकी ओरसे लोगोंको जोतनेको मिलता है। यदि कोई काम करनेपर भी अपने घरमें खाने भरकेलिए नहीं ला सकता, तो पड़ोसीके पासका अन्न उसकेलिए मौजूद है।"

"जो तुम कह रहे हो देवर ! वैसा होता तो बड़ा अच्छा होता। मैं यहाँ-के जीवनको देखती हूँ, तो बहुत-सी बातोंमे उसे स्वच्छन्द और आनन्ददायक पाती हूँ, लेकिन यह अबोध असहाय अवस्था मुझे अच्छी नहीं लगती।"

"मैं भी तुमसे सहमत हूँ।"

× × ×

साल भर बाद पल्लीकी भाषा हम अच्छी तरहसे समझने और बोलने लगे थे। लोगोंकी ही तरह उनकी भाषा भी बहुत सरल है। यह जाननेकी बहुत कोशिश करते थे, कि हम कहाँ हैं; लेकिन जो नाम वह बतलाते थे, उन्हें हमने न ग्रन्थोंमें पढ़ा था, न किसीसे सुना था। लोहा ही एक ऐसी चीज़ थी, जिसे वह कहीं दूसरी जगहसे लाते थे। लेकिन जिन लोगोंसे वह लेते थे, वह भी श्यामवर्ण थे। उनसे पूछनेपर भी वह अपने ही जैसे आदमियोंको लोहा लानेवाला बतलाते थे। जहाज़ोंके टूटनेपर कभी-कभी उन्होंने गौरवर्ण मानव-शव भी देखे थे, मगर ऐसा अवसर उन्हें बहुत कम मिला था। गाँवके वृद्धतम भी अपने जीवनमें पहिली बार हमारे पोतके शवोंको देख पाये थे। हमें कभी इसका पता भी लग सकेगा कि हम कौन-सी जगह हैं, इसके बारेमें हम निराश होते जा रहे थे। कभी-कभी हम आपसमें विचार करते, कि मैं या सिंह लोहा बेचनेवालोंका संग पकड़कर उसके उद्गम स्थानपर पहुँचें; लेकिन इसमें सन्देह था कि एक बार बिछुड़नेपर तीनों एक संग हो सकेंगे। हम सभी एक साथ चलें, तो यह पल्लीवालोंकेलिए दुखकी बात थी, खासकर श्यामाकेलिए तो और भी, लेकिन यह छोड़ हमें कोई रास्ता नहीं दिखलाई पड़ रहा था।

(११)

फिर नागरिकोंकी दुनियामें

कभी कभी पुराने जीवनका ख्याल ज़रूर आता, किन्तु वैसे हमारा जीवन बड़े आनन्दसे बीत रहा था। मैं और सिंह मछलीके शिकारमें या खेतोंपर काम करने जाते थे। वासंती और श्यामा पल्लीमें काम करतीं। वासंतीने भाँगका कपड़ा बुनना सीख लिया था। और अपनी पहिले सीखी हुई कलाका प्रयोग करके वह उसमें फूल-पत्ते और हंस-मिथुन भी बनाती। श्यामा और कई तरुणियोंने भी उससे यह काम सीखा। जब हम कामसे निवृत्त होते, तो कितने ही और तरुणोंकी जोड़ी हमारे साथ जंगल या समुद्र-तटकी ओर निकलती। हम कभी अपनी प्रेमिकाओंको फूलसे और कभी छोटी-छोटी शंख और सीपकी मालाओंसे सजाते। मेरी वशी मेरे साथ ज़रूर रहती। मुझे अब भाषाकी दिक्क़त बिल्कुल नहीं थी। मैंने संस्कृत और मागधीके बहुतसे सरस काव्योंका आनन्द लिया था। उन भाषाओंकी अपेक्षा इस भाषामें बहुत कम शब्द और धातु थे, वाक्योंका निर्माण टेढ़ा-मेढ़ा नहीं सरल था। लेकिन जान पड़ता है, मनुष्यकी अन्तर्वेदनाओंको प्रकट करनेकेलिए सरलसे सरल भाषा भी पर्याप्त है। जब कोई तरुण किसी बीती कहानीको, किसी अज्ञात कविके बाँधे छन्दोंको तन्मय होकर गाता, तो आँसुओंको रोकना मुश्किल हो जाता। कोई तरुण समुद्रमें मछली मारने गया था। तूफ़ानमें उसका छोटा काष्ठ—जो कि नावकी तरह इस्तेमाल होता था—भीतरकी ओर बढ़ चला। तरुणके चेहरेपर भयका कोई चिह्न नहीं था; लेकिन रह-रहकर उसे कोई ख्याल विकल कर देता था। इसी भावको किसी अज्ञात कविने छन्दोंमें जोड़ दिया था—"सागर! मैं मृत्युसे नहीं डरता। वायु देवता! यह न समझ कि तुम्हारे कोपसे विकल हो मैं आँसू बहाने लगूँगा। लेकिन मुझे उसकेलिए ज़रूर पीड़ा हो रही है, जो जाल कंधेपर रखे घर लौटे तरुणोंसे पूछेगी—मेरा मछुवा कहाँ है? मेरा प्रिय कहाँ है? कोई उसे जवाब नहीं दे सकेगा, फिर समुद्र! वह तुम्हारे तटपर आएगी, उसकी दृष्टि तुम्हारे ऊपर-नीचे उठती हरी-नीली लहरोंपर पड़ेगी, फिर वह अपने क्रंदनसे अपने हृदयको विदीर्ण करती तुम्हें भी सुखसे सोने न देगी।"

लेकिन इस सुखी जीवनका एकाएक अन्त आया। हमें हफ्ते-दो हफ़्ते भी पहले सूचना नहीं मिली कि हम अपनेको तैयार कर लेते। एक दिन संध्या-समय पाँच अपरिचित-से श्यामवर्ण पल्लीकी ओर आते दिखाई पड़े। उनके शरीरपर भी वही भाँगकी लँगोटी, उनके सिरपर भी वही रंग-बिरंगे पंख, उनके हाथोंमें भाला, धनुष और पीठपर तूणीर था। लोग ध्यानसे उनकी तरफ़ देख रहे थे। श्यामा मेरी गोदमें सिर रखे लेटी थी। मैं उसके कपोलोंपर अपनी अंगुलियोंसे स्पर्श कर रहा था। उसकी आँखोंसे हँसीकी किरणें फूट रही थीं। हम आगेके सपने देख रहे थे। श्यामा आपन्नसत्त्वा थी। मैं कह रहा था, पुत्री होगी और श्यामा कह रही थी—"तुम्हारे ही जैसा पुत्र, जय!" इसी समय लोगोंको कुछ ज़ोर-ज़ोरसे बातें करते देख मेरा ध्यान भंग हो गया और मैं भी उधर देखने लगा जिधरसे वे पाँचों आदमी आ रहे थे। लोग आशंकित नहीं थे, क्योंकि आजके लोगोंके होशके पहलेकी बात है, जब पड़ोसकी पल्लीसे बार-बार युद्ध होता था। और युद्ध करना होता तो सिर्फ़ पाँच आदमी क्यों आते? पाँचोंमें जो आगे-आगे था, उसके सिरपर ज़्यादा पंख सजाये हुए थे। उसने गाँवके पहले आदमीसे कुछ पूछा और उसके साथ साथ वे पल्ली-ज्येष्ठकके द्वारपर पहुँचे। पहिले ज्येष्ठक और कुछ प्रमुख आदमियोंके साथ ही बात होती रही, किन्तु फिर हम दोनोंको छोड़ सभी पुरुष बुला लिए गये। यद्यपि ऐसा हमारे साथ कभी बर्त्ताव नहीं हुआ था, तो भी हमें किसी अनिष्टकी आशंका नहीं थी। देर तक अपने भविष्यकी दुनियाके ताने-बाने बुनते हम दोनों सो गये थे। जान पड़ता है, अभी नींद कच्ची थी जब कि आवाज़ सुनकर मेरी नींद टूट गई। तीनों तरुण थे, जो मेरे घनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने बाहर चलनेकेलिए कहा। हम जाकर एक जगह बैठ गये। वह एक निष्ठुर सन्देशको सुना रहे थे, तो भी मैं देख रहा था, उन तरुणोंका हृदय कितना रो रहा है। उन्होंने बतलाया कि ये पाँचो जने उत्तर दिशामें रहनेवाले हमारी जातिकी ओरसे भेजे गये हैं। उन्होंने उत्तरके सारे श्याम वर्णोंकी ओरसे हमें ख़बर दी है कि उत्तरके गौरवर्ण सर्दारने हमारी जाति पर आक्रमण कर दिया है। गौरवर्ण हमारी पल्लियोंको जला पुरुषोंको मार रहे हैं, वह स्त्री-बच्चोंको पकड़कर ले जा रहे हैं। सारी श्यामवर्ण जाति गोरोंसे लड़ रही है। हमें पता लगा कि तुम्हारी

पल्लीमें कुछ गौरवर्ण रहते हैं; उन्हें अपनी पल्लीसे निकाल दो, नहीं तो सारी श्यामवर्ण जाति तुम्हारी पल्लीको अपने शत्रुओंका मित्र समझेगी।

सारी पल्लीके लोगोंका हमारे साथ ऐसा स्नेह हो गया था कि कोई इस बातको सुनकर खिन्न हुए बिना नहीं रह सका। तरुणोंने रुक-रुककर बीच-बीचमें अपनी वेदनाको प्रकट करते हुए यह बात मुझे बतलाई। उन्होंने कहा कि तुम दोनोंको पल्ली-ज्येष्ठक बुला रहे हैं, सिर्फ़ अन्तिम निर्णय सुनानेकेलिए; क्योंकि हमारी पल्ली सारी श्यामवर्ण जातिके विरुद्ध नहीं जा सकती। मैंने सिंहके पैरको पकड़कर उठाया, उसने वासन्तीको, फिर मैंने उनके सामने बड़े खिन्न मनसे सारी बातें बतलाईं। वासन्तीको चलनेकेलिए तैयार रहनेको कहा। हम दोनों पल्ली-ज्येष्ठकके पास गये। पल्लीके कुछ वृद्ध तथा बाहरसे आये हुए पाँचों आदमी वहाँ मौजूद थे। आगन्तुकोंका परिचय पल्ली-ज्येष्ठकने कराया, फिर आगन्तुकोंके मुखियाने कहा—"तरुण! तुम दोनोंके बारेमें हमने इस पल्लीमें जो कुछ सुना है उससे हमें विश्वास हो गया कि तुम भले गौरवर्ण हो, यद्यपि यह अनहोनी-सी बात है। गौरवर्ण और भलमनसी दोनोंका एक साथ होना बिल्कुल असंभव है। गौरवर्ण दूसरेका धन छीनते हैं, दूसरेका जंगल छीनते हैं, दूसरेके स्त्री-बच्चोंको पशु बनानेकेलिए पकड़ ले जाते हैं। वह झूठ बोलते हैं, देवताओंका भय नहीं खाते। वह पापी होते हैं, सारा पुण्य धुल गया है, इसीलिए, उनका शरीर वह गोरा (सफ़ेद) होता है। लेकिन तुम निर्दोष हो, तुम उन गौरवर्णों जैसे नहीं हो। तो भी, तुम तीनोंके अच्छे होनेपर भी हम क्या कर सकते हैं! उत्तरमें लाखोंकी संख्यामें गौरवर्ण हमारे लोगोंको मार रहे हैं, हमारा सर्वनाश कर रहे हैं। उन्होंने श्यामवर्णोंको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की है, फिर श्यामवर्ण कैसे चुप रह सकते हैं। हमने यहाँ पल्लीके लोगोंसे तुम्हारे बारेमें सारी बातें सुनीं। सबको दुःख है। हमको भी दुख है, किंतु हम इतना ही कर सकते हैं कि तुम्हें दक्षिणकी ओर गौरवर्णोंके देशमें जानेकी इज़ाजत दे दें। एक पल्लीसे दूसरी पल्लीमें तुम्हें रास्ता दिखानेवाला मिलता जायगा। तुम दक्षिणकी तरफ़ जाना, समुद्रसे बहुत दूर न हटना, फिर तुम ज़रूर गौरवर्णोंके देशमें चले जाओगे। दक्षिणके श्यामवर्णोंतक अभी उत्तरके युद्धकी ख़बर नहीं पहुँची है, इसलिए तुम्हारेलिए संकटकी संभावना

नहीं है। अभी अपनी स्त्रीको साथ ले जाओ, तुम्हारे साथ जानेकेलिए आदमी तैयार हैं।"

मेरेलिए यह मृत्यु-दण्डके फ़ैसलेसे कम नहीं था, सिंह भी बहुत खिन्न था। लेकिन दूसरा चारा नहीं था। हमने उनके हृदयको पाया और अपने हृदयको दिया; किन्तु हम गौरचर्मको श्याम नहीं बना सकते थे। वासन्ती उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा कर रही थी। वह पैरोंकी धमक सुनते ही कपड़ोंकी पोटली लिये बाहर चली आई।

मैं एक बार अपनी झोपड़ीके द्वारपर जानेसे अपनेको रोक नहीं सका। चाँद अभी-अभी दो घड़ीकेलिए निकला था। उसकी क्षीण किरणें श्यामाके मुखपर पड़ रही थीं। मैं उसकी मुख-रेखाओंको नहीं देख सकता था। वह निश्चिन्त सोई थी। उसके श्वासकी धीमी ध्वनि मेरे कानोंमें पहुँच रही थी। शायद उसके चेहरेपर हँसीकी रेखा थी। शायद वह सपना देख रही थी, वे ही सीधे-साधे स्वप्न, जिनको हम साथ मिलकर देखा करते थे। अन्तिम चुम्बनकेलिए पैरोंको आगे बढ़नेसे मैंने रोका, अब कुछ भी करना मेरी शक्तिसे बाहर था। वह जग जाती, फिर मेरे साथ जानेकेलिए अड़ जाती, लेकिन सारी श्याम-वर्ण जाति इस वक्त उसके हृदयकी वेदनाका ख्याल नहीं कर सकती थी। शायद, हम दोनों अपने प्रेमकेलिए अन्तिम बलिदान करते, लेकिन हम दोनों-को क्या अधिकार है कि अपने दो प्राण सम मित्रोंको भी वैसा करनेकेलिए मज़बूर करें? हमें क्या अधिकार कि आनेवालेको सूर्यके प्रकाशमें आनेसे पहिले नष्ट कर दें। मैंने मन ही मन कहा—"श्यामा! सरल मधुर श्यामा! अन्तिम विदाईका यह मानस चुम्बन है। तुम्हें छोड़ रहा हूँ किन्तु तुम्हारी स्मृति मेरे साथ रहेगी।"

ताड़की एक छोटी-सी सूखी पत्ती हाथमेंलिए हमारा पथ-प्रदर्शक आगे-आगे चल रहा था। हमारे पास कपड़ोंकी पोटलीके अतिरिक्त कुछ सूखी-भुनी मछलियाँ तथा चावल था, दो धनुष और कितने ही बाण भी थे, छिन्नियाँ और एक छुरी भी मेरे साथ चल रही थीं। सूर्योदय तक हम एक योजन चले आये थे। हम बहुत ही गम्भीर और उदास थे। किन्तु हमारे साथियोंको मित्रोंके वियोगके साथ-साथ अपनी जातिके नये बन्धुओंसे मिलनेकी आशा थी। वह मेरे चित्तको

"गति क्या हुई होती ? कलाकारकी आँखोंको नग्न सौन्दर्य अच्छा लगता है !"

"भाभी ! क्या तुम भी भैयाकी बातसे सहमत हो ?"

"जहाँ दोनोंका विरोध हो, वहाँ मैं देवरकी बातको अधिक पसन्द करती हूँ ।"

"हाँ देवरके सामने पतिकी क्या चल सकती है !"

"अब मुझे देवरको भी सँभालना है ।" फिर उसने मेरी ओर मुख करके कहा—

"यह लोग अबोध और असहाय हैं, किन्तु दीनता नहीं जानते । इनका स्वभाव कितना सरल, बर्ताव कितना मधुर था । वहाँ रहते वक्त तो मुझे अपना देश याद आया करता था, किन्तु अब इनकी मधुर स्मृतियाँ जीवन भर याद आती रहेंगी ।"

मुझे श्यामा याद आने लगी । इस वक्त वह कितनी खिन्न होगी ! कौन उसको ढाढ़स बँधाता होगा ? शायद, उसके स्वजन कहते होंगे कि वह कहीं गये हैं, थोड़े ही दिनोंमें आ जाएँगे । किन्तु, क्या वह इसपर विश्वास करेगी ? सिंहने मेरे ध्यानको भंग करते हुए कहा—"जय ! चलो चलें, यह बिल्कुल नया देश है, हमें दिन छिपनेसे पहिले ही वहाँ पहुँच जाना चाहिए ।"

हम दिन छिपनेसे बहुत पहिले गाँवमें पहुँच गये । हमारे वेषमें अन्तर था, और उससे भी अन्तर डाल रही थी हम दोनोंकी दाढ़ियाँ । मैंने दो-एक आदमियोंसे बात करनेकी कोशिश की, किन्तु देखा वह मेरी बात नहीं समझते । सिंहने कहा—"मैं भी इनकी बात नहीं समझ रहा हूँ किन्तु एकाध शब्द आन्ध्र भाषाके-से मालूम होते हैं ।" हमने एक ऊँचा-सा सौध देखा, जो नज़दीक जानेपर एक देवालय मालूम हुआ । पुजारीसे जिस वक्त मैंने बात शुरू की उस वक्त मेरा हृदय संदिग्ध था । उसके कंधेपर यद्यपि जनेऊ लटक रहा था, किन्तु उसका रंग मेरी श्यामासे थोड़ा ही अन्तर रखता था । पुजारीने मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया, जो यद्यपि शुद्ध मागधी भाषामें नहीं था, किन्तु संस्कृत और मागधीकी मददसे मैं उसे समझ गया ! पुजारीकी बातसे मालूम हुआ कि हम कलिंग देशके एक नगरमें हैं, पीछे जो अरण्य छूटा है, वह शबरोंकी

अटवी है। यहाँसे दन्तपुर (पलूर) बहुत दूर नहीं है। ठहरनेकेलिए उसने पास हीमें एक पांथ-शाला दिखला दी है।

जान पड़ता था, सचमुच ही हम एक दूसरे लोकसे नर-लोकमें आ गये हैं। यहाँ फिर हमें झूठ-साँच, छल-कपट, कृत्रिम सौजन्य सामने दिखलाई पड़ने लगा, और कुटिल मार्गपर सावधानीसे चलनेकेलिए हृदयके सारे स्नायु तनने लगे। हमारे पास सौ दीनार थे, इसलिए हमें खर्चकी कोई चिन्ता नहीं थी। दन्तपुरका नाम मैं सुन चुका था, वहाँ तथागतकी दन्तधातु है, इसलिए यह आसानीसे समझ सकता था कि वहाँ बौद्ध भिक्षु भी काफ़ी होंगे; जिनके मिलनेका मतलब है देश-विदेशकी बहुत-सी खबरोंका पाना। पता लग गया कि मार्गमें कोई ख़तरा नहीं है और यात्री आते-जाते हैं। गाँवमें एक पण्य वीथी भी थी, जो ऐसे गाँवकेलिए ज़रूरतसे बड़ी मालूम होती थी। कई दूकानों में तो सिर्फ़ लोहेकी चीज़ें ज़्यादा थीं। उनमें भी कुल्हाड़-कुल्हाड़ा, भाला और बाणके फल ही अधिक थे। हमने दो तलवारें खरीदीं, कुछ नये कपड़े लिये, पीने और पकानेकेलिए दो-तीन बर्त्तन भी। इस काममें पुजारीने सहायता की। हमारेलिए खाना बनानेका जिम्मा ले उसने हमें भोजनकी ओर से निश्चिंत कर दिया। हमने मांस, चावल और दूसरी खानेकी चीज़ोंकेलिए उसे पण (पैसा) दे दिया।

पुजारीसे हमें देशके बारेमें बहुतसी बातें मालूम हुईं। कलिंग देशकी राजधानी पिष्ठपुर (पिठापुर) यहाँसे बहुत दूर है। वहाँका राजा महेन्द्र कुछ साल पहिले मर गया, नया राजा भी अच्छा है। देशके अधिकांश लोग दूसरी भाषा बोलते हैं, किन्तु राजकुल, ब्राह्मणों और कितने ही दूसरे संभ्रान्त घरोंमें मागधी जैसी एक भाषा बोली जाती है। मैंने इस भाषाको उस पुरानी मागधी के नज़दीक पाया, जिसमें लिखे जातकोंको आचार्य वसुबंधुने एक बार दिया था और जिसमें लिखे कितने ही सूत्र (बुद्ध-उपदेश) मैंने महाबोधि (बोधगया) के सिंहल-विहारमें देखा था। मैं उसे शुद्ध नहीं बोल सकता था, लेकिन देख रहा था कि मेरी भाषाको लोग समझ लेते थे, यदि मैं शब्दोंमें थोड़ा तोड़-फोड़ कर देता हूँ। पुजारीकी पत्नी वासंतीकी तरह गोरी थी। वासन्तीसे वह जल्दी ही हिलमिल गई। सभी ब्राह्मणियोंकी तरह वह भी दोनों भाषाओंको

जानती थी। वासंतीने उससे पूछा—"बहन! तुम्हारे पति श्यामल क्यों हैं?"

"कहते हैं कि यहाँकी धूप बहुत खराब है। पुरुषोंको धूपमें ज्यादा रहना पड़ता है, इसलिए उनका शरीर श्यामल हो जाता है।"

भाभीने मुस्कुराते हुए भोलीभाली ब्राह्मणीकी बात मुझे सुनाई, मैंने पूछा—"और भाभी! तुम्हारी राय क्या है?"

"धूपसे शरीर लाल होता है, वह कुछ ताम्र वर्ण हो सकता है लेकिन गोरा रंग साँवला नहीं हो सकता।"

"ठीक कहती हो, उत्तरके ब्राह्मणोंकी तरह यह भी अपनी रक्त-शुद्धताका दावा करते हैं। उत्तरमें श्याम वर्ण लोग कम हैं और गौर वर्ण ज्यादा, इसलिए वहाँ वर्ण-मिश्रण उसीके अनुसार कम पाया जाता है। श्याम वर्णोंके इस जंगलमें गौर वर्ण बहुत कम हैं, इसलिए इनपर रंग ज्यादा चढ़ गया है।"

"लेकिन ब्राह्मण तो हमारे देशकी तरह यहाँ भी दूसरोंके साथ ब्याह नहीं करते।"

"ब्याह नहीं करते, लेकिन दूसरे वर्णोंकी स्त्रियोंको रख तो सकते हैं।"

"रख सकते हैं, लेकिन उनकी संतान ब्राह्मणी नहीं होगी।"

हाँ, पिताके वीर्यमें यह हो सकता है लेकिन ब्राह्मणीके क्षेत्र में?"

"ब्राह्मणीके क्षेत्रमें क्या?"

"आखिर ब्राह्मणोंके घरमें भी श्यामवर्ण दास और कमकर होते हैं, सुस्त, निर्बल, तुंदिल ब्राह्मणोंसे विरक्त उनकी ब्राह्मणियाँ कभी दासों—कमकरोंकी ओर भी नज़र दौड़ा सकती हैं, क्या यह संभव नहीं है?"

"बहुत संभव है, मैं भी अपने नगरके दो-तीन ब्राह्मण घरोंके बारेमें जानती हूँ।"

"बस, यही समझो कि यह पुजारी उसी तरहका ब्राह्मण है। इसके बारेमें ज्यादासे ज्यादा यही कहा जा सकता है, कि माँकी ओरसे यह ज़रूर ब्राह्मण है।"

मुझे यह बहुत बुरा लगा कि राजाकी ओरसे जो आज्ञापत्र यहाँ निकलते

हैं, उनमें कलिंगकी भाषा नहीं रहती। आखिर जो पत्र लोगोंके लिए लिखा जाता है, लोगोंको उसके द्वारा शासन या आज्ञा दी जाती है, ऐसी भाषामें क्यों लिखा जाता है, जिसे लोग समझें ही नहीं। परमभट्टारकके भी ताम्र-शासन शिला-लेख संस्कृतमें होते हैं, लेकिन लोगोंकी भाषा उसके इतनी नज़दीक है कि वह कुछ समझ भी लेते हैं। तो भी मैं उसे भी पसंद नहीं करता था। हमारे यौधेय गणके एकाध पुरस्कृतोंने संस्कृतमें शिलालेख लिखवाये हैं, लेकिन रोज़के कार-बारमें उसका उपयोग नहीं किया जाता। यहाँके लोगोंकी ऐसी भाषा है कि वह संस्कृत या पुरानी मागधीको बिल्कुल नहीं समझ पाते; तो भी राजा, पुरोहित और सामन्त—जो कि उत्तरसे आये हैं—यहाँ अपनी भाषाको लोगोंके ऊपर लादना चाहते हैं। मैंने पीछे दन्तपुरमें देखा कि कितने ही शुद्ध कलिंग लोग अपने घरोंमें संस्कृत-मागधी बोलनेकी कोशिश करते हैं, अपने स्त्रियों-बच्चोंसे कलिंगी भाषा छुड़वाना चाहते हैं। कितने ही तो अपनेको कलिंग कहनेमें भी शरमाते हैं; वह अपनेको मगध, काशी, कोसल, पांचालसे आया बतलाते हैं। पराये मुल्कसे आये राजाको स्वीकार करनेसे ऐसा ही होता है, लेकिन अफ़सोस तो यह है कि खुद यहाँके साधारण लोग भी उत्तरसे आये वंशहीको राजा बननेके योग्य मानते हैं।

दो दिन चलनेके बाद हम दन्तपुर पहुँचे। समुद्रके किनारे यह एक अच्छा बड़ा नगर है। हम दन्त-विहारसे संबद्ध एक पांथ-शालामें ठहरे। तीनों तीन धर्मके माननेवाले थे। सिंह वर्मा या उसका वंश, ब्राह्मणों और शिवके अनुयायी थे। वासंती अर्हत् (जिन-) भक्तोंके घरमें पैदा हुई थी और मेरा कुल कई पीढ़ियोंका बौद्ध था। पल्ली-निवाससे पहिले शायद अपने धर्मका कुछ पक्षपात रहा हो, लेकिन अब तो हम सभी समझते थे कि मानव जातिके अवस्था-क्रमके अनुसार धर्म भी बदलते आये हैं। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन ये तीनों धर्म तो बहुत पीछे आये। पहिले-पहल जब मैंने वासंतीसे कहा कि मरकरके जन्म लेनेकी बात झूठ है; उस समय उसे कुछ आश्चर्य हुआ। लेकिन शबरपल्लीके निवासके समय उसने खुद देखा कि मरके पैदा होनेवाला सिद्धान्त स्वाभाविक नहीं है, उसे बचपनसे ही रटा-रटाकर बच्चोंके दिलमें डाला जाता है। शबरोंको इसका कुछ पता नहीं था। जब उसने मुझसे यह कहा,

तो मैंने उसे बतलाया—"यदि शबर इस सिद्धान्तको मान लें, तो उन्हें आसानीसे राजाओंका गुलाम बनाया जा सकता है। फिर वह धनुष उठा मर जानेकेलिए इतने उतावले न होंगे, समझेंगे चलो पूर्वजन्मके फलसे कोई राजा होता है कोई प्रजा। कोई धनी होता है तो कोई गरीब।"

स्वतंत्र शबरोंके संपर्कमें आकर मेरे तर्क-वितर्कसे भी ज्यादा आसानीसे वह इस बातको समझ गई। अब हमारेलिए तीनों ही धर्म एकसे थे। तीनों ही धर्म पुनर्जन्म मानते हैं, इसलिए तीनों ही मानवकी दासता और मनुष्य द्वारा मनुष्यके उत्पीड़नको मानते हैं।

उस दिन हम "दन्त-विहार"के भीतर दन्तु-धातुका दर्शन करने गये। यहाँ दूर-दूरसे लोग दर्शन करनेकेलिए आते हैं। किसी समय जो तथागतके शरीरका एक अङ्ग रहा हो, उसका दर्शन कौन बौद्ध नहीं करना चाहेगा? विशाल मन्दिर पत्थरोंसे बना है, जिसमें शिल्पियोंने अपने कौशलको सुन्दर रीतिसे दिखाया था। कनिष्क-विहार जैसी विशालता तथा उतने हीरा-मोती तो यहाँ नहीं थे; किन्तु तो भी भक्तोंने, खासकर सागर-सार्थवाहोंने मुक्त हाथसे लक्ष्मीको लुटाया है। पचासों विशाल स्वर्णदीप हैं, जिनमें घीकी बत्ती दिन-रात जला करती है। एक-एक दीप इतने भारी हैं कि मज़बूत आदमी ही उठा सकता है। मैंने उनपर उत्कीर्ण लेखोंको पढ़ा। दाताओंमें कितने ही द्वीपांतर-वासी भी थे, लेकिन वह अधिकतर समुद्रके पासवाले देशोंके सागर-वणिक थे। दाँत एकके भीतर एक, बहुत-सी सुवर्ण-रजत मंजूषाओंके अन्दर रखा था। मंजूषाओंके ऊपर तरह-तरहके रत्न-जटित थे। दन्त-धातुको महीने-के खास-खास दिन दिखलाया जाता है। उस वक्त भक्त लोग हाथ जोड़े खड़े थे, भिक्षुने मंजूषाओंको अलगकर अन्तिम मंजूषामें रखे दन्त-धातुको लोगोंके सामने किया। मैं देखते ही स्तब्ध हो गया। वहाँ तो कुछ नहीं बोला, लेकिन अपने स्थानपर आकर मैं बहुत उत्तेजित हो कहने लगा—

"यह धर्मवाले कहाँ तक पतित हो सकते हैं! जान पड़ता है, इसकी कोई सीमा नहीं है।"

वासंतीने मुस्कराते हुये कहा—"यह कौन-सी नई बात तुम्हारे मुँहसे नकल रही है देवर!"

"पुरानी बात सही, लेकिन भाभी ! देखा तुमने इस दन्त-धातुको ?"

"देखा रत्न जटित सुवर्ण-मंजूषामें कितना सुन्दर मालूम होता था।"

"रत्न-जटित सुवर्ण-मंजूषा झूठको भी जगमगा देती है, आदमीकी आँखों-को चकाचौंध कर देती है।"

"चतुर शिल्पीकी अद्‌भुत कारीगरीकी प्रशंसा करनी चाहिए जय !"—सिंहने कहा।

"चतुर शिल्पीके शिल्प-नैपुण्यकी दाद देना मैं पसन्द करता हूँ। लेकिन झूठेके झूठकी दाद देना नहीं।"

"झूठकी कौन-सी बात आई ?"

"तो भैया ! तुम कोरे कलाकार ही रहे ?"

"ठीक कहा देवर ! मैं भी यही कहा करती हूँ।"

"बात भी तो सुनो, अभी पहिलेसे ही देवर-भाभीका सम्मिलित आक्रमण क्यों शुरू हो गया ? 'मैं भी कहती हूँ' बोल उठी, किन्तु समझा भी, जय किस बातको लेकर कह रहा ?"

मैं बीच हीमें बोल उठा—

"और कुछ नहीं भैया ! जिस दाँतका मुण्डकोंने दर्शन कराया, वह आदमीका दाँत कभी हो नहीं सकता।"

भाभी आँख फाड़-फाड़कर मेरी ओर देखने लगी—

"देवर ! तुम्हारी बातको सुन-सुनकर मेरे दिलमें तथागतके प्रति श्रद्धा होने लगी थी।"

"श्रद्धाके हटानेकी ज़रूरत नहीं है भाभी ! लेकिन, मैं तथागतके नामसे प्रसिद्ध सभी बातोंको नहीं मानता। उनमेंसे बहुत-सी तो झूठे ही उनके मत्थे मढ़ी गई हैं। निर्वाण और पुनर्जन्म जैसी बातें हो सकती हैं, तथागत भी मानते हों मगर वह तीर्थंकरकी तरह अपनेको सर्व-दर्शन, सर्व-दर्शावी, सर्वज्ञ नहीं मानते। लेकिन यहाँ तथागतके प्रति श्रद्धा-अश्रद्धाकी बात नहीं है, यह तो धर्मके व्यापारियोंका कूट-वाणिज्य है, जिसने किसी हाथीके दाँत या दूसरी हड्डीको किसी अनाड़ी दन्तकारको देकर आदमीके दाढ़ (दंष्ट्रा, दन्त) की नक़ल करवानी चाही। किसी अच्छे दन्तकारको दिये होते, तो वह जराजीर्ण

दन्तकी अच्छी नक़ल उतार सकता था। लेकिन इतना ही नहीं, देखा नहीं कितना मोटा वह दाँत था? इतना बड़ा दाँत तो चार दाढ़ोंको गलाकर भी नहीं बनाया जा सकता।"

"अब समझमें बात आई देवर! मैं घरमें सुना करती थी कि बुद्धका दर्शन (सिद्धान्त) सम्यक् दर्शन नहीं है, बौद्धोंका रास्ता पुण्यका रास्ता नहीं है; इसीलिए मेरी धारणा कुछ और ही बन गई थी; लेकिन, तुम्हारे मुँहसे जब-तब बुद्धकी बातें मैंने सुनी, तो उनका यह फल हुआ कि मैंने दन्त-धातुकी आज बड़ी श्रद्धासे वन्दना की थी। लेकिन तुमने मेरी श्रद्धापर भारी प्रहार किया।"

"सुना जय! बस यह स्त्रियाँ अन्धी लताएँ हैं।"

"'किसी वृक्षपर डाल दो, बस बेचारी वैसी ही पड़ी रहेंगी'—यही कहना चाहते हो न भैया! तुम्हारी भी बारी आएगी किसी दिन।"

वासन्तीके कपोलोंको आरक्त होते देख सिंहने उसके कण्ठमें हाथ डालकर छातीसे लगा लिया और उसके चिबुकको अँगुलियोंसे दबाते हुए कहा—"नहीं भट्टारिका! तुम यदि लता हो तो सिंह वृक्ष है। लता वृक्षसे अधिक स्वतन्त्र नहीं है।"

"ठीक कहा भैया! जो अपने पैरोंपर खड़ी भी न हो सके उससे बढ़कर दुनियामें कौन स्वतंत्र हो सकता है? लेकिन मैं कहूँगा कि मेरी भाभी वैसी लता नहीं है। लेकिन भाभी! तुमने मुँह लाल क्यों किया? जानती नहीं हो, भैयाके हाथमें जैसी निपुणतासे तूलिका चल सकती है, मुँहमें जीभ वैसी नहीं चल सकती। बेचारा भैया! अपनी भट्टारिकासे कहना चाहता है कुछ, और निकल आता है कुछ। भैया भट्टारक! एक बात मैं कहूँ? परिहासमें सहयोग न देना, यह तो मित्र-धर्मके विरुद्ध है, लेकिन परिहासके एक-एक शब्दको बहुत तोलना पड़ता है, सो भी जौहरीकी तुलासे भी बहुत बारीक तुलामें रखकर।"

"जय! तू ग़ज़बका आदमी है। तू न हो तो तेरी भाभी हमेशा मूषक-मार्जार बननेकेलिए तैयार हो जायँ।"

"सुना भाभी! कौन है मूषक, कौन है मार्जार?"

भाभी हँस पड़ी। भैयाने उसे अपने कपोलसे लगा लिया।

"लो मैं बतलाता हूँ, मार्जार हैं ये दुनियाके ठगनेवाले, जिनके फन्दोंका

कोई ठिकाना नहीं है। इनकी पण्यशालाएँ सब जगह सब रूपमें खुली हुई हैं। शिवालय, जिनालय, सुगतालय, नृपालय, वणिकालय, कहाँ-कहाँ तक गिनाऊँ और बेचारा बहुजन—साधारण जनता—मूसा है।"

दन्तपुरमें हम कई दिन रह गये। भैयाने नई तूलिका, नये पट खरीदे, नये रंग बनाये। मैंने भी छिन्नी और हथौड़ी ली। लेकिन हम अभी काम शुरू नहीं करना चाहते थे, कामकेलिए मजबूर भी नहीं थे।

एक दिन मैं प्रदोष (संध्या)के समय समुद्रके तटसे लौट रहा था। रास्तेमें एक घरके भीतर बहुत ही सुन्दर वीणा बज रही थी। बहुत दिनोंके बाद सुननेसे स्वर मुझे बहुत मधुर लगा। मैं अलिंदके खंभेसे सटकर खड़ा हो गया। एकके बाद एक गत बजती रही, मालूम नहीं कितनी देर तक मैं वहाँ खड़ा रहा! मैं आस-पासकी सब सुध-बुध भूल गया था, मेरा ध्यान तब टूटा, जब किसी नारी-कण्ठकी आवाज़ मेरे कानोंमें आई—"आर्य! यदि कष्ट न हो, तो कुछ क्षण भीतर बैठकर वीणा-वादिनीके श्रमको कृतार्थ करें।"

मैं उसकी मधुर-स्वर-लहरीके आप्यायनसे अपनेको उपकृत-सा समझने लगा था, इसलिए मैं चुपचाप उसके पीछे हो लिया। वह दीपक दिखलाते मुझे भीतर चतुःशालामें ले गई। नीचे तूल-गर्भित विष्टर था, जिसके ऊपर तीन बड़े बड़े उपधान थे। एक कोनेमें पीतलकी दीप-यष्टिपर पञ्चमुख दीप जल रहा था। सुगन्धसे जान पड़ता था, उसमें शायद अगरका योग है। एक तकियेके सहारे एक तरुणी बैठी थी, जो मेरे जानेके साथ ही खड़ी हो गई और लीलापूर्वक अपनी दसों कोमल उँगुलियोंको वंकितकर वंदना करते हुए बोली। "आर्य! आस्यताम्।"

मैं बैठ गया। तरुणी कौन है इसके बारेमें मैं कोई निश्चय नहीं कर पाया। वह बहुत सुन्दरी नहीं थी, किन्तु कुरूपा भी नहीं कह सकता। उसके शरीरपर बहुत कम अलंकार, आभूषण थे, लेकिन वह ज्यादा सुन्दर लगते थे। कण्ठमें एक सुवर्ण-सूत्र, कानोंमें एक छोटा-सा कर्णपूर, हाथोंमें एक पतला-सा कंकण और वेणीमें दो-चार फूल थे। आयु बीस सालके आस-पास होगी। वह कौन है, सोचनेकेलिए भी मेरे पास समय न था, क्योंकि शिष्टाचार मुझे मजबूर कर रहा था कि तरुणीके वाद्य-कलाकी प्रशंसा करूँ। मैंने

कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"भद्रे ! क्षमा करना, मुझे तुम्हारी वीणाका स्वर बहुत मधुर लगा, इसलिए अनामंत्रित तुम्हारे द्वारपर खड़ा हो गया और तुमने अपने सौजन्यसे मुझे दर्शन देनेका सौभाग्य प्रदान किया। इस कष्टका कारण मैं हूँ।"

"कष्ट नहीं आर्य ! मैं कृतज्ञ हूँ जो आप यहाँ पधारे।"

"बहुत दिनों बाद मैंने इतनी सुन्दर वीणा सुनी; पाटलिपुत्र छोड़नेके बाद यह पहिला अवसर है जब मैंने वीणापर इतनी कुशल उँगुलियोंको चलते देखा।"

"आर्य ! पाटलिपुत्रके निवासी हैं।"

"निवासी क्या, अब तो सूखा पत्ता हूँ, हाँ किसी वक्त था।"

"यह वीणाकी गत पाटलिपुत्र हीमें मैंने सीखी। मैं पिष्टपुरके कुमारकी परिचारिका होकर गई थी। मेरा संगीतकी ओर प्रेम देखकर उन्होंने उत्साहित किया था।" यह कहते तरुणीके मुखसे आह निकल आई। मैंने सांत्वना देते हुए कहा—

"भद्रे ! किसी बातको स्मरण करके तुम्हें कष्ट हो रहा है। मैं कष्ट देना नहीं चाहता।"

"यह कष्ट मुझे जीवन भर बर्दाश्त करना पड़ेगा आर्य ! पिताके बाद उन्हींको सिंहासन मिलना चाहिए था, लेकिन हर राजाके मरनेपर पहिले राजांगण भाइयोंके खूनसे रँगा जाता है तब सिंहासनकी बात आती है। मेरे कुमार उसीमें वलि हुए। आर्य ! आपने सूखे तिनकेकी बात कही, लेकिन वह आपके ऊपर नहीं घटती, वह इस दासीके ऊपर घटती है। मैं सूखा तिनका बन गई। मैं अपनी दुःख-गाथा कहकर आपको दुखित करना नहीं चहती, अवसर देंगे तो फिर कभी सुनाऊँगी। इस वक्त आपका अतिथ्य-आराधन संगीतके सिवा और किससे मैं कर सकती हूँ।"

"यह सबसे अधिक प्रिय वस्तु है मेरेलिए।"

तरुणीने वीणाको बाएँ अंकमें रखा और फिर उसने तारोंको छेड़ना शुरू किया, अबकी उसने वीणाके साथ गाया भी। मानव-इतिहासमें न जाने

कितनी बार करुण घटनाएँ कितने ही मनुष्योंके जीवनमें आईं और उन्हें चतुर मालाकारकी तरह ज्ञात-अज्ञात कवियोंने कितनी ही तरह सजाया। वह ऐसा कोई गीत था, उसके कण्ठ-स्वरकी तरंगित कोमलता मानो उसी गीतकेलिए बनाई गई थी। उसकी वीणामें अपार वेदना थी। मुझे जान पड़ा, कि यह तरुणी कण्ठ और तंत्रीसे उस तरह व्यक्त न होती यदि वह उसके हृदयसे न निकलती। गीत समाप्त करते हुए तरुणीने मुझे प्रशंसाका अवसर दिये बिना कहा—

"आर्य ! आप भी संगीतके प्रेमी जान पड़ते हैं। यदि कष्ट न हो तो मैं भी सुनना चाहती हूँ। मुझे पाटलिपुत्रके संगीतको सुने बहुत दिन हो गये।"

शबर-पल्लीसे मैं अभी-अभी बाहर आया था, इसलिए अभी पूरी तौरसे कृत्रिम शिष्टाचारको अपना न पाया था। मैंने सरल भावसे कह दिया —

"प्रेम तो है, उससे मैं कैसे इन्कार कर सकता हूँ, किन्तु संगीत छूटे बहुत दिन हुए, तो भी एक द्विपदी सुनाऊँगा।" यह कहकर वीणा मैंने अपने हाथमें ले ली और वसन्तकी द्विपदी सुनाई। क्या बात है, आनन्द तो समागम-में होता है, लेकिन समागमका गीत उतना मधुर नहीं लगता, जितना विरहका! बल्कि विरह भी जितना ही वह लम्बा हो उतनी ही उसमें मिठास होती है। चिर-विरही, अनन्त-विरहीके प्रति श्रोताकी सहानुभूति भी अनन्त होती है। मैं देख रहा था, मेरे विरह-गीतको सुनते वक्त तरुणीके नेत्र अनेक बार गीले हो गए।

गीतसमाप्तिके बाद उसने मेरे चरणोंमें अपनी अंजलिको रखकर कहा—"आर्य ! फले वृक्ष विनम्र हो जाते हैं, महापुरुष अपने महत्वको प्रकाशित नहीं करते। दासीने जब बाहरके खंभेके साथ खड़े पुरुषकी बात कही, तो मैं उपेक्षा नहीं कर सकती थी। कौन जानता है, रास्तेमें घूमती मूर्तियोंमें किस-किस तरहके गुण हों। मैंने समझा था, कोई संगीतका प्रेमी है, मेरे घरके बाहर अँधेरेमें खड़ा सुन रहा है। नज़दीकसे सुनानेमें मेरा कुछ नहीं बिगड़ता, इसलिए मैंने आपको बुलाया। आपके संभ्रान्त मुख-मण्डल और विनीत वेषको देखकर मेरा भाव कुछ और बढ़ा, किन्तु मुझे यह आशा नहीं थी कि आप इतने बड़े कलाकार हैं।"

"सुन्दरी ! यदि मैं कहूँ कि तुम अयोग्य स्थानपर अपने प्रशंसाके पुष्पोंको विकीर्ण कर रही हो, तो तुम्हारे भावोंको न समझते, उसपर आघात करनेका दोषी होना पड़ेगा। वीणासे मेरा प्रेम रहा है, संगीतसे भी। यह यौवन-सुलभ स्नेह है। किन्तु तुम जानती हो, पाटलिपुत्रमें कलाकार किसे कहते हैं, बड़े कलाकारकी तो बात ही क्या है।"

तरुणीने कुछ और जानना चाहा। मैंने इतना ही बतलाया, हम तीनों दन्त-धातुके दर्शनकेलिए आये हैं और दन्त-विहारके पासकी पांथशालामें ठहरे हैं। मैंने यह भी कहा कि मेरा भाई एक चतुर चित्रकार है। बिदाई लेते वक्त तरुणीने कहा--

"आर्य ! मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ कि आपका दर्शन बार-बार मिले। यदि आप मुझे उसका पात्र समझें, तो इस घरको अपना समझें। लेकिन, चन्द्रमाको कलंकित करना बड़े कठोर हृदयका काम है. आप निष्कलंक हैं। मैं सूखी पत्ती-सी, एक असहाय रमणी हूँ, जिसे अनिच्छासे भी रूपाजीवा बननेके सिवाय दुनियामें कोई ठौर नहीं लगा। फिर मैं किस मुंहसे कह सकती हूँ कि आप मुझे फिर दर्शन दें। मैं खुद ही आपके पास आती, लेकिन मैं उसका भी अधिकार नहीं रखती।"

मैं उठनेवाला रहा था लेकिन तरुणीके मुखसे ऐसे शब्दको सुनकर फिर मैं उपधानके सहारे बैठ गया। उसके चेहरेपर उदासीकी रेखा छा आई थी, वह हट-सी गई। मैंने कहा—

"भद्रे ! मैं किसीको कलंकित या अपराधी इसलिए नहीं कह सकता कि लोग उसे ऐसा समझते हैं। मुझे तुम्हारी जातिकी इस अवस्थाका कोई ज्ञान नहीं, लेकिन तुमने पहिले ही मेरी सूखे पत्तेवाली बातको अपने ऊपर लगाकर आह भरी थी। तुम ठीक कहती हो, असली सूखा पत्ता पुरुष नहीं स्त्री ही हो सकती है। स्त्री पुरुषके हाथकी गुड़िया है। वह जब चाहता है उसको सजाता है, जब चाहता है पटक देता है।"

"कुमारके रहते वक्त आर्य ! मैंने इस तथ्यको नहीं समझा था। कुमार राजकुमार थे, इसलिए राजकुलोंकी बहुत-सी बातोंसे वह मुक्त कैसे हो सकते थे; तो भी उनमें विशेषता थी, भट्टारिकासे उनका अपार स्नेह था। मैं कुमार-

भट्टारिकाकी कृपा-भाजन थी। कुमार गये भट्टारिकाने प्राणोत्सर्ग किया। मैंने चाहा, कोई दूसरा आश्रय लूँ, लेकिन कुमारके परिजनकी होनेके कारण पिष्ट-पुरमें कोई मेरा विश्वास करनेकेलिए तैयार नहीं था। मेरे सामने विस्तृत दुनिया थी, लेकिन मेरेलिए वह सूनी थी। मैं यदि राजकुलमें न गई होती, मैंने यदि उसके रीति-रिवाजको न सीखा होता, यदि कलाने मेरे हृदयके साथ हाथों और शरीरको भी कोमल न कर दिया होता, तो संभव है, मैं किसी घरमें साधारण परिचारिका बन जाती; उस वक्त मान-अपमानका भी खयाल न आता। राजान्तःपुरमें भी परिचारिकाकेलिए मान-अपमान कोई चीज़ नहीं है, लेकिन वह उतना असह्य नहीं होता।"

"क्योंकि वह अपमान भट्टारक और भट्टारिका, भर्तृदारक और भर्तृदारिका-की ओरसे मिलता है।"

"हाँ, जो देवताओंकी तरह शाप और अनुग्रह दोनोंकेलिए पूरी शक्ति रखते हैं। नागरिक वंचक होते हैं, यह मैं अन्तःपुरके कुछ अनुभवोंसे जानती हूँ। लेकिन दूसरोंके अनुभवोंसे लाभ उठानेवाले बहुत कम होते हैं। जिस वक्त मैं नगरोद्यानकी पुष्करिणीके घाटपर उदास बैठी भविष्यकी चिन्तामें लगी थी, उसी समय एक भद्रवेषी तरुण नागरिक मेरे पास आया। उसके चेहरेके देखनेसे मालूम होता था, उसके हृदयमें मेरे प्रति सहानुभूति है। उसने बहुत सी मीठी-मीठी बातें की। मैं क्या जानती थी कि उसके शब्द हृदयसे नहीं निकल रहे हैं। उसने कहा, यदि तुम चाहो तो जितने दिन तक कोई और प्रबन्ध नहीं होता, मैं तुम्हारे रहनेका प्रबन्ध करता हूँ। उसने पिष्टपुरके बाहर अपने उद्यानमें मुझे रखा। मैंने कृतज्ञता प्रकट करनेकेलिए संगीतसे उसकी सेवा की। उसने प्रणयका अभिनय किया। मैंने समझा, इस तरह अस-हाय उड़ती-फिरनेसे अच्छा है एकका आश्रय ग्रहण कर लेना। लेकिन जहाँ उसने एक बार मेरी लजाको अपने हाथोंमें पा लिया, समझ लिया कि मैं सर्वथा उसके अधीन हूँ—आधीनता वस्त्रकेलिए, खानेकेलिए, कपड़ेके लिए, घरकी छायाकेलिए, वैसे ही उसका रुख बदल गया; वह मेरे साथ क्रीतदासी जैसा बर्ताव करने लगा। पहिले कटु वचन, फिर गाली, अन्तमें हाथ छोड़ने लगा। इतनेसे भी उसे सन्तोष नहीं होता, यदि मैं विरोध प्रकट करती, तो

वह डंडोंसे बातें करता। मेरा जीवन नरक बन गया। उसके दोस्तने मेरे साथ सहानुभूति दिखलाई। दूधकी जली तो थी ही, मगर हम अबलाओंके-लिए संसारमें शरण कहाँ ? मैं उस बधिकके हाथसे निकल भागना चाहती थी। उसका दोस्त मुझे यहाँ लाया। उसने भी उन्हीं बातोंको दुहराना शुरू किया। अन्तमें मुझे एक वेश्या मिली। उसने कहा, अशरण नारीकेलिए यही एक रास्ता है, जिसमें आकर, नरकमें क्या होगा यह तो नहीं जानती, किन्तु इस संसारके नरकसे थोड़ा-सा त्राण मिल सकता है। तबसे मैं दन्तपुरकी रूपाजीवा मधुमती हूँ।"

शायद अपने सारे कामोंकी ज़िम्मेवारी वह अपने ऊपर ले रही थी; किन्तु आजके समाजको मैं उससे ज्यादा समझता हूँ इसलिए भीषण प्रतिद्वन्द्वों-के सामने आजकी अबला कितनी क्षमता रखती है, इसको भी समझता था। मधुमतीकेलिए आत्म-हत्याके सिवा और क्या रास्ता था ? बुद्धके इस वाक्यको मैं सच समझता हूँ, कि आत्म-हत्या भारी बेवक़ूफ़ी है। मधुमतीके एक-एक वाक्यके पीछे कितनी दुःखद-घटनाएँ हैं, और एक-एक घटनाके पीछे कितने कारण, यह जानते हुए मैं मधुमतीकेलिए तिरस्कारका भाव अपने मनमें कैसे ला सकता था ? वेश्याएँ निम्नकोटिकी प्राणी हैं, लोगोंकी यह बात सुनकर अब तक मैं भी वैसा ही समझता था, किन्तु वेश्याएँ कैसे बनती हैं, उन्हें कौन बनाता है, इस बातको मधुमतीने मेरे सामने स्पष्ट कर दिया। मैंने जानेकी अनु-मति लेते हुए उससे कहा—"भद्रे ! मैं तुम्हें तिरस्करणीय नहीं समझता। मैं तरुण कलाप्रेमी हूँ, साथ ही मेरे हृदयमें मानवके प्रति सहृदयता है। मुझे तुम्हारे दुःखपूर्ण जीवनकेलिए समवेदना है। मैं दन्तपुरमें ज्यादा दिन रहनेकी इच्छासे नहीं आया, लेकिन जब तक रहूँगा, मैं तुम्हारे यहाँ आनेमें संकोच न करूँगा।"

मधुमतीने अञ्जलि जोड़कर द्वारपर आकर बिदा किया। मैंने सारी बातें सिंह और भाभीके सामने रखीं, और कहा—आजकी नारी कितनी अकिंचन है। क्या शबरपल्लीमें यह सम्भव था ?

मधुमतीके साथ मैं इतनी ही सहानुभूति दिखला सकता था कि जब तब

उसके यहाँ चला जाता। उसके मुखसे दो-चार गीत सुनता और उसे दो-एक सुनाता।

(१२)

कांचीमें

दन्तपुरसे बिदा होते वक्त मधुमतीको दुख हुआ। वह वस्तुतः वेश्या होनेकेलिए पैदा नहीं हुई थी! रूपाजीवा थी, किन्तु शरीर-यात्रा भरकेलिए रूपका विक्रय करती थी। मुझे आश्चर्य था कि उसके संगीतकी क्यों नहीं क़द्र की जाती। शायद वह ज़्यादा उच्च था, उसे थोड़े ही लोग पसन्द कर सकते थे।

यद्यपि पहिली ही समुद्र-यात्रामें हमारा जीवन संकटापन्न हो गया था, किन्तु वसंती तक भी डरती नहीं थी और हम दन्तपुरसे पोत-द्वारा ही कलिंग राजधानी पिष्ठपुर पहुँचे।

नये नगरमें अपरिचित आदमीका जाना कुछ कठिनाइयाँ ज़रूर पैदा करता है, और खासकर जबकि हम कलिंगी भाषाको नहीं समझ पाते थे। लेकिन पिष्ठपुरमें तो जान पड़ता था, मागधी भाषाका ही राज है। धनिक और शिक्षित लोगोंमें कोई ऐसा नहीं था, जो पुरानी मागधीको न बोलता हो। राजकुलकी तो वह मातृभाषा थी। नगरोंमें जहाँ कोई परिचय न हो, वहाँ पांथशाला ठहरनेकेलिए है ही। पिष्ठपुरमें अलग-अलग पण्यों और शिल्पियोंकी अलग-अलग बीथियाँ हैं। पण्यशालाएँ सारे महाद्वीपोंकी सुन्दर-सुन्दर वस्तुओंका संचय-कोष-सी मालूम होती हैं। है तो समुद्र काफ़ी भयंकर, लेकिन एक जगहसे दूसरी जगह आदमी और पण्योंके आने-जानेमें इससे बढ़कर सुगम और शायद जल्दीका भी कोई दूसरा रास्ता नहीं है। कहाँ यवद्वीप और कहाँ यवनद्वीप! कहाँ सिंहल और कहाँ चीन? शूर्पार्क और ताम्रलिप्तिकी बात ही क्या, पिष्ठ-पुरके तीर्थ (बन्दर)में सभी जगहोंकी चीज़ें चली आती हैं। हज़ारों विदेशी नाविक और व्यापारी मौजूद रहते हैं और सकी बीथियोंमें हर देशकी बोलियाँ सुनी जा सकती हैं, हर जगहका वेश देखा जा सकता है। यद्यपि अब कलिंग मगधराजकी दिग्विजयकी उतनी पर्वाह नहीं करता, किन्तु दूसरे क्षेत्रमें मगधकी धाक अब भी है। मगधकी भाषा और वेषको अधिक सम्मानकी

दृष्टिसे देखा जाता है। मगधके कारु और पाषाण-शिल्पियोंकी बड़ी माँग है। शृङ्गार और प्रसाधनकी चीज़ोंमें मगधका अनुकरण किया जाता है। तौलनेके मगध खारी, द्रोण, आढ़क, प्रस्थ, और कुड़वको बाहर-बाहरवालोंके साथ व्यापार करनेमें इस्तेमाल किया जाता है। कविता; कला-क्षेत्रमें तो मगध का शासन और भी प्रबल है। कलिङ्ग एक बार मगधसे बुरी तरह हारा था; उस वक्त कलिङ्ग-पुत्रोंने बड़ी वीरताके साथ शत्रुका मुक़ाबिला किया था, किन्तु मौर्य अशोकने इतनी बेदर्दीसे तलवार चलाई कि कलिङ्गोंको नतशिर होना पड़ा। लेकिन कलिङ्ग-विजयने अशोकको चण्ड-अशोक नहीं रहने दिया, खूनकी नदियोंको देखकर उसका दिल पिघल गया और उसने कलिंगोंके साथ जितनी लड़नेके समय क्रूरता दिखाई थी, उतना ही विजयके बाद स्नेह दिखलाया। कलिङ्गमें आज भी बौद्ध-धर्मका बहुत ज्यादा प्रचार है, शायद इसमें भी अशोकका प्रभाव कारण है। तबसे कलिङ्गने हमेशा मगधका विद्यार्थी बननेमें गौरव अनुभव किया।

पिष्ठपुरमें ढूँढ़ता तो पाटलिपुत्रके कितने ही आदमी मिल जाते; लेकिन फिर परिचय हो पड़ता और वह भी परमभट्टारक और उनकी महादेवीके नामके साथ। मैं इसे पसन्द नहीं करता था। दो-तीन दिन बाद ही सिंह वर्माका एक सम्बन्धी मिल गया। सिंह वर्मा कांचीके पल्लव-वंशसे सम्बन्ध रखता था, तो भी वर्त्तमान कांचीपति पल्लव-नरेन्द्र परमभट्टारक सिंह वर्मासे उसका कोई नज़-दीकका सम्बन्ध नहीं था। पल्लव-वंश काफ़ी पुराना हो चुका है, इसलिए राज-वंशियोंकी संख्या भी बहुत बड़ी है, और राजा अपने आस-पासकी दो-एक पीढ़ीका ही ख्याल कर सकते हैं। लेकिन तो भी दूरके भी सम्बन्धी औरोंकी अपेक्षा लाभमें रहते हैं। राज-सेवाएँ उन्हें आसानीसे मिल जाती हैं—खास-करके सेनामें बड़े-बड़े पद। यद्यपि सौ-दो सौ बरससे ज्यादा शायद ही कोई वंश परमभट्टारक या महाराजाधिराजके पदको शोभित करता है, लेकिन उस वंशके पतनका यह मतलब नहीं कि वंशजोंको दूसरे ही दिन भीख माँगनेकेलिए मजबूर होना पड़ता है। क्रूरसे क्रूर युद्धका सामना करनेके बाद भी पराजित शत्रुको विजेता भिखमंगेकी अवस्था तक पहुँचाना नहीं चाहता था। बहुत अधिक तो उस वंशको अपना सामन्त बना सम्मानमें कुछ कम; किन्तु भोगमें अक्षुण्ण

रहने दिया जाता है। यह क्यों ? यदि किसी गाँवकी साधारण जनता या किसान किसी राजासे लड़नेकी गुस्ताखी करे, तो गाँवका गाँव जला दिया जाये, बच्चे-बूढ़ों तकके ऊपर भी शायद ही दया दिखलाई जाए; जो प्राण लेकर भाग निकलें उन्हें दर-दर मारे-मारे फिरना पड़े। लेकिन राजाओंके साथ राजाओंका व्यवहार ऐसा नहीं होता। शायद वह जानते हैं कि राजवंश चाहे शत्रु-पक्षका हो चाहे मित्र-पक्षका, उसके सुख-समृद्धिकी रक्षा करना हरेक राजाका कर्त्तव्य है। क्यों कि आज जो एकपर बीती है, वही कल अपनेपर बीत सकती है। इसके अतिरिक्त राजवंशोंका आपसमें ब्याह सबंध भी रहता है। पिष्ठपुरके महाराज महेन्द्रकी कन्या समुद्रगुप्तके अन्तःपुरमें है, कांचीके विष्णुगोपकी पुत्री पाटलिपुत्रके राजान्तःपुरमें विराजमान है। राजाओंको जैसे अपनेसे बड़ेके पास उपायन भेजनेकेलिए रत्न-सुवर्णके संचय करनेकी आवश्यकता होती है, उसी तरह कन्या-रत्नकी भी, सैकड़ों रानियाँ इस कामकेलिए बड़ी सहायक हैं, इसे वह भी जानते हैं। वस्तुतः सामन्तोंकी एक जाति है, एक स्वार्थ है; वह आपसमें लड़ते भी हैं लेकिन लड़नेकी सीमा निर्धारित है। अपने भोगके शत्रुओंके मुक़ाबिलेमें वह कौरव-पाण्डवकी तरह सौ पाँचकी नहीं बल्कि एक सौ पाँचकी नीति रखते हैं।

पिष्ठपुरमें सिंह वर्माका सम्बन्धी एक ऊँचे पदपर था, जिसकेलिए उसके पास सबसे बड़ी योग्यता यही थी कि उसकी बहन अपने सौन्दर्यके कारण तरुण राजाकी बहुत स्नेह-पात्र थी।

सिंह वर्मा और भाभीको अश्व-बलाधिकृत (अश्व-सेनापति) बल वर्माके घर जाना पड़ा। मैं भी जानेकेलिए मजबूर था। सिंहने संगीताचार्यके तौर पर मेरा परिचय कराया। अश्वपतिको भी संगीत-साहित्य और कलाका प्रेम था, कमसे कम उस प्रेमका अभिनय करना तो हरेक नागरिककेलिए आवश्यक है। मैं देखता था कि आचार्य वसुबंधुसे इतने परिश्रमके साथ सीखी विद्यासे मैं उतना लाभ नहीं उठा सकता था, जितना कि मूर्त्तिकार या संगीताचार्यके तौर पर। जान पड़ता है यही सार्वदेशिक नक़द विद्याएँ हैं। मैं अपनेको भाग्यवान समझता था, जो कि पाटलिपुत्रमें मेरी रुचि इन कलाओंकी ओर हुई।

सिंह वर्माने डूबते पोतका एक सुन्दर चित्र बनाया। सिंह बल वर्माके साथ दर्बार गए, चित्र भेंट किया गया और सिंहको और कितने ही चित्रोंके तैयार करनेकी आज्ञा हुई। अब सिंहको कुछ महीनोंकेलिए पिष्ठपुरमें रहना पड़ा। मैंने पत्थर तोड़नेकी विद्याको प्रकट करना नहीं चाहा। सामंत हो या श्रेष्ठी सभी धनी कुलोंमें नृत्य, गीत, वाद्यका सीखना हरेक कुल-कन्याकेलिए अत्यावश्यक है। इसके बिना उसका सारा सौन्दर्य निर्गन्ध किंशुक-पुष्प जैसा है। यदि सौन्दर्य-तारुण्यके कारण किसीने ब्याह भी लिया, तो भी दूसरी सौतोंके सामने उसको कोई नहीं पूछेगा! इसे ही संगीत कलाका प्रेम कहते हैं। जिस कुलमें वह है, उसकी कलाप्रेमी कहकर प्रशंसा होती है। मैं किसी भी उपयोगी कलाके साथ अनुराग दिखलानेको बुरा नहीं समझता; किन्तु झूठ-मूठके लम्बे-चौड़े नाम क्यों दिये जाते हैं। आपकी स्त्री, बहन, लड़की या वधू गानेमें दक्ष है, बजानेमें प्रवीण है, नृत्यमें निष्णात है; बहुत ठीक है, जीवनको मधुर बनानेकेलिए इन चीज़ोंकी आवश्यकता है; किन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि यदि नृत्य-गान द्वारा ब्याहके बाज़ारमें कन्याओंका मूल्य न बढ़ जाता, तो कभी कन्याओंको संगीत सिखलानेकी ओर इतना ध्यान न दिया जाता। खैर संगीत प्रेमने मेरा तो फ़ायदा ही किया। बल वर्माकी चौदह वर्षकी कन्या थी। उसे संगीतकी शिक्षा पहिले हीसे दी जाती थी, लेकिन जब उसने मेरे बारेमें सुना, तो मुझे संगीत सिखलानेके-लिए प्रार्थना की। मैं पहिले एक घरकी एक कन्याका संगीताध्यापक बना। कन्याका कण्ठ मधुर था और संगीतकेलिए उसमें स्वाभाविक प्रतिभा थी। बहुत जल्दी ही पिता-माताको मालूम हो गया कि मागध तरुण आयुमें बहुत कम होनेपर भी बहुत गुणी है। छः महीने बीतते-बीतते अपनी शिष्या द्वारा मेरी ख्याति घरसे बाहर फैलने लगी। बड़े-बड़े राजवल्लभों और पदाधिकारियों-के यहाँसे संगीत सिखलानेकेलिए मेरी माँग होने लगी। पहिले दो-तीन महीने तो मैं एकाध जगह जाने लगा था, लेकिन देखा कि सबकी इच्छाको पूरा करना असंभव था और साथ ही मैं किसीको नाराज़ नहीं करना चाहता था। सिंह वर्मा और भाभीकी सलाह हुई, मैंने एक संगीत-शाला खोल दी, अपने कृपालुओंसे अपनी मजबूरी बतलाई और फिर कितनी ही कन्याएँ संगीत

सीखनेकेलिए मेरी पाठशालामें आने लगीं। उनकी संख्या इतनी बढ़ी कि मुझे तीन-चार और अध्यापक रखने पड़े। इस वक्त मुझे मधुमतीका ख्याल आया। वह इस कामकेलिए कितनी योग्य थी! लेकिन मैं जानता था, योग्य होनेपर भी मधुमतीको इस शालाके भीतर लानेकी शक्ति मैं नहीं रखता। मेरी संगीतशाला ख़ूब जमी। उसमें कितने ही राजवंशकी लड़कियाँ भी थीं। उसकी खबर महाराज तक पहुँचनेसे कैसे रोकी जा सकती थी। मैं केवल संगीताचार्य था, महाराजके बुलावेको इन्कारकर पिष्ठपुरमें मैं रह कैसे सकता था? मुझे कितनी ही बार शिष्याओंके साथ नृत्य-संगीतके प्रदर्शनकेलिए महाराजके सामने जाना पड़ा। इतने तक तो मुझे कोई उज़्र नहीं हो सकता था। लेकिन महाराजने अनुकूल स्थान देनेके बहाने मेरी संगीतशालाको राज-संगीत-भवनमें लानेकेलिए कहा। क्या करता? कलिंगके बड़े-बड़े लोगोंमें मेरी पूछ होने लगी, लेकिन सेवकके तौरपर ही। अब अंतःपुरिकाओंने मेरी संगीत-शालापर छापा मारा और छः महीने बीतते-बीतते मैंने देखा, मेरी कितनी ही तरुण-शिष्याओंसे महाराज एकांतमें मिल रहे हैं! मैं अपनी प्रतिष्ठासे डरने लगा, किन्तु जब मैंने इसकी चर्चा बल वर्मासे की, तो वह इसे बहुत मामूली बात कहकर समाधान करने लगा। मैं देखता था, कुमारियोंके माता-पिता अपनी कन्याओंको राजाके पास जानेसे असंतुष्ट नहीं, प्रसन्न होते हैं और मुझे अपने गुणकेलिए साधुवाद देते हैं। मैंने शबर-पल्लीमें स्वच्छन्द प्रेम देखा था, किन्तु उसमें किसी प्रसादका प्रलोभन नहीं था, बलात्कारकी कोई बात नहीं थी, और यहाँ वह बात हो रही थी, जिससे मधुमतियोंकी संख्या बढ़ती है। मैं इसकेलिए तैयार नहीं था। सिंह वर्मासे सलाह ली, और कुछ दिनों घूम आनेके बहाने हम तीनों एक दिन पिष्ठपुरसे निकल भागे!

हमने उरगपुर जानेवाले पोतको पकड़ा था। पोत-पल्लवोंकी सीमाके भीतर जा एक तीर्थपर लगा वहाँसे हमने स्थलका रास्ता लिया। अब भाषाकी दिक्कत नहीं थी, क्योंकि सिंह वर्मा द्रविड़ भाषा जानते थे। नगरोंमें कुछ लोग प्राचीन मागधी भी बोलनेवाले मिल जाते थे, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। हमने एक बड़े प्रसिद्ध (गुडिमल्लम्के) शिवालयका नाम सुना। सिंह वर्माने बचपनसे ही उसका नाम सुना था, किन्तु अभी तक वह वहाँ जा नहीं

सका था। मुझे यह लालच था कि पुराने मन्दिरोंमें मूर्त्तिकलाके सुन्दर नमूने देखनेमें आएँगे। हम बस्तीमें पहुँचे। द्रविड़ देशका यह बहुत बड़ा तीर्थ माना जाता है। यद्यपि यह यात्रोत्सवका समय नहीं था, किन्तु नर-नारियोंकी बड़ी भीड़ थी। हम तीनों फूल-माला लेकर मन्दिरमें दर्शन करने गए। स्त्री-पुरुष बड़े भक्ति-भावसे पूजा कर रहे थे और कुछ भक्त तो आसन लगाकर मूर्त्तिकी ओर एकटक देख रहे थे। लेकिन वहाँ मूर्त्ति कैसी थी? तीन हाथका एक पाषाण-खण्ड था! जिसको, यह मैं मानूँगा, किसी कुशल कलाकारने बलात्कार या स्वेच्छासे अपनी कलाके दुरुपयोगकेलिए इस्तेमाल किया था। उसने पुरुषके शिश्न-इंद्रियकी हू-बहू नक़ल उतारी थी। लिंगके एक ओर एक खड़ी मूर्त्ति उत्कीर्ण थी, जिसके शिश्नको भी नंगा करके दिखलाया गया था। मूर्त्ति सुन्दर बनी थी, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन किसी वीभत्स-दृश्यकेलिए। मेरेलिए वहाँ अधिक देर तक ठहरना मुश्किल हो गया। भाभीने तो एक बार नज़र डाल करके ही आँखें नीचे कर ली थीं। पांथशालामें पहुँचकर मैंने कहा—

"आदमीकी बुद्धिपर अफ़सोस आता है।"

"मैंने तो जय! बचपनसे इस देवालयकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी। जानते हो, मेरे परिवारके लोग शैव हैं, वहाँ आकर दर्शन करनेको वे बड़े भाग्यकी चीज़ समझते हैं।"

"तुमने इसे भाग्यकी बात समझा कि नहीं?"

"देवर! सचमुच ही इस तरहकी मूर्त्ति खड़ा करनेकी क्या ज़रूरत थी?"

"ऐसी मूर्त्ति और इतने विशाल मन्दिरको ग़रीब आदमी थोड़े ही खड़ा कर सकते हैं। यह लाखों दीनारोंका सवाल है। यह मूर्त्ति वस्तुतः धनिक लोगोंके जीवनका प्रतिबिम्ब है। ओह! कैसे कोई माता-पिता अपने तरुण पुत्र-पुत्रीको लेकर इस शिश्नके सामने खड़े हो सकते हैं। खड़े होनेपर उनके मनमें क्या भाव पैदा होंगे?"

"जय! जब तुम धर्मोंके विरुद्ध कहते थे, तो आज़ वक्त मैं समझता था, कि तुम्हारी दृष्टि एकांगी है, लेकिन इस प्रतिमाने तो मेरी आँख खोल दी। जान पड़ता है, धर्म मनुष्यको ऊँचा उठानेकेलिए नहीं, नीचे गिरानेकेलिए है। ऐसी प्रतिमाओंके पूजनके बाद भी यदि श्रेष्ठि-सामन्त-ब्राह्मण वर्ग पशुसे

भी निम्न कोटिकी कामुकता न दिखलाए, तभी आश्चर्य होगा। और वह बेशरम कलाकार कौन रहा होगा?"

"कलाकारको तो अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करना था। उसे इसकेलिए वेतन मिला होगा। न बनाता तो शायद दण्ड भोगना पड़ता। और सिंह भैया! ऐसी प्रतिमाकी सपरिवार पूजा करनेवाले जो ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-निग्रह-की बात कहें, तो इसे निर्लज्जताकी हद कहेंगे या नहीं?"

"निर्लज्जता! यह हमारी कलाका कलंक है।"

"तीर्थङ्करकी नग्न मूर्त्तियाँ हमने देखी है, मैं तो उन्हें भी पसंद नहीं करता, किन्तु उनमें कामुकताका इतना नग्न प्रदर्शन नहीं होता।"

वासन्ती बेचारी चुप थी। क्या कहती, तीर्थङ्करका ज़िक्र आते ही उसे बोलना पड़ा—"देवर जय! हम स्त्रियाँ तो धर्मके बारेमें और भी अंधी होती हैं। मैं भी तीर्थङ्करोंकी नग्न मूर्त्तियोंके दर्शनकेलिए बराबर जाया करती थी। यह ठीक है, उनकी मुद्रा बालकवत् सरल थी, उसमें कामुकताकी गंध नहीं थी, किन्तु तो भी मैंने एक मूर्त्तिमें मूर्त्तिकारके हाथको कुछ पथ-भ्रष्ट होते देखा था। मगर वह उतनी दूर तक नहीं गया था, जितना कि हम यहाँ देख रहे हैं। मैं समझती हूँ, वहाँ इसका आरम्भ है और यहाँ अन्त।

× × ×

लिंगालय (गुड़िमल्लम्) तीर्थसे चलकर हम कांची पहुँचे। सिंह वर्माके माता-पिता पुत्रको इतने दिनों बाद देखकर बहुत प्रसन्न हुए और वधूके साथ आनेसे वह प्रसन्नता और भी बढ़ गई। भाभीने सासके चरण छुए और अचल सौभाग्यका आशीर्वाद पाया। सिंह वर्मासे मेरा परिचय पाकर उन्होंने मुझे अपना छोटा पुत्र समझा—परिचय पंडित और कलाकारके तौरपर ही दिया गया था।

सिंह और वासन्ती अपने स्थानपर पहुँच गये थे, लेकिन मैं अभी यात्राके अन्त तक नहीं पहुँचा था। कांची पुरानी राजधानी है। इसलिए सैकड़ों वर्षों-से यहाँ नये-नये प्रासाद और नये देवालय बनते आये हैं। कांची दक्षिणके सबसे बलशाली पल्लव राज्यकी राजधानी है। सारे दक्षिणापथके दूसरे राजा पल्लवोंको अपना चक्रवर्त्ती समझते आये हैं। यद्यपि विष्णुगोपको हराकर

समुद्रगुप्तने उसकी महिमाको कम किया था, किन्तु अब फिर पल्लव राजा सिंह वर्माका रोब कलिंगसे दक्षिण समुद्रतट तक वैसा ही पाया जाता है। कांचीको हम दक्षिणका पाटलिपुत्र कह सकते हैं; राजशक्ति और धन-वैभव हीमें नहीं विद्या और कलामें भी। द्रविड़-देशमें यद्यपि और जगहोंमें हमने मागधीके जाननेवाले बहुत कम पाये, किन्तु कांची तो, जान पड़ता है, इस बारेमें भी पाटलिपुत्रका एक खण्ड है। हाँ, यहाँ वालोंकी मागधी आजकलकी मागधी नहीं दो-चार सौ बरस पहिलेकी है। द्रविड़ देशके लोग अधिकतर श्याम वर्ण होते हैं, किन्तु पल्लव-राजवंशके लोगोंका रंग बाज़ वक्त तो गंधारों और शकों जैसा गौर होता है। सिंह वर्मा कहता भी था कि हमारे पूर्वज शक बंशके ही थे। वह बाहरके किसी देशसे आकर अवन्तीके शक क्षत्रपोंके यहाँ नौकर रहे, फिर उनके संबंधी शातवाहनोंके दर्बारमें आये। जब शातवाहनों का राज्य खंड-खंड होने लगा तो पल्लव सेनापतिने कांचीमें अपनी स्वतंत्रताकी घोषणा की।

कांची मेरेलिए घर-सा था, लेकिन घर बनाकर रहनेसे मेरा दिल स्थिर नहीं हो सकता था। मैंने इसकेलिए यौधेय-भूमि नहीं छोड़ी, पाटलि-पुत्रसे प्रस्थान नहीं किया। मेरे मनमें सिंहल जानेकी इच्छा अब भी बनी हुई थी, अब वहाँ जाकर भिक्षुओंके नियमों (विनय)को जाननेकी इच्छा रखता था। लेकिन तुरत कांची छोड़नेका प्रस्ताव रखना मुश्किल था। मैंने यहाँ संगीताचार्य बननेका ख्याल नहीं आने दिया। यहाँ भी वही बात होने का डर था, जो पृष्ठपुरमें हुई। हाँ, अपनी मित्रमंडलीमें हमारा संगीत चलता रहता था। पहिले मैंने मूर्त्तिकलाको काममें लानेका निश्चय किया, पीछे एक चार्वाक पंडितका पता लगा, मैं उनके पास भी जाने लगा। चार्वाक आत्मा-परमात्मा किसीको नहीं मानते, न वह धर्म और पुनर्जन्मको मानते हैं। मैं उनके सिद्धान्तोंके बारेमें कुछ पढ़ चुका था, लेकिन अभी तक किसी चार्वाक पंडितसे मिलनेका मौक़ा नहीं हुआ था। मैं उनके पास जाने लगा। उनके पास बृहस्पति-सूत्र और चार्वाक-दर्शनके कुछ दूसरे ग्रन्थ देखे। अब तक मैंने चार्वाक-दर्शनकी बातोंको दूसरोंके ग्रन्थोंमें पढ़ा था, किन्तु यहाँ चार्वाकके स्वतन्त्र ग्रन्थ मौजूद थे। चार्वाक पंडितके जीवन-दर्शन-

से मैं सहमत नहीं हो सकता। वह कहा करते—"हमें यह जीवन फिर मिलनेवाला नहीं, इसलिए जितना हो सके, उतना खाओ पियो मौज करो, ऋण लो, घी पियो, मरनेके बाद कौन पूछनेवाला है?"

यद्यपि पंडित मुझसे कहते थे कि चार्वाक आचार्योंका यही मूल-मत है, लेकिन मुझे इसमें भारी संदेह था। मैं उनका विद्यार्थी नहीं था, बल्कि मित्रके तौरपर जब तब उनके पास जाया करता था, इसलिए उनके दर्शनका खंडन करनेमें संकोच करनेकी ज़रूरत नहीं थी। उनके पास पैतृक धन था, जीविकोपार्जनकेलिए चिन्ता नहीं थी। स्त्रियाँ और शराब हर वक्त उनके सामने हाज़िर रहतीं। मुझसे भी वह कहते—मित्र जय! तुम्हें कितना सुन्दर यौवन मिला है, इसे अकारथ न जाने दो। वसन्त एक बार हाथमें आकर फिर आनेवाला नहीं।"

"चार्वाक-दर्शनका मैं यह अर्थ नहीं लेता मित्र! चार्वाकने ईश्वर माननेसे इन्कार कर दिया, इसीलिए कि मनुष्य अपने भाग्यका स्वयं विधाता हो, किसीके हाथकी कठपुतली न बने। चार्वाकने जीवनको एक अजर-अमर स्वतंत्र-तत्त्व नहीं माना, इसीलिए कि मनुष्यको हर क्षण नया बननेका मौक़ा है। चार्वाकने परलोक और पुनर्जन्मसे इन्कार कर दिया, इसीलिए कि जिन चीज़ोंको हम परलोकमें ढूँढ़ते हैं उसे इसी लोकमें पैदा करें; परलोककी जैसी कल्पना सुननेमें आती है वैसा इसी लोकको बनाया जाय।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि हम इस लोकको स्वर्ग बनानेके प्रयत्नमें मर जायँ और जो कुछ मौजूद है उसे भी न भोगें?"

"जो कुछ मौजूद है उसे न भोगनेकी मैं बात नहीं करता। मैं इतना ही कहता हूँ, भोग सबके सम्मिलित प्रयत्नका फल है, इसलिए अकेले भोगनेका हमें कोई हक़ नहीं है। दुनियाको सारे भोगोंसे समृद्ध तभी करना सम्भव है, जब कि सभी सम्मिलित प्रयत्न करें। मैं समझता हूँ, दूसरेके बोये खेतको काटने भरकेलिए तैयार रहना उचित नहीं है। हमारा, अपना जीवन भी उसी वक्त सुखी हो सकता है, जब कि आस-पासके लोगोंका जीवन सुखी हो। आप अपना ही उदाहरण ले लीजिए, यदि आपके परिवारके लोग भूखे

मरते हों तो क्या आप इस तरहसे खाते-पीते मौज कर सकते हैं। आपका पुत्र घोर व्यथामें हो, तो क्या तब भी आप इस तरह रंगरलियाँ मनाते रहेंगे?"

"कुछ बातें तो स्वाभाविक हैं मित्र। शायद चार्वाक-आचार्य आशा रखते हों कि यहीं इसी जीवनमें आज और अपनेलिए भोग-भोगना जीवनका ध्येय है; मगर मैं अपनेको उतना सबल नहीं पाता।"

"मानव कभी भी पत्थरका नहीं हो सकता, उसका हृदय कोमल है, उसकी भावनाएँ कोमल हैं, अन्यायीको निरपराधके ऊपर ज़ुल्म करते देख उसका हृदय तड़पे बिना नहीं रहेगा।"

"लेकिन मैंने तो किसी चार्वाक-ग्रन्थमें इस तरहका जीवन-दर्शन नहीं देखा?"

"चार्वाक-दर्शन पुस्तकोंका दर्शन नहीं है, वह ऋषि-मुनियोंका नाम लेकर हमारी बुद्धि कुंठित करना नहीं चाहता। दूसरे, आपके सामने पुस्तक रूपमें जो चार्वाक-दर्शन आया है, यह सामन्तों और सेठोंका दर्शन है।"

"सामन्तों, सेठोंका दर्शन! सामन्तों, सेठोंमें तुम कितने चार्वाक मतानुयायी देखते हो?"

"मेरा मतलब है, चार्वाकके नामसे आप जिस जीवन-दर्शनको हमारे सामने रख रहे हैं, वह सामन्तों, सेठोंका दर्शन है। बिना अपवादके वे सभी इसीपर चलते आये हैं। किसीकी पर्वाह मत करो, बाप और भाईको भी तलवारके घाट उतारने, विष पिलाकर सुलानेमें ज़रा भी आना-कानी न करो, यदि तुम्हारे खाने-पीने, मौज करनेमें बाधा होवे। आप ही बताइये यह छोड़ और कौन इनका जीवन-दर्शन रहा है?"

"लेकिन मेरी बातोंका तो वह मज़ाक उड़ाते हैं।"

"लेकिन आपके जीवनका वह अनुकरण करते हैं। यही कह सकते हैं कि आपके दर्शनको वह खुल्लमखुल्ला स्वीकार करनेकेलिए तैयार नहीं, क्योंकि उन्हें चोरीके मालपर जीना है, चोरको चाँदनीमें आनेकी हिम्मत नहीं होती।"

"बहुत कठोर शब्द हैं मित्र!"

"क्या मैं झूठ कहता हूँ? इस दुनियाको नरक किसने बनाया? यदि वह पूरे परलोकवादी होते और इस दुनियाकी किसी चीज़से वास्ता नहीं रखते,

हवा-पानी और जंगलके पत्तोंसे निर्वाह कर लेते, तो साधारण जनताका जीवन इतना दुखमय न होता, इतनी खून-खराबी नहीं होती; लेकिन वह परलोक-वादी होनेका सिर्फ़ दिखलावा करते हैं, जिसमें लोग उन्हें चोर न समझें और मानें कि वह पहिले जन्मकी अपनी ही कमाई खा रहे हैं।"

"यह तो मेरे ऊपर भी आक्षेप हो सकता है?"

"आप भी उन्हींके साथ हैं। दोनोंका एक ही जीवन-दर्शन है। प्रथम चार्वाक विचारकने भोग-उपार्जन करनेवालोंको धर्म, परलोकका प्रलोभन देकर वंचित होते देख, अपने शरका संधान किया था। उसका लक्ष्य चोर था, उसका उद्देश संसारको सुखी देखना था, वह चाहता था मानव-मानवमें प्रेम और भ्रातृ-भावका संचार हो।"

"आप किस चार्वाक-मतकी बात कर रहे हैं?"

"जो चार्वाक-मत केवल बुद्धिको अपना पथ-प्रदर्शक मानता है, केवल तजर्बेको सत्यकी कसौटी मानता है। आप पहिले किसी पोथी-पत्रे और ऋषि-मुनिके ग़ुलाम थे और अब चार्वाकके नामसे कुछ दूसरे पोथी-पत्रों और आचार्योंके ग़ुलाम रहना चाहते हैं; दोनोंमें अन्तर नहीं है। आप भी 'खाओ-पिओ मौज़ करो' वाले पथके पथिक हैं, और पल्लव-कुमार भी। निर्दयतापूर्ण इस जीवनको बिताते हुए आपको ईश्वर या परलोककी कोई चिन्ता नहीं, पल्लव-कुमारसे भी आप यही उत्तर पाएँगे; फिर दोनोंमें क्या अंतर है, ईश्वर, परलोक आदिके न मानने भरसे आप गर्वसे फूल उठते हैं कि हम बड़े-बुद्धि-वादी हैं।"

"तो क्या मित्र! तुम समझते हो, हम चार्वाकोंने बुद्धिवादके फैलानेमें कोई काम नहीं किया।"

"कोई काम नहीं किया, यह प्रश्न नहीं है, प्रश्न है—'काम उल्टा किया या सीधा'?"

"सीधा किया मित्र! भोगवाद और बुद्धिवादको मिलाकर हमने दुनियाको अँधेरेमें भटकनेसे बचानेकी कोशिश की।"

"आप लिंगालय (गुड्डिमल्लम्)के महातीर्थको तो जानते हैं?"

"क्यों नहीं, मैं वहाँ कई बार गया हूँ।"

"दर्शनकेलिए, पुण्यार्जनकेलिए ?"

"अपने मित्रोंको यह दिखलानेकेलिए, कि भोगवाद ही धर्मका एक-मात्र सार है, भोग-इन्द्रिय ही देवोंका देव महादेव है।"

"मानो आपके मित्र पहिले इस बातको नहीं मानते थे ?"

"मानते थे, किन्तु स्वीकार नहीं करते थे।"

"और अब वह अपने स्वीकारकी घोषणा करते फिरते हैं। वह तीर्थ इतना ही बतलाता है कि परलोक और परमशक्ति धर्मोंकेलिए आड़-मात्र हैं, भोगवाद ही उनका ध्येय है। लेकिन मानवको भोगवाद नहीं, पशुओंसे भी निकृष्ट भोग-जीवनको वह स्वीकार करवाते हैं। हम भोगवाद मानते हैं लेकिन वह भोगवाद, जो मानव-हृदयके अनुकूल है, जिसकेलिए मानव-बुद्धि पथ-प्रदर्शन करती है। चोरी करके छिपके अकेलेका भोगवाद नहीं, बल्कि जिस भोगवादमें सारे मानव सम्मिलित हों, जिस भोगवादमें आनेवाली पीढ़ियोंको भी वंचित न होना पड़े।"

"कल्पना तो बहुत सुन्दर है, यदि सारे नगरको न खिला सके तो क्या अपने सामनेकी थालीको भी फेंक देना चाहिए ?"

"यदि सारा नगर भूखा रहा हो, तो थाली फेंकना नहीं, थालीको दूसरेके सामने रख देना होगा; मैं इसे मानव-हृदय कहूँगा; सारा नगर क्यों भूखा मर रहा है, कैसे उसे बचाया जा सकता है, इसकेलिए प्रयत्न करना होगा; इसे ही मैं मानव-बुद्धि कहता हूँ।"

"लेकिन जो कुछ तुम कह रहे हो, उसपर क्या दुनिया चलनेकेलिए तैयार है ?"

"दुनिया तैयार भी हो जा सकती है, लेकिन दुनियाके चोर-उचक्के क्या उसे क़दम बढ़ानेकी इजाज़त देंगे।"

"लेकिन चोर-उचक्कोंकी संख्या कितनी है ?"

"संख्या चाहे कितनी भी कम हो, जाल जो बहुत बड़ा है, हथियार तो मज़बूत हैं, क्योंकि राज्य उनके हाथमें है ?"

"तो यह दूरकी बात हुई और लाल द्राक्षी-सुरा यह मेरे पास है।"

× × ×

पिष्ठपुरकी तरह कांचीमें भी विदेशी लोग बहुत आते-जाते रहते हैं। मेरेलिए कार्यका कोई निर्बन्ध नहीं था। सिंह वर्माके पिता-माता ऐसी अवस्थामें थे कि मैं उनके यहाँ साल-दो साल ऐसे ही रह जाता, तो भी भार न मालूम होता। हाँ, मनोरंजनकेलिए फिर छिन्नी हाथमें पकड़ ली थी और मैं मूर्त्ति उत्कीर्ण कर रहा था, दासोंके क्रय-विक्रयकी। यह कोई कल्पित चित्रण नहीं था। कांची जिस तरह दक्षिणापथकी सबसे बड़ी राजधानी है, उसी तरह वह दासोंकी सबसे बड़ी हाट है। धनी लोग वेतन-भोगी चाकरोंसे संतोष नहीं करते, इसलिए वह ऐसे स्त्री-पुरुष चाहते हैं, जो गायों-बैलोंकी तरह उनके खूँटेसे बाहर न जा सकें। यहाँ दासोंके लानेवाले न जाने कहाँ-कहाँके सौदागर थे। किन्हीं-किन्हींकी शकल यवनों जैसी थी और कोई चीनियों जैसे थे। किन्हीं-किन्हींके मुखपर लंबी-लंबी दाढ़ियाँ और कोई-कोई केश-दाढ़ी सब सफ़ाचट किए होते थे। वह अपने दास-दासियोंको समुद्र-तटसे घेरकर उसी तरह लाते थे, जैसे बधिक अपनी भेड़ बकरियोंको। दास-वणिकोंकी अपनी बीथी थी, अपनी पण्यशालाएँ थीं। यद्यपि उन्हें सड़क-पर अन्य पण्य वस्तुओंकी तरह सजाया नहीं जाता था, किन्तु पण्यशालाके फाटकके भीतर घुसते ही व्यापारीके सारे हथकंडे दिखलाई पड़ने लगते थे। आँगन या कोठरीके भीतर वह खरीदारोंको बड़ी तत्परतासे खींचकर ले जाते थे। हरेक सौदेकी बढ़ा-चढ़ाके तारीफ़ करते थे। यदि दासी चालीस बरसकी होती, तो वह उसे बीसकी बताते। यदि वह बंध्या है, तो उसे प्रति वर्ष प्रसव करनेवाली कहते थे। यदि दास दुबला है, तो यह रास्तेकी थकावटके कारण, यदि छोटा है तो अभी उसके बढ़नेके दिन गये नहीं। मोल-भाव भी उसी तरह होता था, जैसे दूसरे पण्योंका। दस दीनार पहिले कहते और सौदा पटता पाँच दीनारपर। दासोंमें भी सभी रंगके मनुष्य थे, मोटे ओठ, कुंचित केश, काले लोगों (हब्शियों)की भी संख्या काफ़ी रहती। मैं यह समुद्रपारसे आनेवाले दास-दासियोंके बारेमें कह रहा हूँ। स्वदेशी दास-दासियोंको तो मैं बचपनसे ही देखा करता था और जानता था कि किस तरह दासोंके बच्चोंको दास रहना पड़ता है, या खुद तथा माता-पिताके बेच देनेपर, राजदण्ड हो जानेपर आदमी दास बन जाते हैं। मैं विदेशसे आनेवाले दासोंके बारेमें

जानना चाहता था कि लोग वहाँ दास कैसे बनते हैं। मुझे जब मालूम हुआ कि दास पक्षियोंकी तरह फँसाए जाते हैं, छापा मारकर उन्हें लूटा जाता है, तो उसके बारेमें ज्यादा जाननेकी इच्छा हुई। लेकिन मुश्किल यह थी, कि दास जिन भाषाओंको बोलते थे, उनमेंसे मैं एकको भी नहीं समझता था। बड़े कुलोंमें जानेवाली दासियोंकी तो पण्यशालाएँ और ही थीं, बल्कि वहाँ तो सौदा बिकते देर भी न लगती थी। मैं जिन यवन-दासियोंको एक दिन देख आता, उन्हें दूसरे दिन जानेपर वहाँ न पाता। गौर-वर्ण तो वह होती ही थीं, यदि उनमें सौन्दर्य हुआ तो वह महाराजके अंतःपुरकी चीज़ थीं। इन पण्य-शालाओंकी दासियोंको ज़मीनपर अधनंगे मलिन शरीरसे बैठा रहना नहीं पड़ता था। आखिर मणि-मोतीको लाल-चीनांशुकमें लपेटा जाता है, और कोदोको ज़मीनपर फेंक दिया जाता है। मानव शरीरके साथ क्रूर नाटक खेला जा रहा था, किन्तु तो भी ऐसे धर्मात्मा मिलते थे, जो कहते थे, यह पुरबिला कर्म है, जो एक दासीको इतना सजाके रखा जाता है, उसके खाने-पीनेका ही नहीं शृङ्गार और वस्त्रका भी काफ़ी ध्यान रखा जाता है, और दूसरेको ऐसे ही धूलमें छोड़ दिया जाता है। मानों अधिक मूल्य प्राप्त करनेकेलिए व्यापारी-का अपने सौदेका सजाना भी पुरबिले पुण्यसे है।

एक दिन मुझे एक मिस्री दास मिला। वह बचपनमें अलसन्दा (अले-क्जेन्डरिया)के एक भारतीय व्यापारीके घरमें पला था। वह बतला रहा था—"मेरा गाँव समुद्रके तटपर है। एक दिन डाकुओंने हमारे गाँवपर छापा मारा। हमारे लोग लड़े, लेकिन डाकू ज्यादा थे। कितने ही गाँववाले मारे गये, कुछ भाग गये और बाक़ीको मुसुक बाँधकर डाकू अपने जहाज़पर ले आये। उन्होंने हमें दास-वणिकोंके हाथमें बेच दिया। मेरे साथियोंमेंसे कितने ही रास्तेके पत्तनों (बन्दरों)में बिक गये। चार सिंहलमें बिके और मैं यहाँ बिकनेके-लिए आया हूँ।"

बेचारे विदेशी कैसे साबित करते कि वे दास नहीं हैं। शामके वक्त दासोंको कोठरियोंमें बन्द कर दिया जाता, मानों वह मनुष्य नहीं पशु हैं। गर्मी ज्यादा होती, तो कइयोंको एक साथ जंज़ीरमें बाँधकर आँगनमें डाल दिया जाता। मैंने एक दिन तीन दास और दो दासियोंको इसी तरह जंज़ीरमें बँधे

देखा था। अब पत्थरपर उन्हींकी मूर्त्ति उत्कीर्ण कर रहा था। दास-वणिकको इसमें कोई उज़र नहीं हुआ, जब उसने एक भद्र-पुरुषको बड़ी नम्रतासे प्रार्थना करते सुना, आप दो-तीन दिन इन्हें आँगन हीमें रखें। मैंने उस चित्रको बड़े मनोयोगसे बनाया। जंज़ीरमें बँधे दासोंके साथ एक कोनेमें लोभी क्रूर-मुख वणिकको भी उत्कीर्ण किया और खरीदार बननेकेलिए मेरे मित्र सिंह वर्माने अपनेको पेश किया। जब मूर्त्ति तैयार हो गई तो मैंने अपने चार्वाक मित्रको साथ लाकर उनसे कहा—यह है परलोकवादकी सबसे बड़ी देन, जो साथ ही आपके भोगवादकी भी पुष्टि करती है। मोटे ओठोंवाले काले दासोंके बारेमें सुना कि उन बेचारोंको घेरकर पकड़नेकेलिए दास-वणिक बाक़ायदा सेना रखते हैं। मालूम नहीं इसमें कितना सत्यका अंश है और कितना झूठका। उस वक्त मेरे सामने शबर-पल्लीका चित्र खिंच जाता था। शायद उनके भी जंगलोंमें छोटी-छोटी झोपड़ियाँ हैं, छोटे-छोटे गाँव होंगे, जिन्हें यह क्रूर सैनिक घेर लेते होंगे।

दासताका यह सबसे निम्न तल था। वैसे तो वह राजाओंके अन्तःपुरों तक हज़ारों रानियोंके रूपमें विद्यमान हैं। मुझे इस बातकेलिए ज़रूर कुछ सन्तोष हुआ कि मैं अब तक जिन-जिन देशोंमें गया, वहाँ इस तरह दासोंका शिकार नहीं किया जाता। धनिक-वर्गमें भगवान्‌के भक्तोंकी कमी नहीं है, मेरे परिचितोंमें भी उनकी काफ़ी संख्या थी। वह जब मेरे अनीश्वरवादी नास्तिक चार्वाक होनेकी बात सुनते, तो तर्कसे ईश्वरके मनवानेकी कोशिश करते—

"हरेक कार्यका कोई कारण होता है। घड़ेका बनानेवाला कुम्हार होता है, इसीलिए संसारका भी कोई कारण होना चाहिए।"

मैं कहता—"ज़रूर इन दासोंका बनानेवाला भी कोई ईश्वर है और वह कितना क्रूर, कितना निष्ठुर होगा? उससे हम कौन-सी भलाईकी आशा रख सकते हैं?"

फिर वह पुरबिले कर्मकी बात ले आते। मैं कहता—"बेचारे चोरका नाहक हाथ काटा जाता है। उसने साहस किया, परिश्रम किया, यह सब अपनी पुरबिली कमाईके फलको लेनेकेलिए और तुम उसका हाथ कटवाते हो, उसे शूलीपर चढ़वाते हो, उसे पहाड़परसे गिरवाते हो!"

दक्षिणापथके इस भागमें उत्तर भारतसे कितनी ही भिन्नता पाई जाती है, लेकिन वह भिन्नता प्रभुओं और स्वामियोंके मनोभावमें नहीं है। श्रमणों-ब्राह्मणोंका यहाँ खूब सम्मान है। ब्राह्मणोंका और भी ज्यादा, क्योंकि उनकी संख्या बहुत कम है। राजा और सामन्तोंपर उनका प्रभाव भी ज्यादा है, क्योंकि किसीके उच्च जाति होने की व्यवस्था देना उन्हींके हाथमें है। श्रमणों—बौद्ध भिक्षुओं—में सभी जाति-वर्गके लोग रहते हैं, इसलिए उनकी बड़ी संख्या स्थानीय लोगोंसे भी पूरी हो सकती है। यद्यपि भिक्षु आपसमें खाने-पीने आदिका कोई भेद नहीं रखते, लेकिन बाहरकी दुनियामें छोटी-बड़ी जातियाँ हैं और वहाँ भिक्षुओंके बारेमें भी उसकी पूछ-ताछ होती है। पल्लवोंने भिक्षुओंकेलिए भी कितने ही विहार बनवाये हैं, कितने ही ग्राम दान दिये हैं, विद्वान् भिक्षुका सम्मान भी करते हैं; लेकिन यह साफ़ है कि वह ब्राह्मणोंसे जितना अपना काम बनते देखते हैं, उतनी भिक्षुसे उन्हें आशा नहीं है।

मुझे कांचीमें रहते एक साल हो गया। अपने असली संबंधके प्रकट होनेके खतरेसे बचते जितने भी पंडितों, कलाविदों और कला-प्रेमियोंसे मिलनेका मौक़ा मिलता था, मैं उनसे मिलता था। मेरे पास इसकेलिए समय भी बहुत था। शामके वक्त भाभी और सिंहके साथ बैठकर दो-एक चषक चढ़ाता, कुछ वीणा और संगीतका आनन्द लेता। भाभीकी कुछ चुटकियाँ सुनता, नहीं तो बाक़ी समय गुणियोंसे मिलने-जुलने, नगरीके कूडा-कर्कट देखने और उनपर विचार करनेमें खतम होता। चार्वाक मित्रसे मेरा संबंध बराबर अच्छा रहा, यद्यपि चार्वाकके भव्य दर्शनका जो वह अर्थ लगाते थे, उससे मैं अपना बराबर विरोध प्रकट करता था। कांचीके महा-विहारमें भी अक्सर मैं जाया करता। वहाँके पंडित-भिक्षुओंके साथ शास्त्र-चर्चा होती रहती थी। वह देखते थे कि मैं तथागतको द्विपद-उत्तम (सर्व-श्रेष्ठ पुरुष) माननेमें उनसे भी एक क़दम आगे था, यद्यपि बौद्धधर्ममें मेरी आस्था न थी। कैसे भी हो मेरे साथ उनका बर्त्ताव अच्छा था, जिसमें आचार्य वसुबंधुका शिष्य होना भी एक कारण हो सकता है। आचार्य वसु-बंधुकी कीर्ति समुद्र पार तक पहुँच गई थी। पिछले छः महीनोंमें मेरा परिचय

कांचीके एक तरुण भिक्षुसे हुआ। उसकी प्रतिभा जितनी तीक्ष्ण थी उतनी ही अध्ययनकेलिए उसमें अधिक अध्यवसाय था। उसने मेरे पास आचार्य वसुबंधुके-'वाद-विधान' और दो-एक दूसरे ग्रंथ पढ़े। मैंने बतलाया कि आचार्य वसुबन्धु आधुनिक कालके महान् विचारक हैं। वह आचार्यके पास जानेकेलिए बहुत उत्सुक था। मैंने बतलाया कि आचार्य गन्धार चले गये, यदि उनके पास जाना हो तो जल्दी करो। वह मेरे ही सामने उत्तरकी ओर रवाना हो गया और पीछे मैंने सुना कि उस ब्राह्मण-तरुण—जिसका नाम दिङ्नाग था—ने आचार्यके ज्ञानसे बहुत लाभ उठाया और पोथी-पत्रेवाले ब्राह्मण तथा दूसरे धर्म-ध्वजी उसके नामसे काँपते थे।

अन्तमें वह दिन आया जब मुझे कांची छोड़नेकेलिए तैयार होना पड़ा। तीन वर्षसे अधिक तक वासन्ती, सिंह और हम एक साथ रहे, और जीवन ही में नहीं, मृत्युके समयमें भी; सुखके समयमें ही नहीं, कष्टोंमें भी। ऐसे मित्रोंका विछोह कभी प्रिय नहीं हो सकता। वासन्ती कहने लगी—"देवर जय! मैंने समझा था, हम आजीवन एक साथ रहेंगे। क्या अच्छा न होता यदि हम शबर-पल्लीमें ही रह गये होते!"

"भाभी! तुम्हें वह अपना वेश याद है?"

"जिस दिन तुमने कहा था, उस वेशको धारण करनेकेलिए: तो वह मुझे कितना कड़वा-मीठा लगा?"

"मीठा भी लगा!"

सिंहने हँसते हुए कहा—"क्योंकि वह देवरके मुखसे निकली बात थी।"

"हाँ देवर! आज सोचती हूँ तो मालूम होता है, वह जीवन कितना मधुर था। यह जीवन भोग-सुलभ जीवन है, किन्तु इसका दूसरा अंग कितना क्रूर है। तुम्हारा उत्कीर्ण किया हुआ यह चित्र मर्मपर कितना चोट पहुँचाता है? शबर-पल्लीके लोगोंको असहाय-अबोध-जंगली भले ही कह लिया जाये किन्तु क्या वहाँ यह दास-जीवन संभव है? और मुझे याद आती है देवर! श्यामा, वह कैसी सरल थी, कैसी निर्भय थी, और भी सखी-सहेलियाँ मैंने देखीं, लेकिन वैसी सखी फिर न मिलेगी।"

"मिलना क्या मुश्किल है। फिर उसी तरहसे एक जहाज़ टूटे और हम वहाँ पहुँच जायें, क्यों जय?"

"एक बार बिखरे फिर कैसे इकट्ठ हो सकते हैं। लेकिन हमारा जीवन यही चाहता है, नहीं तो हम मनुष्य नहीं वृक्ष होते, एक ही साथ उगते, एक ही साथ बढ़ते और एक ही साथ आँधी-पानी बर्दाश्त करते।"

वासन्ती और सिंहको छोड़ते वक्त मुझे बड़ा दुख हुआ।

(१३)

सिंहलमें

मैं चाहता तो स्थल मार्गसे भी बहुत दूर तक जा सकता था और जहाँ सिंहल और भारत एक दूसरेसे बहुत नज़दीक आ जाते हैं, बीचमें पाँच-छः योजनकी खाड़ी रह जाती है, वहाँ तक स्थल-मार्गसे जाता फिर थोड़ा हीसा पोतसे जाना पड़ता। ऐसा करनेसे पांड्य देशकी राजधानी मथुरा (मदुरा) भी देख लेता लेकिन इधरके रास्ते बहुत ख़तरनाक हैं। जंगल और जंगली पशुओं-के ही कारण नहीं बल्कि डाकुओं और चोरोंके कारण भी। मैं कावेरी पट्टन-तक स्थलके रास्ते गया और वहाँसे सिंहल जानेवाला पोत पकड़ा। जहाज़-में अकेले दिन काटना मुश्किल होता, लेकिन मनुष्यकेलिए दोस्ती करना बिल्कुल स्वाभाविक है, जब एक दूसरेकी भाषा नहीं समझता तब भी मनुष्यके प्रति मनुष्यका एक मूक-स्नेह पैदा हो जाता है। फिर इस जहाज़में बहुत सैंहल जा रहे थे। मैं समझ रहा था, कि जिस तरह पल्लवोंके राज्यमें आकर भाषाकी दिक़्क़त और बढ़ गई उसी तरह आगे और भी बढ़ती जायेगी। फिर सिंहलके बारेमें तो मैंने बहुत-सी कथाएँ सुन रखी थीं। वह राक्षसियोंका देश है, जो भूले-भटके पोतवाहियोंको अपने जादूमें फँसा लेतीं और पशु बनाकर सदाकेलिए रख लेती हैं। मगर जैसे-जैसे मैं आयु और ज्ञानमें बढ़ता गया, अधिक और अधिक देशोंको देखता गया, वैसे ही वैसे मेरेलिए इस तरहकी कहानियाँ रोचक कथाएँ मात्र रह गईं। जहाजमें मैंने देखा कि लोग जो सिंहल भाषा बोल रहे हैं, उसे मैं अच्छी तरह समझ लेता हूँ; हाँ जो पाण्ड्य और पल्लव राज्यके वासी थे, उनकी

भाषा मुझे समझमें नहीं आती थी—यद्यपि कांचीमें मैं एक साल रहा हूँ किन्तु द्रविड़ भाषाभाषियोंमें नहीं बल्कि उत्तरसे आये राजवंशियों या ब्राह्मणोंमें, इसलिए मैं वह भाषा सीख नहीं सका। जहाजमें सिर्फ सिंहल और भारतके ही लोग नहीं थे, बल्कि कितने ही द्वीप-द्वीपान्तरोंके निवासी भी थे—उन द्वीपोंके जिनका कि मैंने अब तक नाम भर सुन रखा था। यवद्वीपका एक तरुण ब्राह्मण यहाँ मेरा मित्र बन गया, और एक सिंहल तरुणसे भी मेरी दोस्ती हो गई। सिंहल तरुणका नाम था रोहण और यवद्वीपके ब्राह्मणका नाम था अर्जुन। यवद्वीपके बाद यहाँ कांचीमें भी कितनी ही विचित्र-विचित्र कथाएं सुनीं, यद्यपि सिंहलके नजदीक आ जानेसे अब उतनी अद्भुत कथाएं सुननेको नहीं मिल रही थीं। कितना कठिन है इन कथाओंके बलपर सत्यके पास जाना? दूरसे सुननेपर पाँच योजनका मुल्क पाँच सौ योजनका बन जाता है, काले-पीले लोग विकराल आकृतिवाले दानव बन जाते हैं और रास्ते दैत्यों और पिशाचोंके अड्डे। आशा ही नहीं हो सकती कि इन विघ्न-बाधाओंके झेलनेकेबाद इतना बड़ा रास्ता तै कर पाएँगे। रोहण और अर्जुनके साथ बात करते वक्त ऐसी कथाएँ अक्सर चल पड़ती थीं। मैंने रोहणसे पूछा—"बड़वानल तुम्हारे यहाँसे कितनी दूर है?—बड़वानल समुद्रके भीतरकी आग जो धक-धक जला करती है।"

रोहणने कहा—"सिंहलके उत्तरी भागसे वह नहीं दिखलाई पड़ती। दक्षिण प्रदेशका नाम रोहण है। रोहणके दक्षिणी तटसे देखनेपर बड़वानल दिखलाई पड़ता है। लेकिन उसकेलिए रातको किसी अच्छे वृक्ष या पहाड़ी टेकरीपर चढ़ना पड़ता है। लोग यह भी कहते हैं कि बड़वानलको देखते हुए यदि किसी देवताने देख लिया तो फिर जीवन वहीं समाप्त समझो।"

"ऐसी कथाएँ सब जगह मशहूर हैं रोहण। हमारे यवद्वीपमें कहा जाता है कि बड़वानल हमारे द्वीपसे भी और दक्षिण है। वहाँ भी वह रातको ही दिखाई देता है लेकिन कोई देखना नहीं चाहता, क्यों कि आँख पड़नेके साथ ही बड़वानल आदमीको खींच लेता है। मैं समझता हूँ कि लोग ऐसी कथाएँ अपने अज्ञानके कारण गढ़ते हैं। मेरा निवास यवद्वीपके दक्षिणी तटपर है।"

मैंने पूछा—"यवद्वीपमें लोग कैसे होते हैं ?"

"कैसे होनेका क्या मतलब ? जैसे मुझे देखते हो वैसे ही होते हैं।"

"क्या हमारे यहाँ से कोई भेद नहीं होता ?"

"बहुत भेद। यवद्वीपमें सिवाय भारतके लोगोंके जाति-पाँतिका कोई पता नहीं ?"

"तो वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं होते ?"

"कहा नहीं, भारतसे गये लोगोंमें जाति-भेद है मगर उनकी संख्या बहुत कम है।"

"मित्र अर्जुन ! क्षमा करना, मैं देखता हूँ तुम्हारी मुख-मुद्रा भी दूसरे यावियों (यावावालों) की तरह ही है, वही श्मश्रु-शून्य मुख-मडल, वैसी ही गालकी उठी हुई हाड्डयाँ ?"

"ब्राह्मणोंने यवद्वीपमें जाकर कुछ उदारता दिखलाई है। मेरे परदादा कांचीसे गए थे। मेरी बड़ी इच्छा हुई कि एक बार अपने पूर्वजोंके देश और परिवारको देख आऊ। इसीलिए मैं कांची आया। लेकिन वहाँ पहुँचते-पहुँचते मालूम हो गया कि अब मैं म्लेच्छ हूँ और पूर्वजोंके परिवारसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। इसका कारण मेरी यही मुख-मुद्रा थी, जो भारतीयोंकी अपेक्षा चीनियोंसे अधिक मिलती है।"

रोहण—"लेकिन ऐसा होता क्यों है ? हम सिंहल लोग हज़ार वर्ष पहले उत्तर भारतसे आये थे, अब भी हम इसी भाषाको अपने घरोंमें बोलते हैं जिसे मैं आपके सामने बोल रहा हूँ और मित्र जय बतलाएँगे कि वह मगधमें अब भी समझी जा सकती है। हमारी मुख-मुद्रामें भी अन्तर नहीं आया।"

"अर्जुन ! हमारे यहाँ बहुत अन्तर है रोहण ! यवद्वीप काफ़ी बड़ा देश है। वहाँके लोग मेरे ही जैसे मुख-मुद्रावाले होते हैं। सिंहलमें हो सकता है तुम्हारे पूर्वज बहुत बड़ी संख्यामें आये हों या कोई दूसरा कारण हो जिससे उनकी मुख-मुद्रा नहीं बदलने पाई। लेकिन यवद्वीपमें तो ब्राह्मण, राजवंशी या कोई-कोई सार्थवाह भारतसे पहुँचे वह यवद्वीप वासियोंके समुद्रमें बूँदके समान थे। फिर कितने तो हमारे परदादाकी तरह अपने साथ अपने वंशकी स्त्री नहीं ले गये थे। मेरे परदादा भानदत्त शर्मा साहसी तरुण थे, अच्छे

पंडित थे। किसी जहाज़पर बैठकर वह यवद्वीप पहुँचे। राजा कोई यज्ञ करना चाहता था, कर्मकांडी ब्राह्मणोंकी आवश्यकता थी। भानुदत्त शर्मा सबसे अधिक विद्वान् थे—यवद्वीपमें उस वक्त बहुत ब्राह्मण-घर थे भी नहीं। यज्ञकी समाप्तिपर भानुदत्त शर्माको बड़ी दक्षिणा ही नहीं मिली, बल्कि राजा महेन्द्र वर्माकी पुत्री प्राप्त करनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

जय—"क्या यवद्वीपवासियोंके नाम भी हमारी ही तरह होते हैं?"

अर्जुन—"ब्राह्मणोंमें और क्षत्रियोंमें बहुत कुछ हमारे जैसे नाम होते हैं लेकिन वह सभी भारतसे गए हैं ऐसी बात नहीं है—कुछके पूर्वज भारतसे गए होंगे। वहाँके राजा भी अपने संबंध भारतके किसी राजवंशसे जोड़ते हैं; लेकिन मैंने पल्लव राजवंशके लोगोंको देखा, दोनोंकी मुख-मुद्रा नहीं मिलती। मैं माँकी ओरसे तीन पीढ़ीसे राजकन्याओंकी संतान हूँ। भानुदत्तकी मुख-मुद्रा यदि मुझसे लुप्त हो गई है, तो उसका कारण यही राजकन्याएँ हैं!"

जय—"इसका अर्थ यही हुआ कि भारतका रक्त यवद्वीपियोंसे मिला। यद्यपि यवद्वीपियोंका रक्त अधिक है, लेकिन राजवंश ब्राह्मणवंश दो बूँद खटाईके डालकर सारे दहीको अपना कहना चाहता है।"

रोहण—"हमारे सिंहलके ब्राह्मणोंकेलिए तो यह बात नहीं है। वह पाटलिपुत्र और उज्जयिनी तक पढ़ने जाते हैं और वहाँसे अच्छे-अच्छे कुलों-की ब्राह्मण-कन्याओंसे ब्याह कर लाते हैं। अपने पूर्वजोंके कुलोंमें भी उनका सम्मान होता है।"

जय—"अर्जुन! तुम देख रहे हो, कोई मुख-मुद्राका अन्तर हम दोनोंके चेहरेमें?"

अर्जुन—"वैसे तो आदमी-आदमीमें अंतर होता है, किन्तु जातिके तौर-पर कोई अंतर नहीं है, केवल तुम्हारा रंग अधिक गौर है।"

जय—"जो बात हम दोनों क्षत्रिय-कुमारोंमें है, वही ब्राह्मणोंमें भी। सिंहलके ब्राह्मण भी वही भाषा बोलते हैं इसीलिए नहीं तो यदि मित्र अर्जुन! यदि तुम्हारे इतना मुखमुद्रामें भेद हो जाता, तो देखते कि कैसे कोई सिंहल ब्राह्मण मागध ब्राह्मणकी कन्या ले आता।"

अर्जुन—"यवद्वीपमें तो मैं भी अपने ब्राह्मण होनेपर बहुत अकड़ा करता था। मैंने अपने वेदको कंठस्थ किया, बहुतसे ब्राह्मण-शास्त्रोंको पढ़ा। तारूमा (नगरी)में राजाधिराज पूर्ण वर्माकी त्रैलोक्य सुन्दरी कन्या अब भी मेरी प्रतीक्षा कर रही है। मुझे अपने पूर्वजोंके कुलको देखनेकी बड़ी इच्छा हुई। यही नहीं बल्कि अन्तस्तलमें यह अभिलाषा भी छिपाए आया था, कि वहाँ चलकर ब्राह्मण-कन्या ब्याह कर लाऊँगा।"

जय—"फिर वह तुम्हारी परिणीता कहाँ है अर्जुन ?"

अर्जुन—"परिणीता! ब्राह्मण तो घरके भीतर मुझे जाने देनेकेलिए तैयार नहीं हैं। अच्छा हुआ जो मैंने कांचीमें प्रवेश करनेसे पहिले जान लिया था, कि संस्कृत फर-फर बोलने, लम्बी धोती और मोटा यज्ञोपवीत पहनने-पर भी मेरे चेहरेको देखते ही ब्राह्मणोंकी भृकुटी चढ़ जाती है। एकाध जगह मैं आत्म-विस्मृत हो कुछ आगे बढ़ने लगा, तो "म्लेच्छ-म्लेच्छ" कह-कर मैं दुतकार दिया गया। इसीलिए कांचीमें जानेपर मैं फूँक फूँककर पैर रखता रहा। भानुदत्त शर्माके गोत्र और कुलवालोंका पता लगा। उनके भाइयोंकी सन्तानोंको देखा।"

रोहण—"तो उन्होंने तुम्हारा कैसा स्वागत किया ?"

अर्जुन—"स्वागत! मैंने अपना परिचय ही नहीं दिया। मैंने उनसे यही कहा कि तुम्हारे कुलके भानुदत्त शर्माने यवद्वीपमें जाकर बड़ी कीर्त्ति पाई है। उनकी सन्तानें वहाँ अब भी मौजूद हैं।"

जय—"तुमने ठीक किया अर्जुन! भानुदत्तका वंशज बतलानेसे कोई फ़ायदा न होता। भानुदत्त-वंशी यवद्वीपमें भले ही ऐंठ सकते हैं, लेकिन यहाँ केलिए, अब वह सदा भ्रष्ट हो चुके हैं।"

अर्जुन—"मेरी ऐंठ सब खतम हो गई जय! अब मैं अपनेको साधारण यवद्वीप सन्तान समझूँगा। मुझे तो बल्कि नफ़रत हो गई है उन भारतीयोंसे, जो हमारे द्वीपमें जा इस तरहके भेद-भावका बीज बोते हैं। हमारे लोग यह जानते ही नहीं थे कि जावी लोगोंमें छोटी-बड़ी जाति हो सकती है।"

जय—"ब्राह्मणोंका मेवा चखा न, कितना मीठा है ?"

रोहण—"जातिको टुकड़े-टुकड़े करनेमें वह कितना सफल होता है!"

अर्जुन—"अब मैं समझता हूँ कि अपनी जातिके टुकड़े-टुकड़े करके हमने स्वयं अपनेको अपमान और लांछनका पात्र बनाया। मैं अपने ब्राह्मणों-से कह तो सकता हूँ, लेकिन उनको कांचीका कड़वा-मीठा तज़र्बा तो नहीं है। फिर वे दूसरे लोगोंमें बड़ा बनना चाहते हैं, बड़प्पनके कारण ही उन्हें भारी दक्षिणा मिल रही है।"

जय—"एक बात कहूँ, तुम बुद्धके धर्मको फैलाओ, उसमें जात-पाँति नहीं है और न वह भारतकी जात-पाँतिको दूसरे देशोंमें फैलाना चाहता है।"

अर्जुन—"लेकिन भारतके बौद्ध भी तो जाति-पाँतिसे बँधे हुए हैं।"

जय—"हज़ारों वर्षोंसे बढ़ते-बढ़ते यहाँ जाति-पाँति इतनी मज़बूत हो गई कि बौद्ध उसे तोड़नेमें समर्थ नहीं हुए।"

"मुझे अफ़सोस है, कि उन्होंने नौ सौ वर्षों तक लड़कर अब अपने हथियारको रख दिया। निराशा ही कारण हो सकती है, लेकिन उनका प्रयत्न बिल्कुल निष्फल नहीं गया था।"

रोहण—"जय! तुम्हारा कहना ठीक है। सिंहलमें हम जाति-पाँतिको बिल्कुल तो खतम नहीं कर सके, तो भी उसकी वह क्रूरता नहीं है, जो कि भारतमें देखी जाती है। इसका बहुत कुछ श्रेय बौद्धोंको है।"

जय—"यदि तुमने भी कहीं हथियार न रखा, तो तुम सफल होकर रहोगे।"

रोहण—"और हमें यह भी सुभीता है कि हमारी जातिके होश सँभालने-के साथसे ही बुद्ध ही हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहे, इसलिए हम दूसरोंकी भूल-भुलैयामें नहीं पड़ेंगे।"

अर्जुन—"अब मैं समझता हूँ, ब्राह्मणोंका धर्म जातियोंके अभ्युदय-का कारण नहीं हो सकता। अ-भारतीय जातियोंकेलिए तो वह हलाहल विष है।"

जय—"और यदि कहीं उनके साथ भारतीय राजाओंकी दो-चार बूँद भी पहुँच गई, तब फिर तुम्हारे उपदेशकेलिए खैरियत नहीं है।"

हम लोगोंको जहाज़में पाँच दिन जाना पड़ा। खाना बनानेका ऊपर

ही इंतिज़ाम था। कावेरीपदनसे कुछ ब्राह्मण भी उसमें चल रहे थे। वह अपने हाथसे खाना बनानेकी ओर विशेष ध्यान रखते थे। हम लोग अक्सर उनके ऊपर टीका-टिप्पणी करते थे। ब्राह्मण कहते थे, नौकामें काष्ठ मिट्टीके समान है। आखिर ब्राह्मणोंका शास्त्र ठहरा, उसमें उनके मतलबकी कौनसी चीज़ नहीं निकल आ सकती।

ताम्रलिप्तिसे उस दिन जो हम चले, उसकी स्मृति जब-तब आये बिना नहीं रहती थी। आज भी हम समुद्रको शान्त देख रहे थे, लेकिन उस दिन भी वह बहुत शान्त था। संभव है, उस समय वह दुर्घटना नहीं घटी होती, तो मैं पहिले ही सिंहल पहुँच गया होता। लेकिन शबर-पल्लीके डेढ़ सालोंको मैं बेकार नहीं समझता। आज मैं सिंहल और अच्छे तज़र्बेके साथ जा रहा हूँ। मध्याह्नका समय था, जबकि हमें उतरनेको भूमि और उसके पीछे खड़े हज़ारों ताड़के वृक्ष दिखलाई पड़े। एक याम दिन था, जब हमारे पैर सिंहल-की भूमिपर थे।

गर्मी बहुत थी। ताड़ और कुछ जंगली वृक्षोंके सिवा वह भूमि बालू और कंकड़से भरी मालूम पड़ती थी। स्त्रियोंकी पोशाक थी कटिके नीचे एक अंतरवासक। उच्च कुलोंकी स्त्रियाँ भी उत्तरासंग (चादर)का कम ही इस्ते-माल करती हैं। लेकिन अब उनका अर्धनग्न शरीर देखकर मुझे आश्चर्य नहीं हो सकता था। बस्तीके बाहर एक अच्छा विहार था, जहाँ दो सौ भिक्षु रहते थे। लेकिन हमें वहाँ जानेकेलिए कोई आकर्षण नहीं था। यात्रियोंके रहनेकेलिए यहाँ कितनी ही पांथशालाएँ थी और आहार-गृह भो। यद्यपि उसी दिन हम सिंहलकी राजधानी अनुराधपुर पहुँच जानेकी आशा नहीं रखते थे, लेकिन इतना दिन रहते हम वहाँ ठहरना नहीं चाहते। अर्जुनको यवद्वीप लौटना था, किन्तु हम दोनोंका हेल-मेल इतना बढ़ गया था कि उन्होंने भी अनुराधपुर देखनेकी इच्छा प्रकट की।

रोहणका यह अपना देश था। मुझे यहाँ भाषाकी दिक्क़त नहीं मालूम होती थी। मैंने पाटलिपुत्रकी पोशाक पहनी थी। देखा, लोग इस पोशाककी ज्यादा क़द्र करते हैं। सिंहल लोग मगधके लोगों जैसे मालूम होते थे। कहीं-

क्यों ? एकके बाद एक क़दम पड़ता गया और मैं यहाँ पहुँच गया, बस इतना ही कह सकता हूँ। शायद मेरे हृदयके अन्तस्तलमें यायावर (घुमक्कड़)की अतृप्त इच्छा थी, जो मुझे यहाँ पकड़कर लाई। मैं समझता हूँ पिछली बात ही ठीक है। यदि दूसरी इच्छाओंने मुझे अपने हाथमें न कर लिया होता, तो कुलूपाने अपने कथा-नायककी जितनी यात्राओंका वर्णन किया था, मैं वहाँ-वहाँ जाता। अनुराधपुर वैसे ही एक नगर था, जैसे और नगरोंको मैं अन्यत्र देख चुका था। उसके पासकी विशाल वापियाँ, बड़े-बड़े चैत्य और कितनी और चीज़ें अपनी विशेषता रखती थीं, किंतु और बातोंमें तो वह पाटलिपुत्र या कांचीका एक टुकड़ा था। यहाँ भी गंध वणिकोंकी वैसी ही वीथियाँ थीं, जौहरियों, शिल्पियों, वेश्याओंकी वीथियाँ मौजूद थीं। इन वीथियोंमें घूमनेसे मुझे कोई ख़ास तृप्ति नहीं मालूम होती थी, तो भी यह बात नहीं थी कि मैं इन वीथियोंमें जाता न था।

अर्जुन सप्ताह बाद रवाना हो गया। अब हम और रोहण दोनों ही की जोड़ी थी। रोहण बहुत सीधा-सादा नौजवान था, उसकी किस चीज़में रुचि है, यह बतलाना मुश्किल है। लेकिन मैं जिधर भी जाता, वह सदा साथ जानेकेलिए तैयार रहता। उसकी यदि रुचि किसी चीज़की ओर थी तो वह था बार-बार उन्हीं कथाओंको दुहराना, कैसे हमारे पूर्वज किसी पोत-पर भटकते हुए ताम्रपर्णी (सिंहल)के तटपर आए। उस वक्त इस दीपके निवासी और मालिक थे, श्यामवर्ण जाति वाले। कोई श्यामवर्णा नौयात्रियोंके मुखियाके प्रेम-पाशमें बँध गई। उसने भेद बतलाया। आगंतुकोंने मूल-निवासियोंको पराजित किया और यह द्वीप सिंहलोंके हाथमें चला गया। मैंने अपने भाग्यको सराहा कि श्यामाके प्रणयका मैंने दुरुपयोग नहीं किया। रोहण कई बार मुझे उन स्वतंत्र श्यामवर्णोंकी सन्तानोंको दिखलानेकेलिए कहता था। वह आज भी दक्षिणके जंगलोंमें रहते हैं। हाथी और बाघके प्रहारसे भी ज़बर्दस्त मनुष्यके प्रहारके होनेपर भी वह बचे हुए हैं, इसकेलिए मैंने प्रसन्नता प्रकट की। लेकिन इसमें न सिंहलोंकी दयाका सवाल था न श्यामवर्णोंकी बुद्धिका। सिंहल इतना बड़ा द्वीप है, कि लोग अभी उसके बहुतसे अंशको जानते भी नहीं हैं।

(१४)

प्रेम या त्याग

महाविहार और अभयगिरिके पंडित भिक्षु ही ऐसे थे, जिनके पास मैं कभी-कभी अपने विद्या-प्रेमका आनन्द ले सकता था। उस वक्त मुझे खयाल आया—आचार्यने बतलाया था कि तथागतने अपने भिक्षु-संघका निर्माण लिच्छवियोंके गणके अनुसार किया, और उसके संचालनकेलिए जो नियम बनाए, उनमें भी गण-व्यवस्थाका अनुकरण किया गया है। लिच्छवि गण अब जीवित नहीं हैं, इसलिए अब वहाँ उन बातोंके जाननेका कोई साधन नहीं रहा। मेरे मनमें इच्छा हुई, कि भिक्षु-संघके नियमोंको जानना चाहिए। फिर मालूम हुआ, वे नियम उन्हींको बतलाये जाते हैं, जो भिक्षु-वेष स्वीकार करते हैं। मैंने एक दिन इसकेलिए अपनेको तैयार कर लिया और महाविहारके महानायक स्थविर सुमनके पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। स्थविरने कुल-गोत्र आदि पूछनेके बाद कहा—"मुझे यह सुन बड़ी प्रसन्नता हुई, कि तुम यौधेयगणके कुलपुत्र हो। लेकिन भिक्षु बननेकेलिए माता-पिताकी आज्ञा होनी चाहिए।"

"भन्ते! माँ तो जब मैं एक वर्षका भी नहीं होने पाया तभी मर गई, किन्तु पितासे मैंने आज्ञा ले ली है।"

"लेकिन आयुष्मान! एक आदमी भिक्षु नहीं बना सकता। भिक्षु बनानेका अधिकार संघको है। जो बातें तुमसे मालूम हुई है, उनको देखनेसे मालूम होता है कि संघको तुम्हें भिक्षु बनानेमें कोई उज़र नहीं होगा।"

"लेकिन भन्ते! आप तो सिंहलके पचास हज़ार भिक्षुओंके महानायक हैं।"

"महानायक हूँ, लेकिन संघका महाराजा नहीं हूँ। मैं उतना ही कर सकता हूँ, जितनेकी संघ मुझे आज्ञा देता है। भिक्षु बननेका मतलब है संघका सदस्य होना, और सदस्य होते ही हरेक भिक्षुके वही अधिकार और कर्त्तव्य होते हैं, जो कि पहिले हुए भिक्षुओंके। आयुष्मान्! तुम बौद्ध-धर्मसे भिन्न किसी धर्मके अनुगामी तो नहीं रहे?"

"नहीं भन्ते ! मेरा कुल सदासे भगवान् बुद्धका भक्त रहा है।"

"तो आयुष्मान् ! मैं संघका सन्निपात (बैठक) कराऊँगा। संघ तुम्हारी परीक्षा लेकर भिक्षु बनाएगा।"

कुछ दिनों बाद संघ सन्निपात हुआ। मेरे मित्र रोहणने मेरे उपयोगके आठों परिष्कार (सामग्री) प्रदान किए। तीन चीवर (वस्त्र), लोहेका भिक्षा-पात्र, अस्तुरा, सूई, परिस्रावण (जलछक्का) और कमरबन्द लिए मैं महाविहार गया। भिक्षु-संघ सामने आसीन था। महानायक सुमन प्रमुख स्थान ग्रहण किए हुए थे। मुझे संघके सामने पेश किया गया। संघकी ओरसे एक भिक्षुने मुझसे पूछा—"आयुष्मान् ! तुम्हें कुष्ठ आदि जैसी कोई पैतृक बीमारी तो नहीं है।"

मैंने उत्तर दिया—"नहीं भन्ते।"

"तुम पुरुष हो ?"

"हाँ भन्ते।"

"तुम दास तो नहीं हो ?"

"नहीं भन्ते।"

"तुम ऋण-ग्रस्त तो नहीं हो ?"

"नहीं भन्ते।"

"तुम राज-सैनिक तो नहीं हो ?"

"नहीं भन्ते।"

"तुम्हें माता या पिताने भिक्षु बननेकेलिए अनुमति दी है ?"

"हाँ भन्ते।"

"तुम अपनी आयुके बीस वर्ष पूरे कर चुके हो ?"

"हाँ भन्ते।"

"तुम्हारे पास पूरे पात्र-चीवर हैं ?"

"हाँ भन्ते।"

इसके बाद उक्त अनुशासक भिक्षुने मुझे संघके आगेके प्रश्नोंके उत्तर देनेकेलिए कितनी ही बातें बतलायीं। फिर वह मुझे संघके सामने वन्दना करवाके कहने लगे—

"आयुष्मान् जय! सुनते हो? यह तुम्हारा सत्यका काल है। जो जानते हो संघके बीच पूछनेपर 'हाँ' होनेपर 'हाँ' कहना 'नहीं' होनेपर 'नहीं' कहना।"

फिर संघको सम्बोधितकर वह बोले—"भन्ते संघ! मेरी बात सुनें। यह आयुष्मान् जय भिक्षु बनना चाहते हैं।"

मैंने संघकी वन्दना करके कहा—"भन्ते! संघसे मैं उपसम्पदा (भिक्षुत्व) माँगता हूँ। पूज्य संघ अनुकम्पा करके मेरा उद्धार करे।"

मैंने तीन बार इन शब्दोंको दुहराया। इसके बाद और भी प्रश्न-उत्तर हुए। संघकी ओरसे बतलाया गया कि मुझे शरीर-यात्राकेलिए सिर्फ़ चार बातोंका आश्रय लेना होगा—"(१) भिक्षा माँगकर भोजन करना, इसके अतिरिक्त निमन्त्रित भोजन भी स्वीकार कर सकते हो; फटे-फेंके चीथड़ोंको जोड़-कर या दानमें मिले वस्त्रसे चीवर बनाना। वस्त्र अलसीकी छालके, भाँगकी छालके, सनके कपड़े हो सकते हैं; (२) कपास, ऊन और रेशमके भी हो सकते हैं; (३) रहनेकेलिए वृक्षकी छाया, हाँ यदि मिले तो संघके विहारमें रह सकते हो; (४) गोमूत्रकी औषध बीमार पड़नेपर तुम्हारी दवा होगी, इसके अतिरिक्त घी, मक्खन, तेल, मधु और खाँड़ प्राप्त होनेपर तुम ले सकते हो।"

मैंने उस वक्त देखा कि भिक्षु-संघ एक दूसरी तरहकी संस्था है, जिसकी बहुत-सी बातें हमारे यौधेयगणमें अब भी मौजूद हैं। मैं भिक्षुओंके नियमों (विनय)को बड़े ध्यानसे पढ़ने लगा। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि किसी एकके हाथमें सारा अधिकार न चला जाय इसका काफ़ी ध्यान रखा गया है। सिवाय उन आठ परिष्कारोंके किसी भिक्षुकी अपनी पौद्गलिक (व्यक्तिगत) सम्पत्ति नहीं हो सकती। संघके पास बड़े-बड़े मकान, खेत और कितनी ही जंगम सम्पत्ति थी, लेकिन उसे वर्त्तमान और भविष्यके सारे संघकी सम्पत्ति माना जाता था। मुझे यह देखकर अफ़सोस हुआ, कि इस नियमका कड़ाईके साथ पालन नहीं किया जाता, और कितने ही भिक्षु—अभयगिरि विहारके और भी—अपनी अलग सम्पत्ति रखते हैं। भदन्त सुमन ऐसे भिक्षुओंमें नहीं थे। मैंने इसके बारेमें जब उनसे पूछा, तो उन्होंने कहा—"आयुष्मान् जय! यह बहुत बुरी है। भगवान्ने कहा था कि पात्र चुपड़ने भरको भी अगर कोई चीज़ मिल जाय तो भिक्षुओंको आपसमें बाँटकर खाना चाहिए। लेकिन हम

क्या करें, राजा सबके धनको खींचकर अपने राज-कोषमें रखना चाहता है और लोगोंके ऊपर भूमिकर, लवणकर, पण्यकर और न जाने कितने करोंको लगाता है। श्रेष्ठि, सार्थवाह हर तरहसे अपने धनको बढ़ाना चाहते हैं। वही हमें दान देनेवाले हैं, और कितनी ही बार आगत-अनागत (वर्त्तमान-भविष्य) भिक्षु-संघको न देकर अपने स्नेहपात्र किसी एक भिक्षुको देते हैं। संघ लाचार है।"

"अर्थात् भन्ते! संघके पास राज्यशक्ति नहीं है कि सांघिक नियमोंको माननेकेलिए अपने सदस्योंको मज़बूर करे।"

भिक्षु बननेके बाद मैंने नियम कर लिया, कि सिर्फ़ भिक्षा माँग कर ही खाऊँगा, पहिले दिन जब मैं काषाय-चीवरको ठीकसे पहनकर दाहिने हाथमें पात्र ले पहिले घरकी ओर जाने लगा, तो मुझे बड़ा सङ्कोच हो रहा था। मैंने आज तक कभी भीख नहीं माँगी थी। किन्तु मेरे आगे-आगे भदन्त सुमन भी जा रहे थे, इसलिए मैं भी रस्सीसे बँधा-सा उनके पीछे चला जा रहा था। पहिले घरपर जब मेरी बारी आई, तो देखा—गृहपत्नीने भात, मछली और साग मेरे भिक्षा-पात्रमें डाल झुककर वन्दना की। यही बात दूसरी जगहोंमें भी दुहराई गई। जब हमें पर्याप्त भोजन मिल गया, तो हम विहार (मठ)में लौट आए। भदन्त सुमनके सामने मैं और दूसरे साथी भिक्षुओंने अपने पात्रों-को रख दिया। भदन्तने पहले बीमार और बूढ़े भिक्षुओंके पास भोजन भेजा, फिर हम लोगोंने एक-दूसरेकी भिक्षामें बाँट-चाँटकर भोजन किया। भोजनका समवितरण मुझे बहुत ही पसन्द आया।

मैं एक महीना भी विहारमें नहीं रहने पाया कि पाटलिपुत्रके किसी सार्थवाहने आकर अनुराधपुरमें खबर दी, कि महादेवीका देहान्त हो गया। अज्जुकाकी मृत्युकी खबर सुनकर मेरा हृदय सन्न हो गया। मैं अपने दिलको बहुत समझाना चाहता था, किन्तु मेरे आँसू नहीं रुकते थे और भिक्षुओंके सामने जाना मेरेलिए मुश्किल होने लगा। मैंने महानायक सुमनसे आज्ञा लेकर चैत्य पर्वत (मिहिन्तले) चला गया। अनुराधपुरसे एक योजनसे अधिक यही वह पर्वत है, जहाँ अशोकके पुत्र भिक्षु महेन्द्र रहा करते थे। आज यद्यपि सैकड़ों भिक्षुओंके कारण यह पर्वत एकान्त-स्थान नहीं रह गया है, तो भी

एकान्त-प्रेमी भिक्षुओंकेलिए महाविहार और अभयगिरिसे यह कहीं अच्छा स्थान है। मैं पूर्वाह्नमें भिक्षाकेलिए जाता, उसके बाद सारा समय अपनी लेना (गुहा)में बिताता। दूसरे भिक्षु शायद समझते थे, कि मैं योग-ध्यानमें लगा रहता हूँ, लेकिन मैं तो अपने आँसुओंको छिपानेकेलिए ही वैसा करता था।

माताकी मुझे याद नहीं, पिताके चल बसनेपर मुझे बहुत खेद हुआ था; लेकिन अज्जुका मेरी सब कुछ थी। मैं उसके उदरसे नहीं पैदा हुआ था, लेकिन अज्जुकाको अपने सहोदरके प्रति जितना प्रेम था, उतना अपने पुत्रोंसे भी नहीं था! मैं जब सोचता, अब अज्जुकाके प्रसन्न मुखको फिर नहीं देख सकूँगा, तो कलेजा सिहर उठता और आँखें झड़ी लगाने लगतीं। एक महीने तक मेरी यही हालत रही। फिर शोकका वेग कुछ कम होने लगा, और मैं फिर अनुराधपुर चला आया।

मेरा सिर मुंडित था, शरीरपर पुराने कपड़ोंका बदरङ्ग-सा चीवर रहता था और पैर नंगे थे। आदमीके शरीरको कुरूप बनानेकेलिए जितना सजाया जा सकता था, वह सारे साज मेरे शरीरपर थे, लेकिन मैं अपने रूपको क्या करता, जान पड़ता था वे सारे साज मेरे यौवन और सौन्दर्यको कम करनेके-लिए नहीं बल्कि बढ़ानेकेलिए हैं। मैं जिस वीथीमें भिक्षा माँगने जाता, उसीमें कई और भिक्षु भी जाते थे; लेकिन जब हम लौटकर अपने भिक्षा-पात्रोंको देखते, तो मेरे भिक्षा-पात्रमें ज्यादा और कई-कई तरहके भोजन पड़ता, पात्रमें घी और मसालेमें पका सूअरका मांस, मोदक, अपूप (माल-पूआ) रहता, और दूसरोंके पात्रोंमें सिर्फ़ भात और शाक दिखाई पड़ता। मैं इस ख्यालसे वीथियोंको बदलता रहता, कि नव-परिचित गृहोंमें लोगोंका ध्यान मेरी ओर कम जायेगा, लेकिन दूसरे दिन वहाँ भी वही बात होने लगती।

आखिर मैं कहाँ तक वीथियोंको बदलता रहता?

× × × ×

दूसरे सालके अन्त होते-होते मुझे सिंहल छोड़ना पड़ा, लेकिन इसका कारण समुद्रगुप्तकी मृत्यु और रामगुप्तको मारकर चंद्रगुप्तके सिंहासनासीन होनेकी खबर ही नहीं थीं; तो भी इसमें संदेह नहीं, चंद्रगुप्तके गद्दीपर बैठनेसे

मेरा मन बहुत दूर तक सोचनेकेलिए मज़बूर हुआ। चन्द्रगुप्तको मैंने शैशवसे तरुणाई तक बहुत नज़दीकसे देखा था। मुझे उसके वचन याद आते थे, जिसमें कि वह अपनेको चाणक्य और चंद्रगुप्त मौर्य्यका अनुयायी बतलाता था। रामगुप्तको मारकर उसकी पत्नी ध्रुवदेवीसे चंद्रगुप्तने ब्याह किया, और इस सारी घटनाके पीछे जो नाटक खेला गया, उसकी बहुत अतिरंजित खबरें अनुराधपुरमें सुननेको मिली थीं। ध्रुवदेवीको मैंने देखा नहीं था, क्योंकि पाटलिपुत्र छोड़ते वक्त युवराज भट्टारक रामगुप्तने उस नामकी किसी राजकुमारीसे ब्याह नहीं किया था। कोई कहता, ध्रुवस्वामिनी नागकन्या है, कोई उसे गंधर्वी या अप्सरा बताता, उसके रूपकी उपमा रंभा, तिलोत्तमा और उर्वशीसे दी जाती। मैं उस नाटकको यहाँ नहीं देना चाहता, मैं चन्द्रगुप्तके मुँहसे सुनकर और स्वयं ध्रुवदेवीको देखकर इस बारेमें कुछ लिखूँगा। चन्द्रगुप्तके राज्यारोहणकी खबरने पहलेसे दिलमें हो रहे निश्चयको पक्का कर दिया।

कह चुका हूँ कि भिक्षु-वेषने मेरी जवानी और सौन्दर्यको कम करनेमें ज़रा भी मदद न की। मैं जिन गलियोंमें भिक्षा माँगने जाता, वहाँ भिक्षा देनेवाले हाथ अधिकतर तरुणियोंके होते, खासकर उन तरुणियोंके जिनको अपने सौन्दर्य और तारुण्यपर अधिक विश्वास होता था। मैं आँखोंको नीचे किए सिर्फ़ चार हाथ तक नज़र रखते चलता; लेकिन दूसरोंकी नज़रोंको अपने ऊपर पड़नेसे कैसे रोक सकता था? कभी ऐसा भी हो जाता कि मुझे सामने देखना पड़ता फिर तरुणियोंके मद-विह्वल नेत्र साकांक्ष हो मेरे ऊपर पड़ते। मैं पंडित था, यह दूसरे भिक्षु जानते थे। अनुराधपुरमें राजान्तःपुरसे लेकर चौराहे-चौराहे तकपर खास-खास दिन धर्मोपदेश होते हैं, मुझे भी सघकी ओरसे उसकेलिए आज्ञा हुई। मुझे अन्तःपुरमें जानेकेलिए कहा गया था, किन्तु कह-सुनकर मैंने एक चौराहेकी धर्मशालाकेलिए अनुमति ले ली। यह चौराहा था श्रेष्ठि चत्वर (सेठोंका चबूतरा)। किसी समय यह चत्वर (चबूतरा) रहा हो, किन्तु अब तो अनुराधपुरकी सबसे सुन्दर धर्मशाला (उपदेश-गृह) है। इसके खंभोंमें बड़ी सुन्दर मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। छत स्वर्ण-रंजित ताँबेकी। धर्मासन सुवर्ण-जटित चन्दन काष्ठका, जिसपर उपदेशके वक्त महार्घ आस्तरण और

ऊपर मोतीकी झालरवाला रेशमी चँदवा टाँगा जाता था। यह धर्मोपदेश रात्रिके प्रथम याम के बाद शुरू होते थे और कभी-कभी अंतिम याम तक चले जाते थे। मुझे भी धर्मासनपर बैठे एक-एक याम तक उपदेश देना पड़ता था। बहुत-सी बातोंको तो मैं तोता-रटनकी तरह दुहरा जाता, लेकिन संभव है कहीं मेरी अपनी भावनाएँ भी झलक जाती हों। मैं देखता कि प्रौढ़ सेठानियाँ और तरुण श्रेष्ठि-कुमारियाँ मेरे उपदेशको बड़े ध्यानसे सुनती हैं। शायद ही उनमेंसे कोई निद्रा लेती हो—यद्यपि और धर्मोपदेशकोंके यहाँ एक ही घड़ी में आधी श्रोतृ-मंडली ऊँघने लगती। कितने दिनों तक मैं इसकेलिए बहुत खुश होता था। वहाँ स्त्रियाँ उपोसथ व्रत लेकर आती थीं, इसलिए केशोंमें फूल या अधिक आभूषण शृंगार करके नहीं आ सकती थीं; लेकिन निसर्ग सुंदरियोंको उससे कोई हानि नहीं। सेठानियोंमें श्यामाओंकी अपेक्षा गौरियों-की संख्या अधिक थी, और कोई-कोई तो यवनियों जैसी महाश्वेता दिखलाई पड़तीं। यद्यपि उपोसथके कारण वह अपने उर्द्ध्व शरीर को उत्तरासंग (चादर)-से ढाँककर आती थीं, लेकिन तरुणियाँ उसकी अधिक पर्वाह नहीं करती थीं। उपदेशक अपने श्रोताओंके ऊपर हर वक्त नज़र नहीं दौड़ा सकता। कभी-कभी उसकी नज़र किसी एक जगह विश्राम करना चाहती है। बाज़ उपदेशकोंका तो यह दृष्टि विश्राम-स्थान एक खास दिशा और एक खास दूरीपर स्थिर हो जाता है। मेरेलिए स्थान, दाहिने कोनेपर अवस्थित एक खंभेकी जड़ थी। मेरी नज़र वहीं आकर विश्राम लिया करती थी। मैं पहले समझता था, कि हर रोज़ वहाँ नये-नये चेहरे आते हैं। किन्तु चन्द ही दिनोंमें मालूम हुआ कि निश्चित स्थानपर वे ही निश्चित चेहरे हर बार दिखाई देते हैं। उपदेशके वक्त तक वक्ताके मुखको एकटक देखना हरेक श्रोताका अधिकार है, इसलिए उन आँखोंके भीतर क्या भाव भरा है यह समझना मेरेलिए मुश्किल था। उन चेहरोंमें एक तरुणी भी थी, जिसके गौर मुखपर घन-कृष्ण चिकुर-भार सचमुच चाँद छिपाये काली घटा-सा मालूम होता था। उसकी दोनों भौंहें मिलकर एक विशाल धनुषका रूप लेती थीं। उसके गोल मुखपर विशाल नेत्र, पतले अधर और स्फटिकसे कपोल सौन्दर्यको बढ़ा रहे थे। तरुणीकी आयु बीस सालके आस-पास होगी। सात-आठ उपदेशोंके बाद

मुझे मालूम हुआ कि मैं जब तक धर्मासनपर रहता हूँ, तब तक उसकी दृष्टि कहीं और नहीं जाती। मैं सोचता कि वह मेरे उपदेशके मर्मको खूब समझती है; उसका सारा ध्यान काषाय-प्रतिबिंबित मेरे मुखपर केन्द्रित है। हर अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमाको उपोसथ रखना और विहारमें पूजा तथा त्रिशरण ग्रहण (बुद्ध-धर्म-संघकी शरण) करनेकेलिए आना प्रत्येक बौद्ध गृहस्थका कर्त्तव्य-सा है। वह तरुणी—जो अनुराधपुरके एक बड़े सार्थवाहकी पत्नी थी—नियमपूर्वक उस दिन विहारमें आती और साथमें खाने-पीनेकी चीज़ें भी लिवाए आती। मेरेलिए वह बहुत भक्ति प्रदर्शित कर रही थी, किन्तु मैं या दूसरे भिक्षु यही समझते थे, कि उपासिका (बौद्ध नारी) धर्मकथिक जयके प्रति बहुत श्रद्धा-प्रसन्न है। अच्छे धर्मकथिकोंका सत्कार-सम्मान होना स्वाभाविक है।

कई महीनोंके बाद एक दिन सार्थवाह पत्नीकी दासीने आकर कहा, कि उपासिका बहुत अस्वस्थ हैं और वह परित्राण (बुद्धके सूत्रोंका पाठ)-देशना-केलिए आपको, चार और भिक्षुओंके साथ आनेकी प्रार्थना कर रही है। विहार-नायकसे आज्ञा लेकर हम उपासिकाके घर गए, मंगलकलश रखा गया। उपासिकाकी बैठकमें सूत ताना गया और फिर हम पाँचों भिक्षु बुद्ध-सूत्रोंका पाठ करने लगे। तीन-चार दिन बाद उपासिकाने बतलाया कि अब उसकी तबियत कुछ ठीक हो रही है। परित्राण-देशना महीने भर चलती रही। उपासिकाकी रसोईमें मत्स्य-मांस और तरह-तरहके तेयन व्यञ्जनके साथ सुस्वादु भोजन बनता था। उपासिका अपने हाथसे हमें भोजन कराती। रात जानेके बाद हमारी देशना समाप्त होती और हम विहारमें लौट आते। दूसरे दिन फिर सबेरे जाते। इस तरह देशना एक महीने तक जारी रही। उपासिकाके प्रश्नोंसे मालूम होता था कि वह काफ़ी समझदार है और बौद्ध-सूत्रोंको अच्छी तरहसे पढ़ा है। उसके प्रश्न शील-सदाचार संबंधी नहीं होते थे, बल्कि कभी वह स्मृति प्रस्थान जैसी योग-क्रियाओंको पूछती और कभी प्रतीत्य समुत्पाद (एकके नष्ट होनेपर दूसरेकी उत्पत्ति), अनात्मवाद (आत्मा नहीं है का सिद्धांत) निर्वाण आदिके बारेमें पूछती। मेरे पहले विचारोंमें परिवर्त्तन नहीं हुआ था, लेकिन मुझे अक्सर एक भिक्षुकी स्थितिसे जवाब देना पड़ता। निर्वाणके

बारेमें उसने कहा कि—"आत्मा जैसी कोई नित्य वस्तु नहीं है, भन्ते ! इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है। आत्मा नहीं बल्कि चेतनाका एक प्रवाह है, जो सदा नष्ट होते तथा नया पैदा होते चेतना-बिन्दुओंकी धारामात्र है। धारामें एकत्वका खयाल हो सकता है, लेकिन निर्वाण तो उस अवस्थाको कहते हैं, जबकि यह चेतना-प्रवाह निरुद्ध हो जाता है। भन्ते ! मैं ठीक तो कह रही हूँ ?"

"हाँ यही बात है उपासिका।"

"फिर निर्वाणके बाद कुछ करना-धरना नहीं, कोई हानि-लाभ नहीं। फिर तो हमें निर्वाणसे पहले-पहलेका जो यह जीवन-प्रवाह है, उसीकी चिंता करनी चाहिए।"

"यही बात है उपासिका !"

"भन्ते ! जो यह दुःख-दुःख कहा जाता है, क्या संसारमें केवल दुःख ही है, और कुछ नहीं है ?"

"उपासिका ! भगवान्ने एक बार स्वयं कहा था यदि जीवन केवल दुःख ही दुःख होता, तो मनुष्य एक क्षण भी जीनेकी इच्छा न करता।"

उपासिकाने प्रहसित मुख हो मेरी आँखोंकी ओर देखते हुए कहा—"भन्ते ! दूसरे भिक्षु तो इस तरहके प्रश्नोंके करनेकी अनुमति भी नहीं देते। आप जम्बूद्वीप (भारत)के भदन्त हैं, आप मेरे प्रश्नोंका ऐसे उत्तर दे देते हैं, कि सारी शंकाएँ मिट जाती हैं।"

"प्रश्नोंका रोकना अच्छा नहीं है उपासिका ! बुद्धका धर्म मूढ़ श्रद्धाका पंथ नहीं है।"

"भन्ते ! मैं बचपन हीसे भगवान्के सूत्रोंको पढ़ती आई हूँ। मुझे भी वहाँ यही बात मालूम होती है। जीवन केवल दुखमय नहीं, यह हमें अपने अनुभवसे मालूम होता है, बुद्धि भी इसे ही स्वीकार करती है। हमें जीवनको इसी दृष्टिसे देखना चाहिए, क्या मैं यह ठीक कहती हूँ ?"

"ठीक है उपासिका !"

उपासिकाकी भक्ति और बढ़ती गई। सार्थवाह अपने सामुद्रिक सार्थोंके प्रबन्धमें निपुण था, दीनारोंके ढेर लगानेकी कला उसे मालूम थी; मगर

और बातोंमें वह बिल्कुल कोरा था। उपासिकाकी वजहसे वह भी मेरे पास जब तब आने लगा। हमारी बातोंको वह कितना समझता होगा, इसे तो मैं नहीं कह सकता; किन्तु वह यह समझने लगा कि भदन्त जय बड़े ज्ञानी हैं, और योग-समाधिकी बातोंके करनेसे शायद वह यह भी समझता होगा, कि वह बड़े योगावचर हैं। सार्थवाह पत्नी उपासिका अनेक श्रेष्ठि-सार्थवाह पत्नियोंमें अपने ज्ञान और धर्म-भक्तिके कारण बहुत श्रद्धासे देखी जाती थी, अन्तःपुरकी कुछ रानियाँ भी उससे सौहार्द रखती थीं। सबका परिणाम यह हुआ कि एक सालके बीतते-बीतते मैं अनुराधपुरके सबसे अधिक पूजित भिक्षुओंमें हो गया। चीवर और दूसरे उपायनका मेरे पास ढेर लग जाता था, मैं उन्हें संघके भंडारमें भेज देता। सार्थवाह-पत्नी एक बार बड़े सुन्दर चीनांशुकका चीवर लिए मेरे पास आई। ऊपरके आवरणके हटा देनेपर वहाँ इंद्रगोप (बीरबहूटी) की तरह अति अरुण सुन्दर चीवर था। उपासिकाने हाथ जोड़कर कहा—"भन्ते! उपासकके पास यह बहुमूल्य चीनांशुक अभी-अभी चीनसे आया है। मैंने इसे अपने हाथसे काटकर सिया है। भन्ते! अनुकंपाकर इस चीवरको स्वीकार करें।"

मैंने कहा—"उपासिका! मैं पांसुकूलिक बनना चाहता हूँ, इसलिए रास्तेके फटे चीथड़ोंको जमा करके अपनेलिए चीवर तैयार करता हूँ।"

उपासिकाने बार-बार आग्रह किया। जब नहीं माना, तो उसने कहा, कमसे कम एक बार इस चीवरको धारण कर लें, मैं एक क्षण देखकर कृतकृत्य हो जाऊँगी। मैंने उपासिकाके दिलको तोड़ना नहीं चाहा और कोठरीमें जाकर उसी वक्त चीवर पहन बाहर चला आया। उपासिकाने स्फारित नैनसे मेरी ओर देखा। उसके सारे मुख-मण्डलपर प्रसन्नताकी किरणें झलक रही थीं। उसने अंजलिबद्ध होकर कहा—

"बस भन्ते! इतनी ही साध थी। देखना चाहती थी कि भगवान् चीवर धारण करके कैसे लगते होंगे। आज आँखें तृप्त हो गईं।"

मुझे अपनेलिए यद्यपि यह पसंद नहीं आया, किन्तु यह जानता था, कि भक्तोंकी भक्तिमें यह बिल्कुल स्वाभाविक बात है। यद्यपि नये चीवरोंको पहननेकेलिए मैं कभी तैयार नहीं हुआ, लेकिन धीरे-धीरे उसने मुझे इस बातपर राजी

कर लिया, कि मैं उसके यहाँ भोजन किया करूँ। विहारको वह इतना दान-दक्षिणा देती थी, कि सभी भिक्षु उसकी प्रार्थनाको माननेकेलिए तैयार रहते थे। मैंने जब पहिले उसकी प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया, तो मेरे सहवासियोंने मुझे कहना शुरू किया—"श्रद्धाप्रसन्न उपासिकाके दिलको नहीं तोड़ना चाहिए, इससे संघकी आयकी क्षति होती है।"

मैं यह जानता था कि संघकी आयमें बाधा डालना भिक्षुकेलिए एक अपराध है, और यहाँ अपनेलिए भोजन न स्वीकारकर मैं संघके आयको हानि पहुँचा रहा हूँ या नहीं इसके बारेमें मैं बहस करनेकेलिए तैयार नहीं था। मैंने अन्तमें उपासिकाका निमंत्रण स्वीकार किया। मैं रोज़ मध्याह्न-भोजनकेलिए उसके घर जाता।

समझता हूँ, पहिले-पहल उपासिकाकी भक्तिमें कोई दूसरा भाव नहीं था, वह कुछ अधिक समझदार धर्म-प्रेमी नारी थी। मेरी विद्या और प्रतिभासे जितना प्रभावित हुई थी, उससे भी ज्यादा मेरे सीधे-सादे रहना और निस्पृहतासे ? लेकिन जब हम दोनों अधिक पास आने लगे तो वह निस्संकोच मेरे मुँहकी ओर घंटों देख सकती थी। न जाने कब उसका धार्मिक प्रेम दूसरे रूपमें परिणत हो गया ? लेकिन इतना मैं कहूँगा कि उसने अपने ऊपर बहुत संयम किया। इसका एक परिणाम यह हुआ कि वह अब उतने प्रश्न नहीं करती थी। बोलती बहुत कम थी, किन्तु मेरे पहुँचते ही आसन बिछाकर बैठाती। नये-नये भोजन अपने हाथसे परोसती। अनुराधपुरमें—और यही बात सारे सिंहलद्वीपकी है—सर्दी तो कभी होती नहीं, वर्षाके समय कुछ कम, नहीं तो बारहों महीना गर्मी ही रहती है। उपासिका खाना परोसनेके बाद ही व्यजन करने लगती और उसकी दृष्टि मेरे चेहरेपर रहती। मैं भी अब उसकी ओर देखनेमें कम झिझकता था। मुझे उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें एक खास तौरका अन्तर्लीन सौन्दर्य दिखलाई पड़ता था। मैं सोचता था, धर्ममें तन्मय हो गये लोगोंकी ऐसी ही अवस्था होती है।

उस समय सार्थवाह चम्पक (चम्पा) द्वीपमें कई पोतोंका सार्थ (कारवाँ) लेकर गया था। मैं अब भी उसी तरह उपासिकाके यहाँ भोजन करने जाता था। एक दिन मध्याह्न-भोजनके बाद जब मैं चलने लगा, तो कभी-कभीकी तरह

आज भी उपासिकाने थोड़ा विश्राम करनेकेलिए कहा। वैसे जब मैं कभी विश्रामकेलिए ठहर जाता, तो घरका कोई दास पंखा झलनेकेलिए आता। लेकिन, आज उपासिकाने खुद अपने हाथमें पंखा लिया था। मैं उसे देखकर आसनपर उठ बैठा। उपासिकाके चेहरेपर विषादकी रेखा दौड़ गयी और उसकी आँखोंसे आँसूकी धार बह चली। मैंने घबड़ाकर पूछा—"उपासिका! क्यों, क्या बात है तुमतो धीर-गम्भीर हो?"

"मैं धीर गंभीर रही हूँ भन्ते! उसीसे महीनोंसे अपनेको रोक सकी हूँ। स्त्रियोंके प्रेमका वेग पुरुषोंसे बहुत अधिक होता है, किन्तु संकोच भी उसी मात्रामें होता है। कबसे प्रारंभ हुआ नहीं कह सकती, किन्तु आज कई महीनेसे मैं आपके प्रेममें पागल हूँ।"

योग-वैराग्य, धर्म-दर्शनने मेरे मनपर कभी नहीं विजय प्राप्त की। लेकिन अपने जीवनके मेरे कुछ स्वनिर्मित नियम थे, जिनको दृढ़ताके साथ पालन करनेकी कोशिश करता था। युवती-कटाक्ष मेरे हृदयको वेधता नहीं, यह बात नहीं थी। मुझे कभी काम-वासना सताती न हो यह भी बात नहीं; लेकिन मैं यह नहीं चाहता था, कि अपने जीवनके दो पहलू रखूँ—एक अपनेलिए और एक बाहर दिखलानेकेलिए। मैंने उपासिकासे कहा—"भद्रे! मैं योग-वैराग्य, ब्रह्मचर्य निर्वाणके प्रति वैसी आस्था नहीं रखता। मैं यह भी नहीं मानता कि हमारे कर्मोंका तौलने वाला, फ़ैसला सुनानेवाला कहीं और कोई देवता बैठा हुआ है। मुझे यह भी विश्वास नहीं है कि मरनेके बाद दूसरा जन्म होता है। ऐसा विचार रखते हुए भी मैं कहूँगा कि हमें प्रेम करनेका अधिकार नहीं है।"

"उपासिका जिस वक्त मेरे पहले वाक्योंको सुन रही थी, उस वक्त उसके चेहरेपर खुशी दौड़ने लगी थी और उसके आँसू सूख गए थे। अन्तिम वाक्य-को सुनकर मुखपर निराशा ज़रूर फिरती दिखाई दी, किन्तु बिना आँसू निकाले हुए वह बोली—"मैं बुद्धिसे समझकर किसी बातको मानती हूँ, मैंने समाजके सदाचारको बड़ी कठिन परिस्थितमें पाला है। जानते हैं मेरी क्या आयु है?"

"वैसे होता तो मैं सोलह सतरहकी कहता, किन्तु तुम्हारे ज्ञान, तुम्हारे प्रश्नोत्तरको देखकर मैं बीसकी कहूँगा।"

"नहीं मेरी आयु पचीस सालकी है। और मेरे सौन्दर्यके बारेमें आपकी क्या राय है?"

"किसी भी देशमें तुम्हें अत्यंत सुन्दरी नारियोंमें गिना जायेगा।"

"भरुकच्छ (भड़ौंच)में एकसे एक सुन्दर शक, यवन-कुमारियाँ हैं, मैं अपने नगरकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी समझी जाती थी। सार्थवाहका भरुकच्छमें भी कारबार है। मेरे पिता साधारण श्रेष्ठी थे। सार्थवाहने जब मुझसे ब्याह करनेकी इच्छा प्रकट की, तो वह राज़ी हो गए। कन्याओंको ब्याहके बारेमें कुछ कहनेका अधिकार नहीं होता। यदि अधिकार होता भी, तो शायद मैं इन्कार न करती। सार्थवाह मुझसे बारह-चौदह वर्ष बड़े ज़रूर रहे होंगे, लेकिन उनका शरीर स्वस्थ था, और अभी बूढ़े नहीं थे—मैं उस वक्त सतरह सालकी थी। मैं पतिके साथ अनुराधपुर आई जिस घरमें लक्ष्मीका वास है, वहाँ किसी चीज़की कमी नहीं। लेकिन तरुणीका उतनेसे ही सन्तोष नहीं हो सकता। मैं पति-सुख-वंचिता थी।"

"लेकिन तुम्हारे पति तो मौजूद थे?"

"पति मौजूद थे और पहिले मैं समझती थी कि वह अभी व्रत-उपोसथमें हैं। उन्होंने कहा भी कि किसी सिद्धने अपुत्र योग हटानेके वास्ते विशेष नियम पालन करनेकेलिए कहा है। मैं बहुत दिनों तक इसी भ्रममें रही। सार्थवाहके दो-तीन तरुण मित्र हमारे घरमें आते थे। उनको मुझसे मिलनेकी पूरी स्वतंत्रता थी। कभी-कभी सार्थवाह लम्बी यात्रापर चले जाते थे, उस वक्त भी उनके तरुण मित्र आते थे। सार्थवाहकी आज्ञा थी, इसलिए मैं सुरा-कुतुप उनके सामने रख देती, वह गानेका आग्रह करते तो एकाध बार गा भी देती। लेकिन उन तरुणोंमेंसे एकने—जो निस्संदेह अधिक सुन्दर था अधिक स्वस्थ था—मुझसे छेड़-छाड़ शुरू की। मैंने उस दिनसे उनकेलिए दरवाज़ा बन्द कर दिया। सार्थवाहके आनेपर मैंने शिकायत की। मुझे आश्चर्य हुआ, जब देखा कि ग़ुस्सा होनेकी जगह वह हँस पड़े।"

"कैसा पति!" मैंने कहा।

"मैंने जब कुछ और उत्तेजित हो कहना शुरू किया, तो सार्थवाहने बड़े शांत भावसे कहा—'भद्रे! क्रोध मत करो, मैंने तुमसे ब्याह किया, अपने

वंशको चलानेकेलिए, नहीं तो यह शत सहस्र दीनारोंकी सम्पत्ति राजाको हो जायेगी।' मैंने झुँझलाकर कहा—'फिर तुम भागे-भागे क्यों फिरते हो, क्या वंश ऐसे ही चलेगा?' इसपर उन्होंने खोलकर कह दिया, कि मुझमें पुंसत्व नहीं है। मेरे हृदयको बहुत धक्का लगा। मनमें इतना क्रोध आया, और चाहा उसका गला दबाकर मार डालूँ। लेकिन मैं अपनेपर संयम कर सकती हूँ। ऐसी अवस्थामें राजविधानके अनुसार सार्थवाहको छोड़कर मैं दूसरेसे ब्याह कर सकती थी, लेकिन करना नहीं चाहा।"

"वह तो अच्छा होता।"

"बुरा न होता, यह मैं मानती हूँ। लेकिन भिक्षुणियोंके जीवनको मैं बड़ी स्पृहाकी दृष्टिसे देखा करती थी। मैंने उस वक्त सोचा, चलो, इसी वेशमें मैं भिक्षुणी जीवन बिताऊँगी। ब्याह हुए आठ साल हुए, मगर इससे पहले मैंने कभी अपने दिलको अपने हाथसे जाने नहीं दिया।"

"आज भी क्यों नहीं उसी संकल्पपर दृढ़ रहती हो?"

"अब मेरे संकल्पमें वह शक्ति नहीं है। मैं अपनेको बिल्कुल निर्बल पाती हूँ। अच्छा हुआ होता यदि मैं आपकी धर्मदेशनामें न गई होती। महीनों तक आपको बार-बार देखनेकेलिए मेरे मनमें उत्सुकता रहती, मैं उसे तृप्त करती। उस वक्त मैं समझती थी, कि मेरे भाव बहुत उच्च हैं, उसमें कहीं कोई मैल नहीं है। लेकिन जान पड़ता है, आदमी अपनेको भ्रममें रखनेकी अमित शक्ति नहीं रखता।"

मैंने हँसते हुए कहा—"देर तक आत्म-वंचना नहीं कर सकता।"

"ठीक कहा। आत्म-वंचना क्या करेगा। मैं अपने हृदयसे समझती हूँ, जान पड़ता है सालोंका संचित वेग हृदयको भीतर ही भीतर चूर-चूर कर रहा है, आपने मेरी चेष्टाओंसे पहिले ही समझ लिया होगा। चीनांशुकका चीवर पहने देखकर मेरी आँखोंमें जो आँसू आए थे, उसके वास्तविक अभिप्रायको आप समझ गए होंगे?"

"मैंने जाननेकी कोशिश नहीं की। और हम लोगोंकी धर्मचर्चा जिस तरह चलती थी, उससे मैं ऐसी आशा भी नहीं रखता था।"

"तो आप मुझे पतिता नारी समझते होंगे।"

"मैं किसी नारीको पतिता नहीं समझता, पुरुषको पतित समझ सकता हूँ।"

"पुरुषके प्रति ऐसा दुर्भाव क्यों?"

"क्योंकि आजकी नारी जो कुछ है उसके बनानेमें पुरुषका ही हाथ है; नारीकेलिए कोई और नहीं यही पुरुष विधाता है। तुम्हें हाथ-पैर बाँधकर किसने यहाँ डाला।"

"पुरुषने।"

"प्राचीन युगसे चली आती कोई व्यवस्था है जिसके अनुसार नपुंसक पतिको तुम छोड़ सकती हो। लेकिन तुमने अपने यौवनके आठ वर्ष यहाँ बिताये हैं अब दूसरे पुरुषको स्वीकार करनेपर यह जीवनके आठ वर्ष कलंकके रूपमें तुम्हारे साथ जाएंगे। मैं तुम्हें पतिता कहनेका ख्याल भी मनमें नहीं ला सकता।"

"अपने आठ वर्षके जीवनपर जब विचार करती हूँ तब मुझे कोई भी ऐसी घटना नहीं मालूम होती, जिसकेलिए मैं लज्जित होऊँ, सिवा इस आजकी दुर्बलताके।"

"मैं इसे दुर्बलता नहीं कहता।"

तरुणीने अत्यन्त प्रसन्न हो मेरे पैरोंको अपनी गोदमें लेकर कहा—"प्रियतम!"

मैंने धीरेसे अपना पैर हटा लिया और बड़े शान्तभावसे कहा—"सुमुखि! इतनी आतुर मत होओ, पहले मेरी बातको सुनो।"

उसका चेहरा कुछ उदास हो गया और वह मेरे मुखकी ओर निहारती रही। मैंने कहा—"मैं विवाह-व्यवस्था तकपर विश्वास नहीं करता। मैं मानता हूँ कि देव-कन्याओंकी तरह किसी समय मानव-कन्याओंमें व्याहकी प्रथा न थी। शायद आगे भी ऐसा समय आये, जबकि उसकी आवश्यकता न हो।"

"अर्थात् मुक्तप्रेम।"

"हाँ मुक्त प्रेम, मैं उसे बुरा नहीं मानता।"

"आप उसे अच्छा मानते हैं?"

"हाँ, अच्छा मानता हूँ, किन्तु मुक्तप्रेमकेलिए मुक्त समाज चाहिए। आजके बहुजनको मुक्त नहीं कहा जा सकता, इसीलिए अभी मुक्तप्रेमको मैं बुरा समझूँगा।"

"बुरा?"

"राजाओंका प्रेम क्या मुक्तप्रेम नहीं है? वह किसी भी श्रेष्ठि-सार्थवाह या सामन्त-पुरोहितकी परिणीता पत्नीको एक रात्रिकेलिए अपनी प्रेयसी बना सकता है, क्या कोई इनकार कर सकता है?"

"इनकार नहीं कर सकता, स्वीकार करनेपर धन-लाभ, पद-लाभ।"

"और इनकार करनेपर सर्वनाश।" फिर इनकार-स्वीकारका सवाल ही नहीं आता। परदेके भीतर यह बिल्कुल खुली हुई बात है। राजा और उसके कृपा-पात्र किसी विवाह-बंधनको नहीं मानते, लेकिन क्या इसे वह मुक्तप्रेम कह सकते हैं, जिसको कि मैंने अच्छा कहा।"

"तो···" कहते हुए उसने लंबी सांस ली।

"यदि मुक्तप्रेमका युग होता, तो मैं तुम्हें निराश न करता।"

"तो क्या मुझे आप ठुकरा देंगे?"

"ठुकरानेका शब्द कहकर तुम मुझपर नारी-आपमानका अपराध लगा रही हो।"

"अपराधसे बचना आपके हाथमें है, आप मुझे निराश न करें।"

"निराश करनेकेलिए मैं मज़बूर हूँ। मैं कितनोंकी आशा पूरी कर सकूँगा। और फिर मैं अपनेलिए एक नियम रखता हूँ। मुझे छिपकर तुमसे प्रेम करना होगा, क्या मैं उस वक्त अपने आत्म-गौरवको क़ायम रख सकूँगा?"

"आप मुझे समझते होंगे। मेरा प्रेम क्षणिक नहीं होगा, मैं आपके साथ चलनेकेलिए तैयार हूँ।"

"फिर मैं यहाँ अनुराधपुरमें अपनेलिए क्या छोड़ जाऊँगा, लोग मुझे क्या कहेंगे। अभी मैं इतना कहता हूँ। तुम अपनी और मेरी दोनोंकी भलाईकी दृष्टिसे इसपर सोचना। मैं जब तक अनुराधपुरमें रहूँगा तब तक, यदि तुम्हें उज्र नहीं होगा, तो यहाँ आता रहूँगा।"

मैं वहाँसे चला आया। देखता था कि कितने ही और भी भिक्षु थे जो ऐसे प्रेमको त्याज्य नहीं समझते। कितनी और भी भिक्षुणियाँ थीं, जिन्होंने अपने नीरस जीवनको सरस बनानेका रास्ता निकाल लिया था। मैं उनमेंसे एक नहीं होना चाहता था। यदि मुझे प्रेम करना था, तो मेरेलिए बाधा नहीं थी। मैं खुलकर प्रेम कर सकता था।

मैं अभी किसी निर्णयपर नहीं पहुँचा था, कि इसी समय चन्द्रगुप्तके राजा होनेकी खबर आई। मैंने तय किया कि अब यौधेय-भूमिको मेरी आवश्यकता होगी।

(१५)

मित्रलाभ

सिंहलसे मैंने शूर्पार्क [रक ?] (सोपारा)केलिए जहाज़ पकड़ा था, अभी मैं फिर अपने प्रकृत वेषमें न था, यद्यपि मेरा दिल डाँवाडोल हो चुका था। शूर्पार्क अपरान्त (अरब) सागरके तटपर है। किसी समय पूर्वमें ताम्रलिप्तिकी तरह पच्छिममें शूर्पार्क ही सबसे बड़ा पत्तन (बन्दरगाह) था, लेकिन अब कई और पत्तन हो गए हैं। शूर्पार्क विदर्भराज वाकाटक, पृथ्वीषेणके राज्यमें है। रास्तेमें डाकुओंका भय बना रहता है, इसीसे पता लगता है कि वाकाटक शासन कितना निर्बल है। मुझे अब उत्तरकी तरफ़ जाना था, इसलिए टेढ़े-मेढ़े रास्तोंको लेना पड़ा। तीन योजन दक्खिन जानेपर मैं एक बड़े विहार (कनेरी)में पहुँचा। इसमें पचासों कोठरियाँ और एक विशाल उपोसथागार (संघ-गृह) हैं, और सभी पहाड़ काटकर बनाये हुए हैं। उपोसथ घर तो एक विशाल शाला है, जिसमें हज़ार आदमी बैठ सकते हैं। ऐसी ही विशाल शालाओंको पहाड़में खुदी देखकर लोगोंने अपने मनसे कुछ कल्पना की, जो दूर जानेपर इस प्रसिद्धिमें परिणत हो गई कि "वहाँ तो असुरोंने पहाड़ खोदकर प्रासाद बनाए, मय दानवने स्वयं अपने हाथसे महल बनाया। राजा लोग इस विहारके भिक्षुओंका हमेशा बहुत सम्मान करते रहे हैं और श्रेष्ठि-सार्थवाहोंकी तो इनमें अगाध श्रद्धा रहती आई है, इसीका परिणाम है पहाड़ काट-काटकर इतने प्रासादों और महलोंका खड़ा होना। चैत्यशालाके बाहरकी

और दाताओंकी चार मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं, जिनमें दो पुरुष और दो स्त्रियाँ हैं। अभी इस चैत्यशालाको खुदे दो सौ वर्षसे अधिक नहीं हुए। लोगोंको इन राजा-रानियोंका अच्छी तरह पता है, किन्तु यही बात सिंहल और गन्धारमें पहुँचकर मय दानव और असुरोंकी कथा बन गई है। सबसे बड़ी बात इन गुहाओंमें यह है, कि हर गुहाके नीचे जल जमा करनेकेलिए चहबच्चा खुदा हुआ है। इन चहबच्चोंमें वर्षाका पानी पहाड़से ढुलककर जमा होता रहता है और साल भर तक शीतल और मधुर जल लोगोंको अपने पैरके नीचे मिलता रहता है। यदि इस जलका इन्तिज़ाम न होता, तो कोई इस विहारमें रहता भी नहीं, क्योंकि नीचेके नालेमें पानी बराबर नहीं रहता। यहाँकी गुहाओंमें जगह-जगह मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं, जिनमें कुछ तो बहुत ही सुन्दर हैं। भिक्षुओंमें विद्या-प्रेम है और विनय-अनुपालनमें इनकी ख्याति है। कहते हैं, बोधिसत्त्व (पूर्वजन्मके बुद्ध) उस समय नागकुमारके रूपमें पैदा हुए थे, उन्होंने दूसरोंके प्राण बचानेकेलिए अपना शरीर भक्ष्य बनाकर गरुड़को अर्पण किया। जिस जगह नागकुमारने अपना शरीर दान दिया था वह इसी पर्वतके आस-पास थी।

सिंहल छोड़नेकेबाद प्रतिष्ठान (भूसी) पहुँचनेमें मुझे दो सालसे अधिक लगे। यह सारा समय अधिकतर वाकाटक (विदर्भराज्य वंश) और महाक्षत्रप (मालवराज)के शासित देशोंमें घूमनेमें लगा था। क्षत्रप और वाकाटक दोनों राजाओंको समुद्रगुप्तने परास्त किया था और वाकाटक राजा रुद्रसेन तो रणमें ही मारा गया था, लेकिन समुद्रगुप्तने इन राजवंशोंका उच्छेद नहीं किया। जब उसका शासन बुढ़ापेके कारण कुछ शिथिल हो गया, तो यह फिर स्वतंत्र हो गए। वाकाटक बहुत बलशाली राज्य है, जो नर्मदासे कृष्णा तक फैला हुआ है। उससे दक्खिन कांचीके पल्लवोंका ज़ोर है। उत्तरापथ (पंजाब)में अब भी देवपुत्रशाही कुषाण शासन करते हैं, पूर्वमें गुप्तोंका शासन है; और मालव-गुजरातमें शक-महाक्षत्रप। इन पाँच बड़े राजाओंके बीच भारतमें यौधेय ही ऐसे हैं, जिन्होंने गणशासन प्रथाको क़ायम रखा है। रास्तेमें मैंने आंध्र राजाओंके समय बने बहुतसे गुहा-विहारोंको देखा। कितनोंमें तो अब भी वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावी, (१५४ ई०) यज्ञ शातकर्णी आदि आंध्र राजाओंके शिला-लेख हैं। इन्हें हुए चार-पाँच सौ ही वर्ष हुए, तब भी दूर-दूरके स्थानों-

में उन्हें आदमियोंकी नहीं देवताओं और असुरोंकी कृति समझा जाता है। जब आज ही यह हालत है तो हज़ार-दो हज़ार वर्ष बाद उनके बारेमें न जाने कितनी गप्पें गढ़ी जायेंगी।

रास्तेमें मैं उज्जयिनी कुछ महीने रहा। शकोंने इस नगरीको सजानेमें कोई क़सर उठा नहीं रखी है। समुद्रगुप्तने पिछले महाक्षत्रपको अपनी अधीनता स्वीकार करनेकेलिए मजबूर किया था, लेकिन समुद्रगुप्तके शासनके ढीले होते ही महाक्षत्रप रुद्रसिंहने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। जबसे चन्द्रगुप्तने देवपुत्रशाहीको मारकर फिर गुप्त वंशकी राजलक्ष्मीको ऊँचा किया, तबसे महाक्षत्रपको भी डर हो चला है और वह अपनी सेना और कोष हीको नहीं बढ़ा रहा है, बल्कि प्रजाको भी सन्तुष्ट रखनेकी कोशिश कर रहा है। अवन्तिपुरीका अन्तःपुर इतना छोटा कभी नहीं रहा होगा, जितना कि महाक्षत्रप रुद्रसिंहका है। उत्तरमें मालवगणसे क्षत्रपोंका बराबर झगड़ा रहा। क्षत्रप मालवोंको दबा रखना चाहते थे और मालव जैसे ही क्षत्रपको विलासितामें मग्न होते देखते, वैसे ही उनके जुएको उठा फेंकते। रुद्रसिंह मालवोंके साथ आजकल बड़ी उदारता दिखला रहा है। वाकाटक पृथ्वीषेणने क्षत्रपके कुछ प्रदेशको दबा लिया है, जिसके कारण दोनोंका वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा है। क्षत्रप समझता है कि चन्द्रगुप्त सोया नहीं है, वह दाँव ढूँढ़ रहा है और वाकाटक-क्षत्रप वैमनस्य उसकेलिए सबसे अच्छा अवसर है।

मुझे अभी यौधेय लौटनेकी जल्दी नहीं थी, क्योंकि पहिले यह देखना ज़रूरी था, कि हमारे पड़ोसी क्या रुख़ रखते हैं। पल्लव हमसे बहुत दूर था, और चंद्रगुप्तसे अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं था, इसलिए हमें बाक़ी बाहरी और भीतरी परिस्थितियोंको ही समझना था। बौद्ध भिक्षु राजनीतिसे अलग रहना चाहते हैं, शताब्दियोंके अनुभवने उन्हें बता दिया है, कि राजवंशोंके उगते-डूबते सितारेके साथ अपनेको बाँधना हानिकी बात है। लेकिन, तो भी देश-देशान्तरोंके भिक्षुओंका समागम बौद्ध-विहारों हीमें देखनेको आता है। मैं उज्जयिनीके जिस विहारमें रहता था, उसमें तुषार, कुस्तन (खोतन) पारस्यसे लेकर सिंहल, यवद्वीप, और चीन तकके भिक्षु थे। उनमें कितने ही अधिकार-च्युत राजवंशोंके कुमार भी थे और कितने ही राजनीतिक

शरणार्थी भी। राजाओंकेलिए विहारोंका यह सर्व समागम नुक़सानकी भी चीज़ थी, तो भी वह सावधानी रखते थे। उनके कितने ही गुप्तचर भी भिक्षु-वेषमें वहाँ रहा करते। सिंहल छोड़नेके बाद मेरे शरीरका चीवर अब सिर्फ़ राजनीतिक उद्देश्यसे ही था। कितने ही समय तक मैं अपने विचारोंको अपने हृदयमें छिपाए सब बातोंको आँख खोलकर देखता रहा। मैं सिंहलके विहारका भिक्षु था, जो कि अपने भिक्षु-नियम-पालनमें कड़ाई रखनेकेलिए प्रसिद्ध हैं, इसलिए भी लोग मुझे कुछ अधिक सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। कितने ही तो समझते थे, कि मैं द्वीपान्तरीय हूँ, इसलिए गुप्तचरोंकी निगाह मेरी ओर ज़्यादा नहीं पड़ती थी। वह यह भी जानते थे कि भिक्षु जय विद्वान् है। मैंने वसुबन्धुके सिखलाए शास्त्रोंका परिचय देना पसन्द नहीं किया, लेकिन विनय-पिटकके पांडित्यको प्रकट होनेमें बाधा नहीं डाली। मेरे पास कितने ही भिक्षु विनय पढ़नेकेलिए आने लगे उनमें एक था माधवसेन।

माधवसेन मालवगणका क्षत्रिय था, शरीरसे खूब स्वस्थ और बलिष्ठ, बुद्धि भी अच्छी। तीव्र वैराग्यके साथ वह भिक्षु बना था और दिलसे चाहता था कि तथागतके बनाए एक-एक नियमका पालन करूँ। अवन्तिके विहार अधिकतर महायानके प्रभावमें थे, जिसके कारण विनयके बहुतसे नियमोंकी वहाँ अवहेलना होती थी। धीरे-धीरे माधव और मेरा सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होगया। वैसे होता तो नहीं कह सकता, मैं कभी अपने हृदयको उसके सामने खोलनेकी हिम्मत करता, और उसको भी तीव्र वैराग्य मेरी संसारी बातोंको कानके भीतर लेनेकी आज्ञा देता! लेकिन भिक्षु-संघ और उसके विनयमें हर जगह गणतंत्रों-की छाप थी। मैं पढ़ाते वक्त स्वयं विद्यार्थियोंके भीतर इतनी जिज्ञासा पैदा कर देता कि वह और जाननेकेलिए उत्सुक हो जाते; इसपर मुझे विनयपिटककी टीकाओंमें उपलब्ध कुछ और बातें बतलानी पड़तीं। लेकिन मैं यह ध्यान रखता था कि उन विचारोंको वर्त्तमान राजनीतिसे न जोड़ा जाय। माधवसेन पीछे एक बार बल्कि कहने लगा था—"भायर जय! उस वक्त ऐसा मालूम होता था, कि तुम निर्वाणकी तरह गण नामकी भी किसी लोकोत्तर-व्यवस्थाका वर्णन कर रहे हो। और अपने यौधेय नामको कितनी तत्परतासे छिपा रखा था!"

"माधव ! क्या तुम जानते नहीं थे, कि हमारे विहारमें क्षत्रप, वाकाटक, के ही नहीं देवपुत्रशाही तकके गुप्तचर विद्यमान थे। इसलिए मुझे बड़ी सावधानी रखनेकी जरूरत थी। सभी जानते हैं कि यौधेय अंतिम समय तक यौधेय रहेंगे। साथ ही यह भी सोचो, यदि मैं निर्वाण, त्रायस्त्रिंश (स्वर्ग) लोकसे ज़रा भी नीचेकी बात करता, तो तुम तो दो ही दिनमें छूमंतर हो जाते।"

"यह ठीक कहा, वैराग्यने मुझे पागल बना दिया था। अब सोचता हूँ इसमें कोई और कारण नहीं, कारण था मालवोंके नेताओंकी जघन्य स्वार्थान्धता तथा पतन और उसके कारण गणकेलिए मेरे दिलमें निराशा। मैं इस लोकसे निराश और अशांत था इसलिए किसी लोकोत्तर वस्तुमें शान्ति ढूँढ़ रहा था।"

"जैसे कबूतर बचनेका प्रयत्न न करके बिल्लीके सामने आँख मूँद लेता है। क्या आँख मूँदके मरना अच्छा है या बचनेके प्रयत्नमें कुछ करके मरना?"

"कुछ करके मरना अच्छा है।"

"हर पीढ़ीमें हज़ारों समर्थ पुरुष कबूतरकी नीतिका पालन करते आये हैं। यदि उन्होंने उसकी जगह परिस्थितियोंका बदलनेकी कोशिश की होती तो दुनिया ज़रूरत बेहतर बनी होती।"

"दुनिया बदलनेकेलिए तरद्दुद करनेसे उन्होंने लोकोत्तर साधना कोई ज्यादा आसान समझा, लेकिन भायर जय! मैं कहूँगा कि तुमने मेरे जीवनको मुफ़्तमें लुटनेसे बचा लिया।"

अवन्तिपुरीके सालभरके निवासका लाभ कुछ राजनीतिक परिस्थितिका ज्ञान हुआ और दूसरा लाभ था माधवसेन।

चन्द्रगुप्तके मनसूबेकी कुछ-कुछ झलक हमें मालूम होने लगी थी। वह पहिले आर्यावर्त्त (युक्त प्रान्त-बिहार) में अपनी जड़को दृढ़ करनेमें लगा हुआ था। उसके पहले ही क़दमको देखकर पड़ोसी समझ गए थे कि उन्हें कैसे आदमीसे पाला पड़ा है। मुझे भास होने लगा था, कि घरको मज़बूतकर चंद्रगुप्त फिर एक बार बाहरके सर उठानेवाले सामन्तोंकी ओर नजर दौड़ायेगा। मुझे यह भी जानना था, कि यौधेयोंके प्रति उसका रुख क्या है। इसीलिए मुझे एक बार उससे मिलनेकी ज़रूरत महसूस हुई।

अब माधवसेन मेरा साथी था। हम दोनोंके उद्देश्य एक थे और साल भर साथ रहनेसे एक दूसरेके और नज़दीक आ गए थे। अवन्तिपुरीसे हम काकनादबोट (साँची) महाविहार गए। वहाँके सुन्दर चैत्य और उनके मनोहर तोरणको देखकर कलाकार हृदयको बहुत सन्तुष्ट होना ही चाहिये। आज भी जो मूर्त्तियाँ या चित्र बनाए जा रहे हैं, उनकेलिए हमारी पीढ़ीको भविष्यके सामने लज्जित होनेकी आवश्यकता नहीं है, तो भी मैं कहूँगा कि काकनादबोटके कलाकारोंने मूर्त्ति-निर्माणमें कमाल किया है। विदिशा (भेलसा) अब भी पासमें है। अब भी वहाँ कितने ही दन्तकार हैं, लेकिन उनके पूर्वजोंने पाँचसौ साल पहले जो एक तोरण बनाया था, वह उनकी ही नहीं हमारे आजके कलाकारोंकी एक अनुपम और अमर कृति है; विशेषकर स्त्री-मूर्त्ति बनानेमें तो उन्होंने कमाल किया है। यह मूर्त्तियाँ बिल्कुल स्वाभाविक हैं, उनके अवलोकनके वक्त मुझे बाज़ वक्त यवन-कला-कारोंका स्मरण आता था। माधवसेन कह रहा था—"ये चैत्य, भिक्षुओंके विहार निर्वाण और वैराग्यका संदेश देते हैं, फिर यहाँ स्त्रियोंके इतने मादक सौन्दर्यको क्यों आंकित किया गया?"

"तुम क्या समझते हो माधव!"

"मैं समझता हूँ कि ये लोग पृथ्वी छोड़कर उड़ना चाहते हैं, किन्तु पृथ्वी उन्हें खींचकर धरतीपर लाती है।"

"यह सौन्दर्य उनके निर्वाणसे कहीं अच्छा और अधिक ठोस है। एक बात और। आज जो स्त्रियोंके रूप अंकित हो रहे हैं, उनमें उनका सौन्दर्य अधिक कोमल भले ही मालूम होता हो, लेकिन पाँच सौ वर्ष पुराने इन चित्रोंमें नारीके मुख-मंडलमें सौन्दर्य ही नहीं है, बल्कि उसमें एक तरहका गर्व, एक तरहकी स्वतंत्रता झलकती है।"

"और वेश-भूषामें कितना परिवर्त्तन है। क्या उस वक्त स्त्रियाँ भी ऊष्णीष (पगड़ी) पहनती थीं?"

"तुम सामने ही देख रहे हो। हाथोंमें कितनी अधिक चूड़ियाँ हैं, कमरमें कितनी बड़ी रसनादाम है।"

"पैरोंमें भी कितने अधिक कड़े पहननेकेलिए आजकी कोई स्त्री तैयार नहीं होगी। पुरुष भी उस वक्त कितने भारी-भारी कुण्डल पहनते थे। कंधे तक लटके उनके कान कौनसे सौन्दर्यको बढ़ाते थे?"

"आभूषण इसी तरह छोटेसे बड़े बनते जाते हैं और अन्तमें लोगोंको मालूम होने लगता है कि यह सौन्दर्यके नहीं बल्कि भारकी वृद्धि करते हैं फिर लोग उसे छोड़ देते हैं। परिवर्त्तनका यही नियम है इसी तरह चलता रहता है। आज दशार्ण (बुन्देलखण्ड)की स्त्रियाँ इन्हीं मूर्त्ति विम्बित नारियोंकी संतान हैं, किन्तु अब उन्होंने अपनी पूर्वजाओंकी कितनी ही बातोंको छोड़ दिया है। पीढ़ियोंके बाद कितनी ही बातोंमें आमूल परिवर्त्तन हो जाता है।"

हम काकनादबोटसे विदिशा गए फिर एरिकिन (एरन) होते हुए पूर्वकी ओर बढ़ते गए। मणिघर (मैहर)के पास हमें एक और सुन्दर चैत्य मिला। यह भी काकनादबोटकी तरह ही सुन्दर-सुन्दर मूर्त्तियों और तोरणोंसे अलंकृत है। दोनों ही जगह हमने और सैकड़ों तरहकी मूर्त्तियाँ देखीं किन्तु बुद्धकी मूर्त्ति कहीं नहीं थी। माधवने पूछा—"बुद्धकी मूर्त्तियाँ यहाँ क्यों नहीं दिखलाई पड़तीं। क्या उस वक्त वह बनती नहीं थी?"

"बुद्धकी मूर्त्तियाँ नहीं बनती थी। विनय-पिटक पढ़ते वक्त तुमने देखा कि बुद्ध-मूर्त्तियोंका वहाँ कहीं नाम नहीं आता है। सिंहलमें मैंने देखा है कि भिक्षु उपोसथ (विनय-पाठ)केलिए जब एकत्र होते हैं, तो वहाँ किसी मूर्त्तिकी वंदना नहीं करते, बल्कि वंदना करते हैं धर्मासनकी। जो कि तुरत रखा हुआ एक छोटा-सा आसन होता है।"

"इन मूर्त्तियोंके देखनेसे भी वही पता लगा कि कहीं खाली आसन है जिसके सामने उपासक-उपासिकाएं हाथ जोड़ रही हैं। कहीं बोधि (पीपल) वृक्ष है, जिसके ऊपर किन्नर-मिथुन पुष्प चढ़ा रहे हैं।"

"इससे यह भी मालूम हुआ कि चलसंसारमें धर्म भी अचल नहीं रह सकता।"

"लेकिन ब्राह्मण तो कहते हैं कि हमारा धर्म सदा अचल रहता है?"

"जिसने लाज-शरम छोड़ दी है उसे झूठ बोलनेमें क्या संकोच हो सकता है? क्या ब्राह्मणोंकी त्रिमूर्त्ति— ब्रह्मा, विष्णु, महेश—का उनके प्राचीन

वेदमें कहीं नाम है। वेदोंके प्रथम कर्त्ता वशिष्ठ, विश्वामित्र आजके ब्राह्मणों तक उनके आचार-विचारके देखनेपर बहुत भारी अन्तर आ गया है। आज गुप्त अपनेको गो-ब्राह्मण-पूजक कहते हैं और गायोंकी रक्षाका जिस तरह आज ख्याल किया जा रहा है यह बहुत पुराना नहीं है।"

"यह तो ठीक है उत्तरापथमें अब भी अतिथिके आनेपर गोमांसके साथ मधुपर्क दिया जाता है।"

"इसीलिए मैं कहता हूँ कि ब्राह्मण जब अपने धर्मको अचल सनातन कहते हैं तो वह सत्यकी हत्या करते हैं।"

हम लोग सहजातिय (भीटा) होते यमुनाके किनारे गए और वहाँसे नाव द्वारा प्रतिष्ठान (झूँसी) चले गए।

(१६)

विक्रमादित्यके मंसूबे

यद्यपि मैं चाहता था कि चन्द्रगुप्तसे भेंट करूँ, वस्तुतः इसीलिए मैं प्रतिष्ठान गया भी था; तो भी हम पहले जाकर वहाँके विहारमें ठहरे। चन्द्रगुप्तको राज्य सँभाले अभी चार ही वर्ष हुए थे, लेकिन उसने साबित कर दिया कि उसमें जहाँ चंद्रगुप्त मौर्यका युद्ध-कौशल है वहाँ कूटनीतिमें वह कौटिल्यका कान काटना चाहता है। विहार हो या देवालय, पानशाला हो या वेश्यालय, कोई ऐसी जगह नहीं थी जहाँ चन्द्रगुप्तके चर मौजूद न हों। समुद्रगुप्त योद्धा था, नम्रशत्रुके प्रति वह बहुत उदार हो जाता था। उसने अपने राज्यका विस्तार बहुत दूर तक किया था इसमें शक नहीं, लेकिन वह बिखरे हुए टुकड़ोंका एक ढीला-ढाला ढाँचा था, इसलिए बुढ़ापा आते ही आर्यावर्त्तके बाहरके उसके सामन्त स्वतन्त्र हो गए। समुद्रगुप्त ऐसी दिग्विजयके पक्षमें नहीं था और न मौखिक आधीनतासे संतुष्ट हो जानेकेलिए तैयार था। वह चाहता था एक ठोस राज्यका संगठन करना। और इसकेलिए ही अभी वह मथुरा से पुंड्रवर्धन (उत्तर बंगाल)को मज़बूत कर रहा था। आचार्य वसुबंधुके शिष्योंकी संख्या बहुत अधिक थी और मैं उनका प्रिय शिष्य तथा परमभट्टारिका

दत्तादेवीका अनुज होनेसे काफ़ी प्रसिद्ध था। विहारमें मेरे परिचित भिक्षु भी थे और जय यौधेयका पता गुप्तचरोंको न मालूम हो यह हो नहीं सकता।

चन्द्रगुप्तको जैसे ही मालूम हुआ, वैसे ही वह ध्रुवदेवी और बलाधिकृत (सेनापति) वीरसेनके साथ विहारमें आया। सैनिकों और चरोंकी भारी संख्याको देखकर लोग चकित हो रहे थे। वे तीनों मेरी कोठरीके द्वारपर आए, मैं बाहर निकल आया। चंद्रगुप्तने मुकुटको प्रतिहारके हाथमें दिया और अंजलि बाँध सिर झुकाते हुए कहा—"भन्ते! मेरा मन तो जय या मामा ही कहनेको कहता है, लेकिन इस वेषका तो मुझे सम्मान करना ही होगा।"

ध्रुवदेवी और वीरसेनने भी प्रणाम किया। चन्द्रगुप्तने उसी दिन दोपहरके भोजनकेलिए मेरी स्वीकृति ली और कहा कि काफ़ी समयकेलिए अन्तःपुरमें पधारें। चन्द्रगुप्त पिछले नव सालोंकी बातोंको अपने जयके सामने रखनेकेलिए उत्सुक है।"

मैं अकेला प्रतिष्ठानके राजान्तःपुरमें गया। यद्यपि पाटलिपुत्र अब भी राजधानी थी, लेकिन चन्द्रगुप्त सिर्फ़ एक राजधानीसे सन्तुष्ट नहीं था वह साकेत प्रतिष्ठान मथुरा और क्षत्रपोंके उच्छेदके बाद उज्जयिनीको भी राजधानी बनानेका संकल्प रखता था। प्रतिष्ठानका अन्तःपुर अब वही पुराना प्रासाद नहीं था, वहाँ पाटलिपुत्रकी झलक साफ़ दिखलाई दे रही थी। एक बात ज़रूर देखी। चन्द्रगुप्त अपने अन्तःपुरकी संख्याको बढ़ाना नहीं चाहता था। उसने स्वयं कहा कि मैं दशरथ और कृष्णकी सोलह हज़ार रानियोंका अनुकरण नहीं करना चाहता था। क्या लाभ है एक-दो दिन छूकर घरमें बन्द रखनेसे। राजनीतिक लाभके लिए वह बड़े राजाओंकी कन्याओंसे ब्याह-संबंध स्थापित करनेके पक्षमें थे। ध्रुवदेवी—जिसे चन्द्रगुप्त प्यारसे ध्रुवस्वामिनी कहा करता है—वस्तुतः त्रैलोक्य सुन्दरी कही जानेका अधिकार रखती है। चन्द्रगुप्तने मेरी खबर पानेके बाद शायद ध्रुवस्वामिनीको मेरे बारेमें बहुत बतलाया। ध्रुवस्वामिनीका ब्याह रामगुप्तसे अज्जुकाके मरनेसे पहले ही हो चुका था। उसने अज्जुकाके मुँहसे सुना था कि वह अपने अनुजको कितना प्यार करती है। मृत्युके समय उसे बराबर जय याद आता था। वह अन्त तक परमभट्टारकसे कहती गयी—"आर्यपुत्र! किसी तरह मेरे जयको

बुला दो। मैं उसे एक बार आँख भरकर देख लेना चाहती हूँ। फिर मैं शांतिसे मर सकूँगी। यद्यपि वह मेरा पता नहीं जानती थी तो भी वह ढाढ़स बँधानेकेलिए अज्जुकासे कहते थे—"जय बहुत दूर चला गया हमारे अश्वारोह (असवार) उसे लानेकेलिए गए हैं।"

ध्रुवस्वामिनीने मुझे कभी नहीं देखा था, लेकिन वह जानती थी कि जय उसके चन्द्रका बालमित्र है, वह बुद्धिमान और साहसी है। इनके अतिरिक्त एक और भी बात थी, जिससे ध्रुवस्वामिनी मुझे बड़े स्नेहकी दृष्टिसे देखती थी, वह था उसका मालविका—मालव-गणकी पुत्री-होना। प्रतिष्ठानमें रहते यह हो नहीं सकता था, कि मैं राजान्तःपुर छोड़ अन्यत्र भोजन करता। रातको यद्यपि देरसे, किन्तु प्रायः रोज़ मैं विहार लौट आता और फिर हमारी और माधवकी उस दिनकी घटनापर आलोचना होती। ध्रुवस्वामिनी मुझे अपने हाथसे भोजन कराती। चन्द्रगुप्तको तो राजकीय कार्यसे समय मिलने हीपर बात करनेका मौक़ा मिलता, किन्तु ध्रुवस्वामिनी मुझे छोड़ना नहीं चाहती थी। यद्यपि पदमें मैं उसके पतिका मातुल (मामा) था किन्तु आयुमें अनुज। इसलिए ध्रुवस्वामिनी भी मुझे चन्द्रगुप्तकी दृष्टिसे देखने लगी। उसने कितनी ही बार दुहराया—"मातुल भट्टारक। अब इस काषाय वस्त्रको छोड़ो। बहुत पुण्यअर्जन कर लिया। स्वर्गकी अप्सराओंसे वंचित नहीं रहोगे लेकिन यहाँकी अप्सराओंको तुम्हारे ऐसे वीरको न पाकर कापुरुषोंका शरण लेनी पड़ेगी।"

मैं समझ रहा था कि कापुरुष कहते वक्त उसके सामने रामगुप्तकी मूर्त्ति थी। चन्द्रगुप्तने स्वयं उस घटनाको सुनाया, जिस तरह कि उसने शक राज देवपुत्रशाहीका वध उसके प्रासादमें जाकर किया। वह कह रहा था—"मित्रजय! तुम जानते हो मेरे मनस्वीपन और कार्यार्थिताको, किन्तु मुझे यह मालूम नहीं था कि अवसर इतना जल्दी आएगा। पिताके अंतिम वर्षोंको कुछ तुम खुद ही देख चुके थे, उनकेलिए सुरा और सुन्दरी छोड़कर जीवनका कोई ध्येय नहीं रह गया था। इसके कारण हमारे दबे हुये शत्रुओंका मन बढ़ गया। हमारे अमात्य और बलाधिकृत अयोग्य चापलूस थे। योग्य व्यक्ति उदास हो हाथपर हाथ धरकर बैठ गए थे। शक-राज देवपुत्र

पच्छिममें कुछ पहिले ही कदम बढ़ा चुका था। परमभट्टारककी मृत्युकी ख़बर पाकर तो उसने हमारी पच्छिमी सीमापर आक्रमण कर दिया। रामगुप्त स्वयं मुक़ाबिलेकेलिए पच्छिम सीमाकी ओर गया। लेकिन वह भी पिताके वृद्ध जीवनसे दीक्षा ले चुका था। सुरा सुन्दरीका मैं विरोधी नहीं हूँ, मैं भी उन्हें जीवनका सार समझता हूँ, लेकिन उनकेलिए पूरा मूल्य चुकानेके बाद।"

"यह दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं चन्द्र!"

"यह जीवन ही विरोधोंका संघट्ट है। जिस वक्त गुप्तवंशके भाग्यका निपटारा हो रहा था और रामगुप्त उसकी रक्षाकेलिए अपनी सारी सेनाके साथ गया था, उस वक्त भी वह अपनी विलासिताको छोड़नेकेलिए तैयार नहीं था। भीतर ही भीतर खिन्न होनेके सिवा मैं क्या कर सकता था। ऐसी सेना प्रबल शत्रुका मुक़ाबिला कैसे कर सकती है। हमारे सीमान्तपर क्षत्रप और वाकाटक भी तैयारी कर रहे थे, इसलिए हमारी काफ़ी सेना उधर फँसी हुई थी। शक-राज हमारी सीमाके भीतर घुस आया। बलाधिकृतों और सांधि-विग्रहिक (युद्ध-मंत्री) ने बड़ा निराशापूर्ण चित्र परमभट्टारकके सामने खींचा। वह किसी भी शर्तपर, जो कुछ भी बचे उसे बचानेकेलिए तैयार थे। इसी समय शकराजके दूतने आकर शर्त पेश की—'देवपुत्र शाही रामगुप्तको अभयदान देनेकेलिए तैयार हैं, यदि वह अपनी महादेवी (पटरानी) ध्रुवदेवी देनेको तैयार हों।' समुद्रगुप्त और दत्तादेवीको रामगुप्त जैसी सन्तान पैदा हो सकती है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। उस निर्लज्जने ध्रुवस्वामिनीको किस तरह इसकेलिए तैयार करना चाहा, इसे तुम ध्रुवस्वामिनीके मुँहसे ही सुनो तो अच्छा होगा।"

ध्रुवस्वामिनीने मुझे सारी घटना बतलाई। वह कह रही थी—"मैं उस वक्त बड़े क्षोभ और आश्चर्यसे रामगुप्तके मुँहसे सुन रही थी—"देवि! प्रबल शत्रु गुप्त वंशका उच्छेद करना चाहता है, मैं उसकी शायद उतनी पर्वाह न करता; लेकिन वह हमारी प्रजाके भीतर भी अपनी ध्वंस-लीला दिखलायेगा। गाँवके गाँव जला दिये जायँगे। शक बड़े क्रूर होते हैं, वह स्त्रियों, बच्चों-बूढ़ों, तकके ख़ूनसे भी हाथ रँगे बिना नहीं जायँगे, मैंने अपनी प्रजाके हितकेलिए, यह ज़रूरी समझा, अपनी पत्नीका त्याग करूँ।'

"वह रघुकुलका राम बनना चाहता था! छिः!!"

"मेरे शरीरमें आग लग गई थी। मैं मालवोंकी पुत्री थी और गुप्तवंशकी पटरानी। मैंने उसे कुछ जली-कटी सुनाई। तुम्हीं सोचो मातुल भट्टारक! क्या यह बेशर्मीकी हद नहीं है? प्रजा-रंजनकेलिए वह उस रामका उदाहरण दे रहा था, जिसने अपनी पत्नीकी रक्षाके लिए लंकाको ध्वस्त करके छोड़ा। मैंने सोचा यह कापुरुष मेरा पति नहीं हो सकता, मालवगण की कन्या वेश्या नहीं बन सकती। मैंने चन्द्रसे कहा। मैं जानती थी कि चन्द्र स्वयं किसी दूसरी धुनमें है। रामगुप्त उससे बहुत डरता था, लेकिन कायरके पास कुछ करनेकी शक्ति कहाँ? चन्द्रने मेरे आँसुओंको पोंछते हुए कहा—"मैं अपने प्राणोंको पहले दूँगा फिर तुमको गुप्तवंशको कलंकित करनेकेलिए बाध्य किया जायगा।" "चंद्रको तुम जानते हो कि उसमें और कितने ही दोष हो सकते हैं, लेकिन कायरताका वह नाम भी बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

चन्द्रने आगेकी बातें बतलायीं—"जो प्रतिद्वन्दी राजाकी लक्ष्मीको नहीं बल्कि उसकी पत्नीको लेकर सन्तोष करना चाहता है, वह देवपुत्र शाही सिर्फ़ कामुक और अन्धा ही हो सकता है, यह मैंने समझ लिया। मैंने सोचा कि शकराजसे सीधे लड़नेमें सफलताकी कम आशा है। यद्यपि अपने भटों (सिपाहियों)-की वीरताका मुझे पूरा विश्वास था। लेकिन बलाधिकृतोंके बारेमें मेरी वही राय नहीं थी। पतित शकराजको छलसे ही जीता जा सकता है, इसलिए मैंने एक दूसरा ही उपाय सोचा। इस उपायमें खतरा था लेकिन जिसने मृत्युका संकल्प कर लिया, उसकेलिए क्या खतरा? मैंने वीरसेनसे सलाह की। वह मुझसे पूरी तौरसे सहमत था और स्वयं मेरे साथ आगमें कूदनेकेलिए तैयार भी। उसने पाँच सौ निर्भीक नौजवानोंको चुननेमें मेरी मदद की। मैंने उन जवानोंसे साफ़-साफ़ कह दिया—'शत्रुके घरमें हमें घुसना है। यदि उसमें बुद्धि है, तो वह उतना बेख़बर नहीं रह सकता। हमें बहुत आशा नहीं है, लेकिन मगध राजवंशीके साथ, मगधके सम्मानको शत्रुके हाथमें जीते जी दे देना सह्य नहीं है। एक तरह हम बलि चढ़ने जा रहे हैं; इसलिए जिसकेलिए मृत्यु कड़वी चीज़ नहीं है वही साथ चलनेको तैयार हो।' सबने एक स्वरसे अपनेको तैयार घोषित किया। मैंने ध्रुवदेवीके वस्त्र पहिने और अपने साथियोंको भी स्त्री-वेशमें सजाया। हम सभी नवतरुण थे। हमारे लंबे केश सुन्दर वेणीके रूपमें परिणत हो गए।

मूँछ-दाढ़ीका कोई चिह्न तक नहीं रहने दिया। हर पाँच-पाँच आदमीपर एक अस्तुरा था। प्रातःकाल उठते ही हम उसे अपने मुँहपर फेर लेते थे, ऊपरसे खूब मुख-चूर्ण लपेट लेते थे।"

"तुम्हारे नाटकोंको मैं देख चुका हूँ चंद्र! मुझे विश्वास है कि तुमने उसमें अपनी सारी कलाको खर्च कर डाला होगा।"

"लेकिन उन नाटकोंके खेलते वक्त मुझे कभी ख्याल भी नहीं आया था, कि एक समय वह इतना उपयोगी सिद्ध होगा। मैंने रामगुप्तके सामने अपनी योजना पेश करते हुए कहा—'भायर! एक बार मुझे जानपर खेलनेका अवसर दे दो, शायद हम सफल हों; कमसे कम कुछ अवसर तो मिल जायेगा।' रामगुप्त बहुत खुश हुआ, उसने छातीसे लगाकर मेरे विक्रमकेलिए साधुवाद दिया। मैं जानता था, वह एक ढलेसे दो चिड़ियोंके शिकार करनेकी बात सोच-कर खुश हो रहा है। उसने शक-राजके पास बहुत नम्रता दिखाते हुए सन्देश भेज दिया कि मैं अपनी महादेवीको परिचारिकाओंके साथ भेजनेकेलिए तैयार हूँ; लेकिन अपनी शर्तको तोड़ना न होगा। पाँच सौ शिविकाओं (पालकियों)-के साथ ध्रुवस्वामिनी अरिपुरकी ओर चलीं। शकराज ध्रुवस्वामिनीसे मिलनेकेलिए उतावला हो रहा था। हम उसके स्कंधावार (छावनी)में पहुँचे, यमुनासे उसपार, अवगुण्ठनके भीतर मेरे अर्ध-नग्न सौन्दर्यको देखकर वह सन्तुष्ट नहीं हुआ उसने उसे हटा दिया। मेरी बड़ी-बड़ी आँखोंके भीतर सूक्ष्म कज्जल-रेखा और उसपर हल्की-सी हँसीकी छायाको देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने 'प्रियतमे' कहकर मेरे कन्धेपर हाथ रक्खा। मैंने तिरछी निगाहसे देखते मुस्कुराकर उसके हाथको उसकी जाँघसे लगा दिया।"

"मैं जानता हूँ चन्द्र! तुमने शुद्ध स्वाभाविक अभिनेताकी भाँति किस तरह ध्रुवस्वामिनीके पार्टको अदा किया होगा।"

"मुझे अपनी प्रथम सफलतापर अपार आनंद हुआ। रात आई अंधकार-को दूर करनेकेलिए प्रासादमें दीपक जल रहे थे किन्तु मेरे हृदयका अन्धकार कम नहीं हुआ था। रह-रहकर वह धकधक करने लगता। देवपुत्र अपनी नई रानीके पास आए। कापिशेयी लाल सुरा और सुवर्ण-चषक सजाकर रक्खे गए। चेटियोंने नृत्य-संगीत आरंभ किया। हम दोनों एक आसनपर बैठे।

मैं बड़े प्रेमसे अपने प्रियतमके मुखमें चषक लगा देती ! वह मुझे पिलाता और मैं उसे। कौन ज्यादा पीता था यह तुम खुद समझ सकते हो ?"

"अभागे देवपुत्र शाही। तुझे क्या मालूम कि भगवान् कौटिल्यका वरदान लेकर कोई तेरे अन्तःपुरमें आया है।"

"जोखिम चाहे कितना ही हो किन्तु वह आदमी असफल नहीं हो सकता, जो अपने दिलको शीतल रखनेकी कला जानता है। शकराजकी आँखें सुराकी तरह ही लाल हो गई थीं। उसकी आँखें बीच-बीचमें झप जाती थीं और वह अपने हाथोंको कभी मेरे कन्धेपर रखता, कभी विल्व-स्पर्धी कृत्रिम स्तनोंपर और कभी मेरे कपोलोंको चूमता। मैंने परिजन को विदा कर दिया। चेटियाँ भी शय्याको ठीककर गर्भ-गृहसे बाहर चली गईं। अब भी वहाँ एक दीपक जल रहा था। वह अधीर हो रहा था। मैंने कहा—"मुझे दीपकके सामने लज्जा आ रही है। मैंने लड़खड़ाती आवाज़में बाहर खड़ी प्रतिहारीको दीपक बुझानेकेलिए कह दिया। यह तो तुम समझ ही गए होगे कि प्रतिहारी कौन रही होगी।"

'प्रतिहारी नहीं तुम्हारे सारे प्रासादमें कौन कहाँ रहा होगा मैं इसकी कल्पना कर सकता हूँ।"

"मैंने अच्छी तरह साध लिया कि शकका कलेजा कहाँ है। नशेमें आधा तो वह मुर्दा हो ही चुका था। मैंने आलिंगनके बहाने सधी छुरीको खूब ज़ोरसे उसके कलेजेमें घुसा दिया और उसके साथ ही मेरा बायाँ हाथ उसके मुखपर था। वह आवाज़ भी निकालने नहीं पाया। यदि वह कुछ करनेकी क्षमता रखता तो उसका भी हमने प्रबन्ध कर लिया था। पचास तरुण तो हमारे कोठेके आसपास ही मौजूद थे। हमने उसी वेशमें भिन्न-भिन्न रास्तोंसे प्रासादको छोड़ दिया। निश्चित स्थानपर जमा हुए और बाक़ी रात दौड़ करके बिताया। हमारे सैनिक भी तैयार थे और उन्होंने घोड़े हमारेलिए भेज रखे थे। अपने सीमान्तके स्कंधावारमें पहुँचते ही मैंने सारा समाचार सेनाके सामने सुनाया। सब लोग आनन्दमें पागल हो गए। चारों ओर युवराज चन्द्रगुप्तका जयकार होने लगा। मैंने उसी समय सेनापतियोंको शक-सेनापर हमला करनेकेलिए कहा, वीरसेन और साथियोंको साथलिए रामगुप्तके शिविरमें आया। उसे पहले ही खबर लग गई थी, लेकिन तुम जानते हो ब्रह्माके

पास बुद्धि बँटते वक्त वह कुछ पीछेसे पहुँचा था। ध्रुवस्वामिनी वहाँ मौजूद थी। दिनका वक्त था। रामगुप्तके आसपास कुछ शरीर-रक्षिकाएँ थीं, लेकिन उस बड़ी सफलताने मेरे दिलमें ख़ूब आत्म-विश्वास बढ़ा दिया था। वह आलिंगन करनेकेलिए मेरे पास आया। शकके कलेजेमें घुसी वही छुरी अब भी मेरे कमरमें मौजूद थी। मैंने निस्संकोच उसे उसके कलेजेमें घुसा दिया। वह आह करके ज़मीनपर गिरकर दम तोड़ने लगा। ध्रुवस्वामिनी दौड़कर मेरे कलेजेसे लग गयी। उसकी आँखोंमें आँसू थे, किन्तु वह आनन्दके आँसू थे। शरीर रक्षिकाएँ पाषाण-प्रतिमाकी तरह निस्तब्ध खड़ी रह गईं। मैंने ज़ोरसे कहा—'क्या इस कायरकेलिए तुम्हें क्षोभ है?' इसी वक्त ध्रुवस्वामिनी की आवाज़ सुनाई दी। 'जेदु-जेदु भट्टा'। दूसरी चेटियोंने उच्चैःस्वरसे कहा 'जेदु-जेदु भट्टारक चन्द्रगुप्त।' अब गुप्तराजलक्ष्मीका स्वामी चन्द्रगुप्त था।"

"और ध्रुवस्वामिनीका भी।"

मैं देख रहा था, चन्द्रगुप्तका चेहरा कुछ उदास हो गया था। मैंने कहा—"शायद तुम्हारेलिए कोई और रास्ता नहीं था।"

"ठीक कह रहे हो। राजकुलोंमें भ्रातृ-वध बिल्कुल मामूली चीज़ है। भ्रातृवध ही क्या राजपुत्र तो जनक-भक्ष कहे जाते हैं। मैं जब कभी पहले अपने भविष्यके कार्यके बारेमें सोचता था, तो रामगुप्तके मारनेकी कल्पना मेरे दिलमें कभी नहीं आती थी। मैं उसे बन्दी बना लेना ज़रूर चाहता था, क्योंकि मैं समझता था ऐसे बुद्धिके पंगु आदमीके मारनेकी कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन रामगुप्तने ध्रुवस्वामिनीको देनेकी इच्छा प्रकटकर मुझे बिल्कुल निष्ठुर बना दिया। आसमुद्र सारे क्षितीशोंको अपने चरणोंमें नत करनेवाले समुद्रगुप्तकी पुत्रवधूको वह नृशंस शक-शिविरमें भेज चुका था। उसके इस कार्यमें सहमत होनेवाले अमात्य अब भी उसे अपना हथियार बनाते। मुझे एक ही समय सारे झगड़ोंको ख़तम करनेका निश्चय करना पड़ा।"

× × ×

शिशिरकी संध्या थी, ध्रुवदेवी, चन्द्रगुप्त और मैं एक नावपर बैठे थे और पासमें प्रतिहारों, प्रतिहारियों तथा परिजनकी और कितनी नौकाएँ चल रही थीं। हम अन्तःपुरके सामनेसे ऊपरकी ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। यमुना-गंगाका

संगम है। एक ओर यमुनाकी नील धारा और दूसरी तरफ़से आपाण्डु गंगाकी धारा मिल रही थी। दोनोंके बीचमें दूर तक श्वेत बालुका राशि दिखलाई पड़ रही थी, जिसमें तपस्वियोंकी कितनी पर्ण-कुटियाँ पड़ी थीं। मैं यद्यपि जिस अग्रोदकामें पैदा हुआ था, वहाँ कोई ऐसी नदी नहीं। लेकिन एक वर्षकी आयुसे ही मैं गंगाकी गम्भीर धाराको देखा करता था। उसमें घड़ियों तैरनेका आनन्द लेता था। गंगासे मेरा वैसा ही स्नेह था, जैसे शिशुका अपनी माताके साथ। यह स्नेह और भी बढ़ गया जब कि गंगासे बहुत दूर विचरण करने लगा था। मैं बड़े ध्यानसे गंगाकी धारकी ओर देख रहा था। चन्द्रगुप्तने मेरी ओर देखकर पूछा—'क्यों जय! तुम गंगाकी ओर इस तरह देख रहे हो, जान पड़ता है वह कोई नई वस्तु है।

"गंगा मेरेलिए सदा नई वस्तु है। मैंने तुम्हारे साथ इस धाराको वहाँ भी देखा था जहाँ वह बहुत क्षीण है किन्तु अपनी क्षीणताको अपने कलरवसे पूरा करती थी।"

"उत्सव-संकेत, हिमालय! कितने सुन्दर वे दिन थे, जब हम चमरीपर चढ़े उस कर्पूरश्वेत हिमराशिपर चल रहे थे। वह देवदारोंके भव्य वृक्ष और उनके भीतरसे आती भीनी-भीनी सुगंध!"

"गंगा यहीं नहीं है अपने उद्गम स्थानमें भी उतनी ही कल्याणी है। फिर यहाँ यह संगमका दृश्य तो और मनोहर है। तुमने चन्द्र! प्रतिष्ठानको अपनी दूसरी राजधानी बनाकर गंगाको नहीं छोड़ा! अच्छा किया।"

"मेरे मित्र अमात्य तो राय दे रहे थे कि गंगा और यमुनाके बीचमें अपनी द्वितीय राजधानी बनाऊँ।"

"अच्छा होता, दोनों धाराएँ देखनेमें आतीं। फिर उस नगरीको तुम अपना नाम दे सकते?"

"हाँ, वह विक्रमपुरी कहला सकती थी, जानते हो न, मैंने विक्रमादित्य-की उपाधि स्वीकार की है।"

"तुममें विक्रम है, इससे कौन इन्कार कर सकता है?"

"लेकिन मैं विक्रमपुरी बसानेकेलिए प्रतिष्ठानके मुक़ाबिलेमें दूसरी नगरी बसाना नहीं पसन्द करता था; कमसे कम इन दोनों नदियोंके बीचमें तो नहीं।"

"कोई हर्ज तो नहीं था।"

"मैं अलग-अलग इन दोनों धाराओंको देख नहीं सकता। मैं चाहता हूँ केवल एक धाराको। दो धाराओंका अस्तित्व मेरी आँखोंमें काँटेकी तरह चुभता है।"

"और तुम प्रतिष्ठानके अन्तःपुरसे सिर्फ एक ही धाराको देख सकते हो।"

"शायद पिता भट्टारकको यहाँ कोई नगरी बसानी होती, तो वह इन दोनों धाराओंके बीच हीमें बसाते। वह धाराओंके एक करनेके पक्षपाती नहीं थे, लेकिन मैं सिर्फ एक धारा देखना चाहता हूँ।"

"एक धारा देखना या एक धारा करना बहुत मुश्किल है चन्द्र!"

"मुश्किल ज़रूर है लेकिन उसके बिना कोई चारा नहीं। दिग्विजयमें राजाओंके मुकुटोंको पैरसे छूकर छोड़ देना कोई विजय नहीं है, उससे राजशक्तिको कोई शक्ति नहीं रहती। मैं चाहता हूँ एक शक्तिशाली राज्य, और ऐसा राज्य जो कुछ समयकेलिए चल सके।"

"कुछ समयकेलिए अर्थात् सदाके लिए?"

"सदाकेलिए कहना दुस्साहस है, चिरकालकेलिए कह सकते हैं। और शायद जब तुम समझते होगे मैं गुप्तवंशकेलिए ऐसा सोच रहा हूँ।"

"सोचनेमें क्या हर्ज है, अपने वंशकी अभिवृद्धि सभी चाहते हैं।"

"हानि यही है, कि मैं कितने ही राजवंशोंको नामशेष हुए देखकर भी वैसा कहनेकी गलती करूँ। कोई भी राजवंश ऐसा नहीं दिखाई देता जो पाँच पीढ़ियों तक भी योग्य राजाओंको पैदा कर सके। एक पीढ़ीमें भी उल्टा देखा जा सकता है पाँच पीढ़ीकी तो बात ही छोड़ो। पिता भट्टारकको ही नहीं देखा? गुप्तवंशको भारतका चक्रवर्ती बनाना उन्हींका काम था। लेकिन बुढ़ापेमें उन्होंने क्या कहा?"

"प्रथम वंश-संस्थापकको ज्यादा प्रयत्न करना पड़ता है, क्योंकि वह एक गुमनाम वंशसे आता है, जिसके पीछे कोई इतिहास नहीं, कोई सम्मान नहीं, कोई रोब-दाब नहीं होता लेकिन उत्तराधिकारियोंको यह सभी बातें मुफ़्त मिल गई रहती हैं, फिर भी यह आश्चर्यकी बात है और तुम्हारा कहना

ठीक भी है कि कोई वंश पाँच पीढ़ी तक भी अपने पूर्व वैभवको क़ायम नहीं रख सकता।"

"आश्चर्यकी क्या बात है ? सुरा-सुन्दरीके पीछे पड़ जाता है और अपने सारे गौरव, रोब-दाब और शक्तिको खो बैठता है, लेकिन तुम तो जय भगवान् कौटिल्यको पसन्द नहीं करते।"

"बिल्कुल ही नहीं पसन्द करता हूँ यह बात नहीं है, आखिर यवनोंके शासनसे भारतको दो शताब्दियोंकेलिए मुक्त कर देना उसी दूरदर्शिताका परिणाम है।"

"बस, मैं भी वही चाहता हूँ, यद्यपि मैं अपने वंशमें ऐसी परंपरा क़ायम करना चाहूँगा जिसमें सुरा-सुन्दरी शासन-दण्डके वहनमें कोई बाधा न डाल सकें—मेरे उत्तराधिकारी युक्त आहार-विहारी हों। किन्तु मैं अपने ही वंश तककेलिए नहीं ख्याल करता हूँ। कोई भी राजवंश आवे, मगर वह इतना मज़बूत हो कि किसी शत्रुकी हिम्मत न हो भारतकी ओर देखनेकी।"

मैं सोचने लगा—चंद्रगुप्तका सोचना कोई उतना बुरा तो नहीं, किन्तु मनुष्य निर्जीव ईंटे तो नहीं है। यह निश्चय है कि एकरस चिकनी गढ़ी हुई ईंटें ख़ूब एक-दूसरेमें मिलाकर ऐसे चिन दी जायँ, कि उनके बीचकी संधि भी मालूम न हो, तो दीवार बहुत सुन्दर दीख पड़ेगी। और वह ख़ूब मज़बूत भी होगी। लेकिन आदमी निर्जीव ईंटें हो चिननेवालेके हाथमें नहीं रहते बल्कि सचेतन मानवके हाथमें. इकट्ठा होनेमें वह अपना लाभ समझते हैं। हमारे यौधेयगणमें कोई चन्द्रगुप्त जैसा चिननेवाला एक व्यक्ति नहीं हुआ जिसने सबको ठोंक-पीटकर एक बना दिया। अग्रोदका, पृथूदका, खंडिजा, रोहितकी आदि छोटे-छोटे गणोंमें विभक्त मानवताको किसने एक दीवारके रूपमें चुना, ऐसी दीवारके रूपमें कि उससे जिसने भी टक्कर लिया, उसे माथा पकड़े पीछे लौटना पड़ा। यह चन्द्रगुप्तका दोष नहीं, यह निरंकुश राजतंत्रमें पैदा होनेका दोष है जो कि वह वैसा छोड़ दूसरी तरह सोच ही नहीं सकता। उसके सामने अपने जैसे पुराने सर्वशक्तिमान राजा हैं, जिनके हुकुमपर लोगोंको उठना और हुकुमपर बैठना पड़ता। उसके सामने ब्राह्मणका बड़ा सर्वशक्तिमान ईश्वर

रहता, जो कभी कच्ची मट्टीसे मनमानी चीज़ें तैयार करता है और कभी उसे मिट्टीकी ज़रूरत नहीं है।

चन्द्रगुप्तकी बातोंको सुनते वक्त मेरा मन बीच-बीचमें इस तरह सोचने लगता था। उसने अपनी बातको जारी रखते हुए कहा—"जितने साधनसे पिता भट्टारकने दिग्विजय आरम्भ की थी मेरे पास उससे कहीं अधिक साधन हैं। उसके साथ गुप्तोंके शस्त्रका गौरव और रोब भी मुझे पैतृक सम्पत्तिके रूप-में मिला है। मैं भी दिग्विजय आरंभ कर सकता हूँ, और शायद उससे ज्यादा सफल रहूँगा। मगर मैं ऐसे नामके दिग्विजयको नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ अपने राज्यकी सीमाको पच्छिमी समुद्र तक ले जाना।"

'उसका चेहरा गंभीर हो चुका था, जैसे मालूम होता था कि वह कोई दृढ़ संकल्प कर चुका है। मैंने पूछा—"पच्छिमी समुद्र तक?"

"हाँ, पच्छिमी समुद्र तक। जिस तरह पूर्वी समुद्र (बंगालकी खाड़ी)-के हाथमें रहनेके कारण सारे पूर्वी द्वीपों, यवद्वीप और चीन तकका व्यापार हमारे हाथमें है, उसी तरह पच्छिमी समुद्र (अरब सागर)के पत्तनों (बंदर-गाह)के हाथमें आ जानेसे पच्छिमके देशों यवन पारस्य आदिका भी व्यापार हमारे हाथमें आ जायगा। आजकल लक्ष्मी व्यापारमें बसती है। तब मेरा कोष इतना भर जायगा, कि मैं जिस ओर नज़र करूँगा, उधरके राजमुकुट मेरे चरणोंमें गिरेंगे।"

"अर्थात् चन्द्र तुम्हारी दृष्टि क्षत्रपों और वाकटकोंपर है?"

"हाँ, क्षत्रपोंका तो मैं नाम-निशान तक मिटा देना चाहता हूँ। उसने फिर सिर उठाया, अब चंद्रगुप्त उसे कुचलके रहेगा।"

"लेकिन क्षत्रपोंकी शक्तिका ख्याल किया।"

"मैं जानता हूँ कि महाक्षत्रप सत्यसिंह और रुद्रसेनसे ज्यादा मज़बूत है और जब उसे मालूम होगा कि चंद्रगुप्त सिर्फ़ उसके मुकुटको अपने चरणसे छुआनेसे संतुष्ट नहीं होगा तो 'मरता क्या न करता'की नीतिका अवलंबन करेगा। लेकिन चन्द्रगुप्तने भी तैयारी की। पिता भट्टारकके समयके बूढ़े बलाधिकृत अब चन्द्रगुप्तसे सिर्फ़ सम्मानकी आशा रखते हैं, अधिकार की नहीं।"

"अधिकारका नहीं, अर्थात् ?"

"अर्थात् अब सेनाका संचालन उनके बूढ़े निर्बल कायर हाथोंमें नहीं है।"

"लेकिन उनके पास वर्षोंका तजुर्बा है ?"

"तजुर्बेसे लाभ उठानेकेलिए मैं तैयार हूँ। उनकी राय मैं ले सकता हूँ, किन्तु उनके निर्णयपर मुझे विश्वास नहीं है। उनके रण-कौशलपर मुझे विश्वास नहीं है। उन्होंने जो कुछ सीखा था वह पचास साल पहिलेकी दुनिया-से जो अब ख़तम हो चुकी है। उनके तजुर्बेसे आजकी दुनिया क्या सीख सकती है, उसे सीखनेकेलिए मैं बराबर तैयार रहूँगा।"

"तो बूढ़ोंके हाथमें तुम अधिकार देना नहीं चाहते ?"

"बूढ़ोंके हाथमें और पुराने राजवंशोंके हाथमें भी चन्द्रगुप्त अधिकार नहीं देना चाहता। बूढ़े पंगु हैं, धानके खेतोंके पीलिया (पियरा) रोग हैं। और पुराने राज्यवंश हमेशा अवसर देखा करते हैं, वह अपने पुराने वैभवको स्मरण रखते हैं। जहाँ तक हो मैं उनसे अपनी सेना और शासनको मुक्त रखना चाहता हूँ। तुमने शायद चंद्रगुप्तके उपरिकों (वायसराय) और कुमारा-मात्य (ज़िला अफ़सर)को नहीं देखा। हमारी भुक्तियोंपर हमने नये तरहके उपरिक नियुक्त किये हैं और विषयोंपर नये प्रकारके कुमारामात्य।"

"तो क्या अब उपरिक लोग महाराज नहीं होते ?"

"महाराजकी पदवी उन्हें हमारी ओरसे प्रदान की जाती है। वह अपने घरसे उसके अधिकारी नहीं होते। और एक बात और बतलाऊँ। सेना छोड़कर बाक़ी पदोंकेलिए मैं ब्राह्मणोंको बहुत उपयुक्त समझता हूँ। बिरले ही ब्राह्मण योद्धा बननेकी योग्यता रखते हैं। उनमें बुद्धि है, जो राजाओंकी सेवाकेलिए हर वक्त तैयार रहती है, किन्तु उनके हाथ खड्गकेलिए नहीं, स्रुवाकेलिए बने हैं।"

"लेकिन चन्द्र ! तुम पुष्यमित्रको जानते हो ?"

"पुष्यमित्र शुङ्ग ब्राह्मण भी है और मौर्य्योंका सेनापति भी। उसने स्वामीको धोखा दिया और अपना राज्य स्थापित किया। मौर्योंने ग़लती की,

हैं उनको कोई नहीं पूछता। ध्रुवदेवीकेलिए यह ज़रूरी नहीं था कि सैकड़ों चेटियोंके रहते मुझे बैठाकर अपने हाथसे भोजन कराये, मुझे हर तरह सुखी और पसन्द रखनेकी कोशिश करे। मैं समझता हूँ, चाहे उसके बर्त्तावमें कुछ दिखावा भी हो, किन्तु वह सभी बातें बड़े स्वाभाविक तौरसे करती थी। परिहास करनेमें भी वह बहुत चतुर थी। एक दिन कह रही थी—

"मातुल भट्टारक! तुम दोनों अज्जुकाकी गोदमें बढ़े हो। अज्जुकाको तो अब वह सौभाग्य नहीं रहा, किन्तु मैं चाहती हूँ कि तुम दोनोंको बराबर साथ देखूँ।" यह कहते-कहते उसकी आँखें कुछ स्निग्ध हो आई थीं।

मैंने हंसते हुए कहा—"यह इस चीर-चीवरमें कैसे संभव हो सकता है?"

"चीर-चीवर सदाकेलिए नहीं है। कितने ही राजकुमार किसी समय चीर-चीवर पहनते हैं और फिर उसे छोड़कर गृहस्थ बन जाते हैं। जबसे तुम्हें देखा, तभीसे मैं सोच रही थी कि कैसे तुम्हें अपने पास रक्खूँ।"

"अर्थात् कैसे आँचलमें बाँधू?"

"हाँ, आँचलमें बाँधना ही कह लो मेरी छोटी बहन, उसके आँचलमें बँधवाना चाहती हूँ।"

"तो फिर मैं मातुल भट्टारक नहीं रह जाऊँगा?" कहती तो हूँ मैं मातुल भट्टारक ही किन्तु जब तुम दोनोंको 'तुम' 'तुम' कहते सुना, तो मैंने भी बिना क्षमा प्रार्थना किए अपने मातुल भट्टारकको तुम कहना शुरू किया। तुम कहना बुरा तो नहीं लगता मातुल भट्टारक?"

"विधाताने तुम्हारी जीभको बनाते वक्त स्वर्ग और मर्त्य दोनोंके मधुरतम उपकरणोंको इस्तेमाल किया होगा। ध्रुव भट्टारिका सचमुच ही तुम कैसे इतना मधुर बोल लेती हो?"

"मेरी सहोदरा इस गुणमें मुझसे कम नहीं है मातुल भट्टारक!"

"तो उसकेलिए कोई चन्द्रगुप्त होना चाहिए?"

"तो तुम मेरी बातको परिहासमें उड़ा देना चाहते हो। मैं सच कहती हूँ तुम्हें देखते ही अपनी बहनका चेहरा सामने आ जाता है। कितना सुन्दर वह दिन होगा, जिस दिन तुम दोनोंको मैं एक साथ देख सकूँगी।"

"ध्रुव भट्टारिका तुम्हारी बातोंका काटना मैं पसन्द नहीं करता, किन्तु तुम यहाँ ज़रूर ग़लती कर रही हो। एक सुन्दर तरुण जीवनको चीवर-नीरस जीवनसे बाँधना चाहती हो।"

"चीवर हट जायगा तो जीवन नीरस कैसे रहेगा। अब तक मातुल भट्टारक! तुमने अपने जीवनको नीरस कर डाला। इस सौन्दर्य-राशिके बनानेवालेकी मेहनतका ख्याल नहीं किया। मैंने सुना है कि अन्तःपुरिकाओंसे तुम कितने बचकर रहा करते थे।"

"क्या किसीने शिकायत की? क्या मैंने किसीका अपमान किया था?"

"अपमान तुम नहीं कर सकते, खासकर स्त्रीका अपमान—लेकिन मुँहसे सम्मान दिखलाते हुए तुम उनसे अलग ही अलग रहते थे, इसकी उन्हें शिकायत हो सकती है किन्तु मुझे शिकायत नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है कि तुम जिस किसी नारीको अपनाओगे, उसे अपने सारे दिलसे अपनाओगे।"

"इसीलिए भट्टारिका अपनी बहनको सारा दिल दिलवाना चाहती है। लेकिन सारे दिलकी बात तब न आवे, जब कि यह चीवर शरीरको छोड़े।"

"देखूँगी पीले चीवरमें अधिक शक्ति है या नीले नेत्रोंमें। मेरी बहन प्रतिष्ठानमें आनेवाली है एक बार देखकर तभी कुछ कहना।"

"देखनेकी ज़रूरत नहीं, रत्नाकरके एक रत्नके देखनेसे ही दूसरोंके बारेमें राय क़ायम की जा सकती है।"

ध्रुवदेवीका जादू सचमुच ही बड़ा ज़बर्दस्त मालूम होता था। वह धीरे-धीरे किन्तु इतने ज़ोरसे मुझे अपनी ओर खींच रही थी कि मुझे चिन्ता होने लगी। स्नेहका तन्तु तोड़ना बहुत मुश्किल है और वह तन्तु मुझे दिनपर दिन जकड़ता जा रहा था। चन्द्रका ढंग कुछ दूसरा था। उसने दूसरी तरहसे मुझे फँसानेकी कोशिश की। वह एक दिन कह रहा था—"जय! मैं जिस तरुणाईके स्वप्नोंको देखा करता था, उसका एक अंश तो पूरा हो गया, लेकिन दूसरा अंश बाक़ी है।" फिर घुमा फिराकर कहा—"जिस वक्त जय यौधेय चंद्रगुप्तका महाबलाधिकृत (प्रधान सेनापति) हो जाएगा, उस दिन मैं उसी तरह अपनेको समझूँगा जिस तरह कुमारको पाकर देवता लोग। चीवर मेरे पास काफ़ी बहाना था इसलिए मुझे सीधे इन्कार करनेकी आवश्यकता नहीं थी।

(१७)

विक्रमादित्यसे प्रथम युद्ध

आज एक युगके बाद मैं अग्रोदका लौटा। अब मैं अपरिपक्व बुद्धि किशोर नहीं बल्कि तीस वर्षका प्रौढ़ तरुण था। माधव और मैं दोनों होने यमुना पार करके यौधेय-भूमिमें पैर रखते ही अपने चीवरोंको यमुनाकी नील-धारामें बहाकर गण-क्षत्रियोंका बाना धारण कर लिया था। चन्द्रगुप्तने मुझे प्रलोभन, प्रेम और सम्मान सभीके द्वारा अपनी ओर खींचना चाहा। वह जानता था कि यौधेय कितने वीर हैं, और जहाँ जन्मभूमिका सवाल आया कि वह एक-एक मर जाएंगे, मगर अपने गणके अस्तित्वको जाने नहीं देंगे। यद्यपि चन्द्रने मुझसे यौधेयोंके ऊपर आक्रमण करनेकी बात कभी नहीं कही, किन्तु मैं जानता था, दिलमें रहते हुए भी वह इसे मुझसे छिपाना चाहता है। उसने क्षत्रपोंका नाम लिया, वाकाटकोंका नाम लिया, कुषाण देवपुत्रोंका नाम लिया, लेकिन कुषाण और क्षत्रपके बीचमें अपनी सीमापरके यौधेयोंका नाम नहीं लिया। मैंने समझ लिया कि वह क्यों यौधियोंका नाम नहीं ले रहा है। समुद्रगुप्तको अपने मातृकुलका भले ही प्रेम हो किंतु चंद्रगुप्त अपने मातृकुलकी इसके सिवा कुछ पर्वाह नहीं करता, कि वह अपने दौहित्रके सामने सबसे पहिले अपनी स्वतंत्रताकी भेट चढ़ाए। समुद्रगुप्तमें वीरों जैसी उदारता थी, किन्तु चन्द्रगुप्त भगवान् कौटिल्यकी अनुमतिके बिना किसी भी वीरताको बेवकूफ़ी कहता था। समुद्रगुप्तने अपने पिता-माताके नामसे दीनार ढलवाए और उनके पीछे 'लिच्छिवयः' लिखकर अपने मातृकुलके प्रति स्नेह और कृतज्ञता प्रकट की। लेकिन चन्द्रगुप्तसे यौधेयोंकेलिए मैं कोई ऐसी आशा नहीं रखता।

अग्रोदकामें बंधुओंने मेरे घरको सुरक्षित रखा था, पिताकी संपत्ति धरोहर के तौरपर रखी हुई थी, लेकिन साथ ही वह पिताकी सबसे बड़ी सम्पत्ति और कुलकी आशा मुझे मानते थे। उन्होंने कितनी ही बार मेरा पता पानेकी कोशिश की, लेकिन कहीं पता न मिला। मुझे देखकर ही उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। मुझे भी अपने बंधुओंमें आनेका कम आनन्द नहीं हुआ, लेकिन अफ़-

सोस भी हुआ क्योंकि उनको आनेवाले खतरेकी कोई फ़िक्र न थी। शायद लिच्छवि-दौहित्रकी तरह वह भी यौधेय-दौहित्रसे बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए बैठे थे। मैंने गण-वृद्धोंको समझानेकी कोशिश की, लेकिन जल्दी ही मालूम हो गया कि बूढ़े पुरानी दुनियामें विचर रहे हैं। अब मैंने अपना ध्यान तरुणों-की ओर किया। मैंने उन्हें बतलाया कि यौधेय-नौका बड़े भयंकर भवरमें पड़ने-वाली है। चन्द्रगुप्तसे हमें किसी दयाकी आशा नहीं करनी चाहिए, मैंने यह भी आशंका प्रकट की कि दयाकी बात तो अलग चन्द्रगुप्त सबसे पहले हमें ही अपनी तीरका निशाना बनाएगा। मेरे समवयस्क रेवतकने पूछा—"जब उसके सामने वाकाटक और महाक्षत्रप मौजूद हैं, जब अभी वह देवपुत्रके साथ पूरी तौरसे निबट नहीं चुका है; तो हमारी ओर पहिले ध्यान वह क्यों देगा?"

"क्योंकि वह अपने सारे प्रतिद्वन्दियोंमें हमें ही सबसे निर्बल समझता है।"

"क्या वह यौधेयोंको जानता नहीं?"

"खूब जानता है, लेकिन उसे चारोंमें से एकको पहले चुनना है। तुम चन्द्रगुप्तको इतना मूर्ख तो नहीं समझते कि चारोंके साथ एक ही बार लड़ाई छेड़े।"

"'एक बार एक', यही राजनीति है।"

"और मैं समझता हूँ—वह एक, पहले यौधेय होंगे।"

"वह हमें इतना निर्बल क्यों समझता है?"

"तुम खुद यौधेय वृद्धोंसे बात करके उनके मनोभावको देख लो। तुम खुद अग्रोदका, पृथूदका (पेहुआ) रोहितकी या कहीं भी जाकर पता लगा लो, क्या पिछले तीस वर्षोंमें हमने अपनेमें योद्धाओंके गुणोंको बढ़ाया है या घटाया?"

"लेकिन यौधेय-तरुण तो अब भी जन्मभूमिकेलिए सब कुछ निछावर करनेकेलिए तैयार हैं। खैर यौधेय वृद्धोंके बारेमें तो तुम भी उतने आशावान नहीं हो। फिर जिन घरोंने पिछले तीस वर्षोंमें व्यापारके द्वारा लाखों दीनारोंकी संपत्ति जमा कर ली है क्या वह युद्धको पसन्द करेंगे, क्या उनके लड़के यौधेयकी अपेक्षा बनिया अधिक नहीं मालूम होते, क्या उन्होंने कष्ट और कठोर जीवनकी जगह सुख और विलासके जीवनको पसन्द नहीं किया?"

रेवतकको मेरी-बातें स्वीकार करनी पड़ीं। यौधेय-तरुण मेरी बातपर अविश्वास कैसे कर सकते थे, वह जानते थे कि चन्द्रगुप्तको जितना मैं जानता हूँ, उतना स्वयं चन्द्रगुप्त छोड़ दूसरा कोई नहीं जान सकता। चन्द्रगुप्त क्या तैयारियाँ कर रहा है इसे वह यौधेय-भूमिमें बैठे-बैठे नहीं देख सकते। मैंने उन्हें दिखलाया कि कैसे तुखार, कम्बोज और सिंधके घोड़े यमुनाके पूर्व तटपर पहुँचते ही हाथों-हाथ बिक जाते हैं। वह देख रहे थे, कि घोड़ोंका दाम कभी इतना महँगा नहीं हुआ और घोड़ोंके व्यापारमें कभी इतना लाभ नहीं रहा। मैंने भिन्न-भिन्न नगरोंके पचीस यौधेय तरुणोंको अश्व-वणिक बनकर पाटलिपुत्र जानेकेलिए कहा। उन्हें सीमान्तके भीतर पहुँचते-पहुँचते अच्छे दाम मिल जाएँगे, लेकिन उन्हें पाटलिपुत्र जाना था, इसलिए सौदा नहीं किया। इस यात्रामें उन्होंने जो देखा उससे विश्वास हो गया कि विक्रमादित्य किसी भीषण विक्रमकी तैयारी कर रहा है।

मैंने अपने मित्रोंको समझा दिया कि विक्रमादित्यके गुप्तचरोंसे यौधेय भूमि खाली नहीं है। भिक्षु, भिखारी, वणिक, ज्योतिषी आदिके रूपमें जितने भी पूर्वके आदमी हमारे यहाँ घूम रहे हैं उनमें काफी संख्या इन गुप्तचरों की है। इसलिए हमें अपनी तैयारीको बड़ी सावधानीसे करना होगा, हमने एक वक्त घुड़-दौड़ोंके खेलका शौक लोगोंमें पैदा किया, सुअर और दूसरे खतरनाक जानवरोंकी शिकार की ओर स्वयं रुचि दिखलाकर प्रेरणा दी। अखाड़ोंमें फिर भीड़ होने लगी, हथियारोंके साथ वे अनुराग दिखलाने लगे। साथ ही सुरा और सुंदरियोंमें तरुणोंको लिप्त दिखलानेमें पूरी कोशिश की। बल्कि उन दो वर्षोंमें बाहरी आदमी हमारे सुरा-सुंदरी प्रेमको ही अधिक देख सकता था। जहाँ यौधेय जीवनकेलिए हम बीस-तीस की संख्यामें एकत्रित होते, वहाँ सुरा-सुंदरी सम्मेलनमें हज़ारों तरुण जमा हो जाते थे। हमने अपने सैनिक-शिक्षा को जान-बूझकर छोटी-छोटी टोलियोंमें सारे देशमें बिखेर दिया। लेकिन हमारी बीस-बीस की टोली छिन्न-भिन्न टुकड़ी नहीं थी। वह एकके साथ एक जुड़ी हुई चली गई थी। हमारी सुराका रंग पके गूलरसे भी ज्यादा लाल होता था और उसके पीने-वाले जल्दी ही सुध-बुध नहीं खो बैठते थे; किन्तु उसमें सुरा कम जल और रंग ज्यादा होता, नशा कम बनावट ज्यादा होती थी।

मैंने वृद्धोंकी मनोवृत्तिको देखकर उन्हें रहस्य नहीं बतलाया। जब तरुणोंका संगठन और काफ़ी बढ़ गया तो उन्होंने इसे जवानीके जोशसे बढ़कर कोई बात समझी। सुरा-सुन्दरीके जोरको देखकर उन्हें आशंका होने लगी। एक दिन हमारे गणके पुरस्कर्त्ता बप्प यौधेयने मुझे बुलाकर पूछा—"वत्स जय! तुमसे हम बड़ी आशा रखते हैं। तरुणोंपर तुम्हारा प्रभाव है, यह भी हम जानते हैं। क्या तुम इसे बुरा नहीं समझते कि लड़के मदिरामें बेहोश हो लड़कियोंके साथ नाचनेकेलिए एक दूसरेसे लड़ते फिरें?"

"आपकी बात मैं मानता हूँ आर्य्य! लेकिन पिछले तीस वर्षोंमें वृद्धों हीने उन्हें यह रास्ता दिखलाया।"

"लेकिन हम कभी इतनी दूर तक नहीं गए।"

"मथुराके उपरिक महाराजके दर्बारकी नक़ल यौधेय-भूमिमें कौन करता फिरता था? कौन उपरिकके अन्तःपुरको देखकर अपने यहाँ भी अधिकसे अधिक सुन्दर दासियोंको जमा करनेकी कोशिश करता था? हाँ यह ठीक है, यह बातें उतनी खुलकर नहीं हुआ करती थीं। लेकिन जहाँ तक यौधेय-भूमिका सवाल है, चाहे खुलकर करें या छिपकर, दोनों ही अवस्थामें हमारी वीरता नष्ट होती है।"

"वत्स समझाओ, तुम्हीं कह रहे थे कि गुप्तोंकी कुटिल दृष्टि हमारी भूमि-पर है। यदि वह बुरा दिन आया, जबकि तैंतीस साल पहलेकी तरह गुप्तोंके घोड़े हमारी प्रिय भूमिको फिर रौंदने लगे, तो कौन उसके सम्मान और स्वतंत्रताकी रक्षा करेगा।"

"रक्षा करनेका सवाल क्या है, यहाँ तो डेवढ़े-दूने नफ़ेकेलिए हमारे बड़े-बड़े यौधेय सार्थवाह तुषार कम्बोजसे हर साल हज़ारों घोड़े लेकर चन्द्रगुप्तके हाथमें बेंच आ रहे हैं। आप चाहे डेवढ़े-दूने लाभका व्यापार कीजिये, या यौधेय-भूमिको बचाइए। मैं समझता हूँ कि लाभका ख्यालही ज्यादा अच्छा है। चीनांशुककी जगह मोटा चोर पहनना, गंधशाली और गोधूम चूर्णकी जगह कोदो खाना, चतुर भूमिक पंचभूमिक सौधों और प्रासादोंकी जगह मामूली मकानोंमें रहना, क्या आर्य आप यौधेय भद्रपुरुषोंको स्वर्गीय

जीवनसे निकालकर नर्कमें डालना चाहते हैं ! बल्कि मैं तो कहूँगा आर्य आप भी अब नामके महाराज न रहें।"

"वत्स ! तुम्हारा दिल दुखा, तभी इतने कठोर शब्द तुम्हारे मुँहसे निकल रहे हैं। हम लोगोंने तुम्हारी बातका खयाल नहीं किया, लेकिन उसकेलिए तुम्हें हमपर क्रोध आना चाहिए, यौधेय-भूमिपर तो नहीं। यदि हम यौधेय माँके दूधको लजाएँ, 'तो क्या तुम हमें वैसा करनेकेलिए छोड़ दोगे' कहते-कहते पुरस्कर्त्ता बप्पकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने भर्राई आवाज़में फिर कहा 'यव-धेय-य मा-त....'

मैंने पुरस्कर्त्ताके चरणोंको पकड़ लिया। मेरी आँखोंमें भी आँसू थे जब मैं पढ़ने लगा—"तात कठोर शब्दोंकेलिए मुझे क्षमा करें। आप विश्वास रखें हम अपने खूनसे यौधेय माताके दूधकी लाज रक्खेंगे। आज रातको मेरे साथ आप चलें तो मैं दिखलाऊँगा, कि चंद्रगुप्तकी आँखमें धूल झोंकनेकेलिए यौधेय तरुण क्या-क्या कर रहे हैं।"

शामके वक्त पुरस्कर्त्ता बप्पको साथ लेकर हमें सुरा-गोष्ठी जाना था। मैंने अग्रोदकाकी सैकड़ों गोष्ठियोंमेंसे कोई एक उन्हींको चुननेकेलिए कहा। उन्होंने ऐसी गोष्ठी चुनी जिसकी शिकायत वह सबसे अधिक सुन चुके थे। उस दिन चाँदनी रात थी। एक घरके आँगनमें सौके क़रीब तरुण-तरुणी जमा थे। मकानमें कोई वृद्ध नहीं बच रहा था, तरुण मालिक खुद गोष्ठीमें बैठा शराबियों-कीसी तान ले रहा था। हम दोनोंके पास पहुँचते ही पहले तो सारे तरुण-तरुणी खूब ठठा कर हँसे। फिर रेवतककी आवाज़ सुनाई दी।

"आ-ा-ा ग-ग्-ग-या-ा ब्-बु ड्-ड्‌ ढा-ा। आ-ा-ा त्-त्-तू भी-ी-ी क-क्-या-ा क्-क्-क-है-ग्-गा-ा।" दूसरी आवाज़ एक तरुणी की थी—"द्-दे-द्-द्-दे, ब्-ब्-बुड-ड्-ढे को -ो-ो ब्-ब्-भी-ी ए-ए-एक प्-प्-या-ा-ला-ा।"

इस तरहकी कितनी ही आवाज़ें आ रही थीं। कोई कहता, बुड्ढा चाँदनी रातमें बाहर नहीं पियेगा, कोई कुछ कहता, कोई कुछ कहता, कोई किसीकी पीठपर झूल रहा था, कोई लेटे ही लेटे दाहिनी हथेली हिलाते हुए पुरस्कर्त्ता बप्पको अपने पास बुलाता था मुझे भी उन्होंने दो-चार सुनाईं—"य-य ह ज-

ज्-ज-वा-ा न्-न ब्-ब्-ब-न्-न त्-ता-ा है-", ह-हि-ज्-ज्-ज-ड़ा-ा-क्-क्-क-हीं-का-ा," "ज्-ज्-जो-ा-ध्-धे य न्-न-ही ँ ।", " ह्-हम जो-ौ-ध्-धे-य है ", "आ-ा-न पी- ी- ी -ल-ले ए-एक घ्-घूँ-ट"

पुरस्कर्त्ताने मेरा हाथ पकड़कर कहा—'जाने दो वत्स, ये सब बेहोश हैं, बेइज्ज़त कर देंगे।" मैं हाथ छोड़कर कूद गया और काँच-कुतुपमें भरी लाल सुरा बप्पके पास लाया। चिल्लूमें डालकर पहिले उन्हें सूँघनेकेलिए कहा, उसमें वह मादक गन्ध नहीं थी। फिर मैंने एक चिल्लू पीकर उन्हें पीनेकेलिए कहा। पीकर बोले—इसमें तो शराबका पता नहीं है। वह तरुणोंकी तरफ़ देखकर मुस्कुराए, सब अभिनय छोड़कर शान्त बैठ गए। पुरस्कर्त्ताने कहा—"यौधेय माताके लालो! माँकी लाज तुम्हारे हाथमें है।"

एक सौ कण्ठोंसे एक साथ आवाज़ निकली—"पहिले हमारी जान जायगी तब माँकी लाज जाएगी!"

पुरस्कर्त्ता बप्पने अपना मुँह घुमा लिया। मैंने देखा उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह रही है।

यौधेय गणके पुरस्कर्त्ता महाराज महासेनापति बप्प अब सब तरहसे हम तरुणोंके साथ थे। उन्हें हमने अपने कामका पूरा-पूरा परिचय दिया। हमारी तरुणसेनामें कितने सैनिक हैं, कितने हथियार हैं, उनकी कितनी शिक्षा हुई है। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि तीस-तीस साल तक मर-मरकर लाखों दीनार जमा करनेवाले मृत पिताओंके कितने ही पुत्र अपनी सारी संपत्ति हथियार और घोड़े खरीदनेकेलिए दे चुके हैं। तरुण ही नहीं तरुणियाँ भी धनुष-खड्ग और भालेको अच्छी तरह चला सकती हैं लेकिन साथ ही मैंने उन्हें सावधान किया—"आर्य! अभी हम इस अवस्थामें नहीं हैं कि हमारा रहस्य चन्द्रगुप्तको मालूम हो जाए। और आपके गण संस्थामें शायद ऐसा भी कोई यौधेय-कुल-कलंक निकल आवे जो चन्द्रगुप्तकी इसमें सहायता करे। इसलिए पहिले उन्हीं लोगोंको रहस्य मालूम होने दें जिनसे कोई खतरा न हो।"

"बप्पने मुझे निश्चिन्त रहनेकेलिए कहा। साल भर हो गये, एक दिन सारे यौधियोंकी सर्वोच्च गण परिषद् अग्रोदकामें बैठी, सभी जगहके सदस्य वहाँ पहुँचे थे। पिताके मरनेके बाद मैं परिषदका सदस्य था। दूसरे छोटे-बड़े

कामोंके बाद पुरस्कर्त्ता बप्पने कहा—"पूज्य गण ! मेरी सुनें। आज कितने ही समयसे हमारे गणके पुरस्कर्त्ताको महाराजकी पदवी मिली थी, मुझे भी महाराज कहा जाता है लेकिन आज गणके सामने मैं अंजलि-बद्ध हो प्रार्थना करता हूँ कि हमारे गणसे अब महाराजकी पदवी उठा दी जाय। महाराज बहुत भयंकर शब्द है। हमारे पच्छिममें एक राजातिराज हैं और पूर्व तरफ़में राजाधिराज। आप जानते हैं वहाँ महाराज या महाराजाधिराजका क्या अर्थ होता है ? सैकड़ों भेड़ोंका मालिक गड़रिआ ! हमारे यहाँ भी कभी किसीके मनमें यह भाव न आ जाय इसकेलिए ज़रूरी है कि यौधेय-भूमिमें कोई महाराज कहलानेका अधिकार न रखे।"

नये लखपती जालुकने बड़े मीठे स्वरसे कहा—"पूज्य गण, हमारे महाराज महासेनापति शायद इस पदवीको अपना वैयक्तिक सम्मान समझते हैं। मैं समझता हूँ कि आप मेरी बातसे सहमत होंगे। यदि मैं कहूँ कि हमारे गणमें अनादि कालसे यह सम्मानदान चला आया है। गण अपने योग्य पुत्र-को यह सम्मान प्रदानकर अपनेको सम्मानित समझता है। इसमें कोई व्यक्ति-गत बात नहीं है।"

जालुककी बातका समर्थन करनेकेलिए दस-बारह आदमी और खड़े हुए थे। इसमें अचरज करनेकी ज़रूरत नहीं यदि वे सभी लखपती व्यापारी थे। मैं अबतक चुप था। मैंने पुरस्कर्त्तासे आज्ञा लेकर कहा—

"पूज्य गण ! मुझे क्षमा करें, यदि आयु और अनुभवमें इतना छोटा होते भी मैं वृद्धजनोंकी बातका विरोध करनेकेलिए धृष्टता करूँ। मैं आर्य बप्प-की रायसे बिल्कुल सहमत हूँ। महाराज शब्द यद्यपि चार अक्षरोंका है लेकिन ये हलाहल विष-सा असर रखता है। हमारे पूर्व, पच्छिम, दक्खिनके परम-भट्टारक लोग इन चार अक्षरोंको देकर आदमीसे कुल-घात, देश-घात, धर्म-घात ही नहीं आत्मघात तक कराते हैं। यह कहना भी ग़लत है कि गणोंमें महाराजकी पदवी अनादि कालसे चली आई है। गण राजतंत्रसे भी पुरानी व्यवस्था है। आज जहाँ आप परमभट्टारकोंकी छत्रच्छाया देख रहे हैं वहाँ कभी गणद्रुमकी शीतल छाया फैली हुई थी। परमभट्टारकोंके रनिवास और विलासपर कोटि-कोटि दीनार नहीं ख़र्च होते थे; परमभट्टारकके चरणसे दूसरों-

के मुकुट छुआनेकेलिए लाखों योद्धाओंकी बलि नहीं चढ़ाई जाती थी। आज दो हज़ार वर्ष भी नहीं हो पाये हैं, जब इसी यमुनाके उस पार कुरु और उससे आगे पंचालगणमें कोई गणपति या पुरस्कर्त्ता राजा बना, और उसमें धीरे-धीरे कुरुओं और पंचालोंके गणोंको शासन अधिकारसे वंचितकर सारी शक्ति हाथमें ले ली। यह बात पीछे दूसरे गणोंमें भी दुहराई गई। आज कहाँ है कोशलोंका गण, काशियोंका गण, चेदिओंका गण, वत्सोंका गण? भारतके प्रायः सारे ही गण राजाओं, महाराजाओं, राजातिराजों, महाराजाधिराजों, परमेश्वरों, परमभट्टारकोंके पेटमें चले गए। वह यह नहीं स्वीकार करते, कि उनके पूर्वजोंने गणके साथ विश्वासघात किया। वह कहते हैं, भगवानने हमें प्रजाके उपकारकेलिए भेजा है। (तरुण सदस्य कुमार बीच हीमें बोल उठा 'उपका-ा-र !' 'उपका-ा-र !')की बात वही कहेगा जो राजाओंके भोग-विलास, उनके जघन्य कामुक-जीवनको नहीं जानता। दुराचार अत्याचारकी मूर्त्ति इन राजाओंके न होनेसे प्रजाका क्या बिगड़ता? क्या राजा न रहनेसे हम यौधेय दुराचारी हो गये, हम भूठ बोलते फिरते हैं, पराई बहुओंको घरमें डालते फिरते हैं या हम लोग राजाओंकी प्रजासे ज़्यादा दुखी हैं। यमुना अग्रोदकासे बहुत दूर नहीं है उस पार भाँककर ही आप जानते हैं कि दोनोंमें महान् अन्तर है। मैं मानता हूँ कुछ समय हुए हमारे गणने अपने पुरस्कर्त्ताको महाराजकी पदवी दी। शायद उस वक्त यवनोंका हमपर आतंक था, या शकोंका। शायद राजातिराजों-को खुश करनेकेलिए हमारे गण वृद्धोंने वैसा किया हो। लेकिन थी बड़े खतरे-की चीज़। शायद राजाधिराजमें उनकी उतनी समझ या शक्ति नहीं रही हो इसलिए उसने उपस्कर्त्ताको असली महाराज नहीं बना दिया। मैं समझता हूँ हम अपने उपस्कर्त्ताको सिर्फ़ आर्य कहकर उतना सम्मान दे सकते हैं, सिर्फ़ यौधेय गण-पति या यौधेय सेनापति कहकर उतना सम्मान दे सकते हैं जितना महाराज कहनेमें नहीं। मेरी पूज्यगणसे यही प्रार्थना है कि महाराज पद-को यौधेयगणसे उठा दिया जाय।"

मेरे भाषणके बाद और भी कितने ही यौधेय उठे, सबने मेरी बातका समर्थन किया। पुरस्कर्त्ताने विरोधियोंसे पूछा—कि क्या आप लोग अपने विरोधको छन्द (वोट)से परखना चाहते हैं या हटा लेना चाहते हैं। धनिकोंने

परिषदमें अपनेको अकेला देखा और यह भी देखा कि लोगोंकी तैयारियाँ कितनी बदली हुई हैं। विरोध हटा लिया गया, और यौधेयगणने महाराज पदको हटा दिया।

हमारे सालभरके प्रयत्नसे यौधेयोंमें एक नया जीवन, नई स्फूर्त्ति दिखाई देने लगी। जालुक जैसे धनियों तथा दो-चार और वृद्धोंको छोड़कर सभी हमारे कामको प्रसन्नताकी दृष्टिसे देखते थे। जालुक और उसके संगी-साथी ज़रूर आपसमें कह उठते थे—यह जय यौधेय-भूमिमें आग लगाकर छोड़ेगा, गुप्तोंकी सेना फिर आएगी और फिर हमारा घर-बार तबाह होगा। जालुक आदि क्या सोच रहे हैं इसे हम जानते थे और हमारे साथी लोगोंसे खुल्लम-खुल्ला कहते थे—जालुकको यौधेय-भूमिसे कोई मतलब नहीं, उसे अपने दीनार सुरक्षित चाहिए। कोठेपर कोठे बनने चाहिए, उसे यौधेय-भूमिसे क्या मतलब। यौधेय तरुण अपनी सफलतापर बहुत खुश थे यद्यपि गण-परिषदके सदस्य अब भी परिवार ज्येष्ठ थे, अतएव, उनमें वृद्धोंकी संख्या अधिक थी; तो भी अब यौधेय-भूमिके अगुआ तरुण थे। हमने एक भी यौधेय तरुणको अपने संगठन-से बाहर नहीं रहने दिया। बीस-बीसकी मण्डली फिर पाँच-पाँचकी शतिका, फिर दस-दसकी साहस्रिका सेना और ऐसी सेनाएँ सैकड़ों तैयार हो गई थीं। तरुणोंने मुझे अपना सेनापति चुना। महासेनापति बप्पने गण-परिषदकी ओर-से यह पद स्वीकार करनेकेलिए कहा लेकिन—यह जब हमारे कामको डेढ़ वर्ष-से ज्यादा हो गए थे, तबकी बात है।

एक बार हमारे तरुण सेनानायकोंको बैठक भद्रामें थी। सबने अपनी-अपनी सेनाके प्रबंधका परिचय दिया। उनके वार्त्तालाप और व्यवहारसे पता लगता था कि वह अपनी जिम्मेवारीको अच्छी तरह समझते हैं। तब भी मैंने कहा—

"वयस्यो! आज यौधेय तरुणोंके पीछे चल रहा है। यह प्रसन्नताकी ही नहीं बल्कि बहुत आशाकी बात है। लेकिन साथ ही हमारी ज़िम्मेवारी कितनी बढ़ जाती है इसे आप खुद समझ सकते हैं। मेरे मित्र माधव-मालव इस तरह शुरू हीसे हमारे साथ काम कर रहे हैं यह आप लोगोंको मालूम है। अभी हालमें वह हम लोगोंके सन्देशको लेकर अपने गणमें गये। वहाँके

बारेमें वे .खुद कहेंगे। माधवने कहा—"मालवगणमें जिस आशासे मैं गया था, खेद है उसमें मैं सफल नहीं रहा। जय यौधेयके दो बार जाने हीसे आर्जुनायन तरुणोंमें उत्साहका प्रवाह उमड़ आया। मालवगण आज धनिकोंके पीछे चल रहा है। चन्द्रगुप्तको दामाद पाकर कभी लोग .खुश होते हैं, और कभी महाक्षत्रप रुद्रसिंहके साथ सुलह और सम्मान पाकर फूले नहीं समाते। कहते हैं—'मालवगणको कोई डर नहीं। उसके दोनों पड़ोसी एक-दूसरेके खूनके प्यासे हैं। चंद्रगुप्त और रुद्रसिंहको लड़ा देना, बस हमारा काम निकल आया।' उनको यह समझमें नहीं आता कि यदि एकने दूसरेको पछाड़ दिया फिर विजेताको मालवके भीतर आनेसे कौन रोक सकता है?" हमारे यहाँ महाराज महासेनापति बने हुए हैं, बने ही हुए नहीं हैं बल्कि ध्रुवदेवीके पिता······वर्माको आशा है कि वह भी अपना राजवंश क़ायम कर सकेंगे। अफ़सोस इसी बातकी है कि मालवगण इन बातोंको देखता नहीं। मैं कहूँगा कि अपने यौधेयोंमेंसे महाराज पदको निकालकर बहुत अच्छा किया। मैं चाहता था, कि कुणिन्द-यौधेय-आर्जुनायन गण-संघके भीतर मालव भी शामिल हो जायँ, लेकिन मालव इसमें अपना स्वार्थ नहीं समझता। अन्तमें उन्हें पछताना पड़ेगा इसमें क्या सन्देह।"

माधवने और भी कामकी बातें बताईं। हमारे अश्वपति सेनानायक रेवतकने अश्ववाहिनीके बारेमें बतलाते हुए कहा—"अगले युद्धमें घोड़ोंका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण होगा, खासकर जबकि हम गजसेनामें अपने प्रतिद्वंदियोंका मुक़ाबिला नहीं कर सकते। लेकिन जितने घोड़े हम चाहते हैं, उनके नामका तो सवाल है ही, साथ ही उनका मिलना भी सुगम नहीं। देवपुत्र अलग अपनी अश्वसेनाको बढ़ा रहा है। चन्द्रगुप्त और महाक्षत्रप भी ज्यादा से ज्यादा घोड़े खरीद रहे हैं। ऐसी अवस्थामें हमें अपने घोड़ोंके बढ़ानेका कोई और उपाय सोचना चाहिए। मैं समझता हूँ कि अच्छे घोड़े तुषार और कम्बोज हीमें पैदा हो सकते हैं, दूसरी जगह नहीं, यह धारणा ग़लत है। मैंने अच्छी नसलके एक कम्बोज घोड़ेसे अपने यहाँकी दो बड़वाओंके बछेड़े पैदा कराये हैं और मुझे विश्वास हो चला है कि हम यौधेय-भूमिमें भी अच्छे घोड़े पैदा कर सकते हैं।"

सेनानायक चित्रने कहा—"वयस्य रेवतककी बात मुझे भी ठीक जँचती है। हम अपने प्रतिद्वंदियोंसे आशा नहीं रख सकते कि वह हमारी सेनाकेलिए घोड़ा देंगे। घोड़ियोंके बेचनेकेलिए तो देवपुत्रकी ओरसे कड़ी मनाही है। लेकिन हमारे यहाँ दस हज़ारसे अधिक घोड़ियाँ हैं। हम अपने कामकेलिए उन्हें इस्ते-माल कर सकते हैं।"

हमने यह भी तय किया कि यौधेय-भूमिसे घोड़े-घोड़ियोंका बाहर जाना रोक दिया जाय। हमारे ही गुप्तचर पड़ोसियोंकी गतिविधिकी खबर दे रहे थे। मालूम हुआ कि चंद्रगुप्त बहुत उतावलापन दिखला रहा है। लेकिन अब हम सजग थे, यह उसे भी मालूम था। मथुराके उपरिकने जालुक जैसे अपने परि-चितोंसे अप्रत्यक्ष रूपेण धमकी भी दी थी। लेकिन हमारी ओरसे नम्रतापूर्वक कहा गया कि हम दिवंगत परमभट्टारककी बातोंको अब भी मानते हैं। हम गुप्त-नृपतिके सहायक और मित्र रहना चाहते हैं।

मुझे यौधेय लौटे दो सालसे कुछ अधिक हो गया था, जबकि एक दिन हमारे चरने गुप्तवाहिनीको यौधेय सीमाकी ओर अभियान करनेकी खबर दी। हमारा सौभाग्य था कि पच्छिम और दक्खिनके पड़ोसियोंसे हम निश्चिन्त थे। महासेनापति बप्प गण-परिषदको बुलाकर सारी बात उसके सामने रक्खी। परिषदने तीन आदमियोंकी युद्ध-समिति बनाई, युद्ध-समितिके हाथमें सेना-संचालनका काम सौंप दिया, जिसमें महासेनापति और मेरे अतिरिक्त रेवतक भी थे। फिर कुणिन्द और आर्जुनायन के साथ सम्मिलित संघने उन दोनों गणोंके दो सदस्य धनमित्र और शिवको युद्ध-समिति में भेजा। मथुरा के पच्छिमसे लेकर स्रुघ्न (अंबाला) तककी सीमाके सभी दुर्गोंको हमने युद्धकेलिए तैयार कर लिया। हमारे बड़े नगर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)के नज़दीक पड़ते थे, इसलिए सबसे अधिक वहीं आक्रमण होनेका डर था। मैं रेवतक और माधवसेन उस जगह तैनात हुए। कुरु (मेरठ)के लोग यद्यपि दो सहस्राब्दियोंसे अपनी गणस्वतंत्रताको खो चुके थे, किन्तु गुप्तोंसे वह प्रसन्न नहीं थे—करोंके बोझसे बेचारे पामाल थे। उनकी भीतरी सहानुभूति हमारे साथ थी। जब हस्तिनापुर और दूसरे घाटोंपर गुप्त-सेनाएँ उतरने लगीं, तभी हमें ख़बर लग गई। यह भी मालूम हुआ, कि सेनाके साथ पाँच सौ हाथी हैं। हम चाहते तो यमुनाके

पारमें गुप्तोंका मुक़ाबिला करते, किन्तु यह ख़तरेकी बात थी, इमें सारी सेनाको उस पार उतारना पड़ता और रसद-पानीको भी वहीं जुटाना होता। हमने अपनी सीमाके भीतरके बहुतसे गाँवोंको खाली करा दिया। और हम बड़ी उत्सुकतासे अपने प्रतिद्वंदाकी प्रतीक्षा करने लगे। अपने इन्द्रप्रस्थके दुर्गसे मैं देख रहा था झंडों और पताकोंसे सुसज्जित उस भारी भीड़को। रथोंसे हम निश्चिन्त थे क्योंकि हम जानते थे कि उनकेलिए यमुना पार करना आसान नहीं होगा। सारी नावें हमारे हाथमें थीं और उन्हें हमने जैहाँ-तहाँ डुबा दिया था। मथुरासे नावोंके आनेका डर था लेकिन उन्हें हमारी तीन-तीन चौकियोंको पार करना पड़ता, और हमारे सैनिकोंने उधरसे एक भी नावको इन्द्रप्रस्थकी ओर बढ़ने नहीं दिया। गुप्त-सेनाने उस पार डेरा डाल दिया और इस पार हमारे सवार और सैनिक।

वह उधर बड़े-बड़े पटह (नगाड़े), नरसिंहें, भेरी, और दूसरे बाजे खूब ज़ोर-ज़ोरसे बजा रहे थे। माधव कह रहे थे—"चन्द्रगुप्तको यह खयाल नहीं है कि यौधेय तिनके नहीं हैं जो फूँकसे उड़ जाएँगे। हमारी ओर भी रण-वाद्य बज रहे थे, हमारी ओर भी यौधेयगणकी जयध्वनि हो रही थी। हमने समझ लिया था कि गुप्त अपने हाथियोंको पार उतार सकते हैं, वही हुआ भी। पाँच दिनकी प्रतीक्षाके बाद अष्टमी आई। मध्य रात्रिको चन्द्रमा अस्त हो गया। चारों ओर अँधेरा छाया था, किन्तु हेमन्तके निरभ्र आकाशमें तारे आज बहुत अधिक बिखरे हुए थे। दोनों तरफ़ लाखों आदमी पड़े हुए थे, किन्तु कहीं कोई शब्द सुनाई नहीं दे रहा था। इसी वक्त पानीमें थप-थपकी आवाज़ आई। हमारे सैनिक सजग हो गए। बड़े-बड़े भालोलिए मज़बूत असवार तैयार थे। धानुष्क (धनुर्धर) अपने तीरको अपने धनुषपर लगाये शत्रुकी बाट देख रहे थे। पदाति भी सजग थे। यदि हमारे शत्रुओंको उस रातमें यह लाभ था कि हम उनके ऊपर अपने तीरोंका निशाना नहीं लगा सकते तो भी उन्हें यह मालूम नहीं था, कि हम कैसे उनका स्वागत करने जा रहे हैं।

हाथी तीन-चार पाँतीमें आ रहे थे, जलमें उनकी पद-गतिसे समुद्र-मंथनकी याद आती थी। हमारे हृदयमें भी मंथन हो रहा था, इसमें शुबहा नहीं। नज़दीक आते देख हमारे सैनिकोंने कुछ तीर छोड़े, किन्तु अभी प्रत्याक्रमण

नहीं शुरू किया। हमने जहाँ-तहाँ बीस-तीस हाथियोंको यमुनासे निकलनेका मौका दिया फिर बड़े ज़ोरकी बाण-वर्षा और भालोंका प्रहार शुरू हुआ। हाथी उस जगहसे मुड़कर दूसरी ओर बढ़ना चाहते थे। जहाँ-तहाँ लोहेके गोखरू काँटे बिछा रखे थे, कहीं-कहीं गड्ढे फूस और मिट्टीसे ढके हुए थे। हाथियोंका चिग्घाड़ते हुए गड्ढेमें गिरना या गोखरू बिंधे पैरोंकी पीड़ासे पीछेकी तरफ़ हट जाना, इसने हमें काफ़ी सहायता की। उसके बाद हमारे घुड़सवारोंके लंबे भाले तो थे ही। दो घड़ीके युद्धके बाद ही हमें परिणामका पता लग गया। लेकिन युद्ध सूर्योदय तक चलता रहा। शायद ही कोई हाथी पीछे लौटकर गया हो। हमें कितने ही बन्दी हाथ आए थे, जिनमें गुप्तोंका महाबलाधिकृत घायल वीरसेन था।

वीरसेन हमारे सामने लाया गया। मैं देखते ही उसके पास जा कर-स्पर्श किया और बड़ी नम्रतापूर्वक कहा—"विक्रमादित्यके महाबलाधिकृतका यौधेयभूमिमें स्वागत"। उसने आँख उठाकर मेरी तरफ़ देखा फिर मुस्कुरा दिया।"

मैंने कहा—"बंधु वीरसेन! कैसी जगह हम एक दूसरेसे मिले हैं। लेकिन अब हम प्रतिद्वन्दी नहीं हैं। हम जय और वीरसेनकी तरह मिल सकते हैं।"

वीरसेनके घावको मरहम-पट्टीकेलिए कहकर मैंने उसे अपने वास-स्थानमें अच्छी तरह रखनेकेलिए भेज दिया। सबेरे देख रहा था शत्रुकी बहुत-सी सेना यमुना-जलके पास खड़ी है। मैं सोच रहा था कि शायद सवार आगे बढ़ें, शायद गुप्तभट यौधेयोंसे मुठभेड़ करनेकेलिए नदी-पार उतरें। लेकिन थोड़ी देरकी प्रतीक्षाके बाद सारी सेना पीछेकी ओर मुड़ी। हमारी सेनामें विजयनाद हुआ। यौधेय तरुणोंने यौधेय माँकी लाज रख ली। मैं अपने बंदियोंको लिवाए महासेनापति बप्पके पास पहुँचा और जुहारकर विजय-संवाद विस्तारसे सुनाया। बप्पने मुझे, रेवतक और माधवसेनको छातीसे लगा लिया। हमने अग्रोदका, पृथूदका, रोहितकी, खंडिला, भद्रा आदि अपने ही नगरोंमें विजय-सूचना नहीं भेजी, बल्कि अपने सह-सांघिक कुणिन्द और आर्जुनायनके साथ संदेश भेज दिया। सारी यौधेय भूमिमें आनन्दकी लहर दौड़ पड़ी।

अपने बंदियोंकोलिए हम अग्रोदका पहुँचे।

(१८)

नवीन यौधेय

हमने विक्रमादित्यपर प्रथम विजय पाई, लेकिन हम जानते थे कि इस विजयसे हमने विक्रमकी शक्तिको निर्बल नहीं कर पाया और साथ ही उसके दिलमें इतना कड़ा आघात किया है कि वह उसे कभी भूल नहीं सकता है। हमारे शत्रुकी रण-निपुणता और पराक्रमके बारेमें बहुत कहनेको नहीं। शायद उसने अपने प्रतिद्वन्दीके बलका बहुत ग़लत अन्दाज़ा लगाया, और सेना-संचालनमें बहुत बुद्धिमानीसे काम नहीं लिया। मैंने वीरसेनको बहुत अच्छी तरहसे रखा और चंद्रगुप्तके पास संदेश भेज दिया कि वीरसेन अब युद्धमें नहीं है, वह मेरे घरमें है और बंधुकी तरह; घाव पूरनेके साथ ही मैं उसे भेज दूँगा। पहले तो हर एक गाँव और नगरमें अपने वीर योद्धाओंके सम्मानमें यात्रोत्सव मनाये जाते रहे। गण-परिषदने मेरा और मेरे साथियोंका बहुत सम्मान किया। सेनानायक रेवतकने वीरसेनको जीवित बन्दी बनाया था, और मैं इन्द्रप्रस्थकी सारी सेनाका संचालक था, माधवने गड्ढे, गोखरू आदिकेलिए स्थान चुननेमें बड़ा काम किया था; इसलिए इस विजयसे मेरे बाद सबसे अधिक सम्मान यौधेयोंने इन दोनों सेनानायकोंका किया। सम्मान हमें भले ही ज़्यादा मिले, लेकिन मैं जानता था कि इस विजयको लानेमें सबसे अधिक किसका हाथ था। तरुण ही नहीं तरुणियोंने भी आश्चर्यजनक आत्मोत्सर्ग दिखलाया था। हमने तरुणियोंको अस्त्र-शिक्षा ज़रूर दी थी, मगर हम उन्हें मोर्चेमें भेजनेवाले नहीं थे। यदि हमें पहले मोर्चेपर हार होती और किसी तरह विक्रम सेना यौधेय भूमिमें घुस आती, तो उससे हमें ज़रा दयाकी आशा न थी। इसलिए यौधेयोंको अपनी रत्ती-रत्ती भर ज़मीनकेलिए लड़ना था और अपने सर्वस्वके साथ। हम जानते थे कि चंद्रगुप्त यौधेय-भूमिको भुक्ति बना उसपर अपना उपरिक बैठाना चाहता है; वह गणका नाम भी रहने देनेकेलिए तैयार नहीं है, क्योंकि वह कम्बोज और वाह्लीकके जीतनेका मनसूबा बाँध रहा है और उसमें अपने पथको सुसंचित ईंटोंसे तैयार करना चाहता है। वह शायद जानता था कि जीवित यौधेय-भूमिमें वह वैसा पथ नहीं

बना सकता। वह इसकेलिए यौधेय-भूमिको श्मशान-भूमि बनाना चाहता था। इसलिए हम इस सर्व-संहारी युद्धमें अपने एक भी व्यक्ति—स्त्री हो या पुरुष, वृद्ध हो या तरुण, किसीको गुलामीके लिए बचा रखनेको तैयार नहीं थे। हमने अपनी तरुणियोंको उसी दिनकेलिए तैयार किया था, जब वह दिन आता तो उनके हाथ कंकणोंसे नहीं खड्गोंसे, उनके शिर वेणीसे नहीं शिरस्त्राणसे, उनका वक्ष मंजुश्रीसे नहीं, वर्मसे सज्जित होता। पहले मोर्चेपर हमने तरुणियोंकी कुछ टुकड़ियोंको आहार-पान और पथ्य-दानका काम सौंपा था।

यदि रात्रिको युद्ध न हुआ होता, तो तरुणियाँ हमारी योजनाकी अवहेलना करके युद्धमें न कूदतीं। यद्यपि उनके इस कामसे हमें क्षोभ हुआ, गण-परिषद्में भी इसकी निन्दा की; तो भी उनकी वीरताको कौन भूल सकता था। गण-परिषद्में उनके इस कामकी निन्दा करनेवालोंमें पहला मैं था, लेकिन साथ ही मैंने कहा—"पूज्य गण ! आपमेंसे कोई भी यौधेयानियोंके इस मन-मुखी कामको अच्छा नहीं समझता होगा। मैं भी इसकी निन्दा करता हूँ। सेना और भीड़में क्या अंतर है? सेना सहस्रों होते हुए एक अनुशासन, एक आज्ञा, एक पाँती, एक ध्येयको लेकर चलती है। वहाँ हज़ारों मस्तिष्क अलग-अलग अपना रास्ता नहीं सोचते। और भीड़, उसमें कोई एकता नहीं, 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' 'पादे-पादे गतिर्भिन्ना' होती है। इसीलिए एक हज़ार सैनिक एक लाख भीड़को छिन्न-भिन्न कर सकते हैं। हमें यौधेयोंको भीड़ नहीं सेना बनाना है। हमारी तरुणियोंने मनमानी करके उसे भीड़ बनाना चाहा। इसकेलिए हमें क्षोभ है। लेकिन साथ ही हमें यह भी मानना होगा कि यौधेय तरुणियोंको भीड़ बननेकेलिए हमने मजबूर किया। कितने क्रूर शत्रुसे पाला पड़ा है, यह हम जानते हैं, इसीलिए हमने अपनी स्त्रियोंको भी खड्गकी धार-पर चलना सिखलाया। लेकिन यह नहीं ख्याल किया कि जब नारीने कंकण उतार खड्ग धारण कर लिया, तो वह कोनेमें बैठाई नहीं जा सकती। यदि कुछ यौधेयानियोंने भूल की, तो उनसे भी ज्यादा इस कामकेलिए मैं अपनेको अप-राधी समझता हूँ। पूज्य गणने जयको अपना विश्वास प्रदान किया, जयको चाहिए था पूज्य गणसे यौधेयानियोंकी सेना संगठित करनेकी इज़ाज़त लेता, लेकिन उसने वैसा न करके बहुत भूल की। वैश्वानरको प्रज्वलितकर यह आशा

रखना कि वह प्रकाश नहीं देगा, आँच नहीं देगा, दुराशा मात्र है। जब दुश्मन देशके भीतर घुस रहा हो उस वक्त खड्गधारिणी सारी यौधेय-नारी-जातिसे चुप बैठनेकी आशा रखना ग़लत था। मैं समझता हूँ गण अबसे उन्हें देशकेलिए प्राण देनेका उतना ही अधिकार देगा जितना कि यौधेय पुरुषको है। यह तो हुआ हमारे भूलके बारेमें, और उन नारियोंकी भूलके बारेमें, जिन्होंने सेनानायकोंकी मर्ज़ीके बिना इंद्रप्रस्थके मैदानमें शत्रु-सेनाका मुक़ाबिला किया। लेकिन उन्होंने वहाँ जो वीरता दिखलाई, उसकेलिए हमारा मस्तक गर्वसे उन्नत हुए बिना न रहेगा। भार्मी सुनन्दाका नाम, उसकी वीरता तब तक हमारे हृदयमें अंकित रहेगी जब तक पृथ्वीपर एक भी यौधेय बचा रहेगा। उसने हथियारके इस्तेमालको बड़ी तत्परतासे सीखा था किन्तु उसके विनोदी स्वभावको देखकर मुझे कभी ख़्याल नहीं आया, कि वह जीवनको इतनी गम्भीरतासे देख सकती है। अग्रोदकामें कौन ऐसा है जिसके मुरझाए चेहरेको सुनन्दाने अपने विनोदसे हरा न किया। कौनसे दंपती हैं, जिनके आपसी कलहको उसने अपनी एक मुस्कराहटसे ख़तम न कर दिया हो। ब्याह-मण्डप हो या नृत्यका अखाड़ा, कहीं भी सुनन्दाके बिना आधी रौनक़ नहीं रह जाती। और मुझे तो जब कभी मैं अग्रोदकामें आता हूँ, सुनन्दा अपने मधुर भाषण और मधुर बर्त्तावसे, अँगुलीपर नचाती फिरती थी। यद्यपि ये गुण स्त्रियोंमें दुर्लभ हैं, तो भी असंभव नहीं; लेकिन सुनन्दाके उस रूपका हमने कभी अनुमान भी नहीं किया था जिसे हमने इस युद्धमें देखा। शत्रुके पाँच हाथी गोखुरों और छिपे गढ़ोंसे बचते हमारी पाँतीके भीतर घुस आए थे। सुनन्दा, नन्दा और वसुनन्दा, तीनों बहनोंने बीस यौधेयानियोंको लेकर, उनका मुक़ाबिला किया। वह देखने लायक दृश्य था, यदि हम उसे देख पाये होते, कैसे उसने अपने लम्बे भालोंसे दो हाथियोंकी आँखोंको फोड़ दिया। हाथीने उसे अपने सूँड़में लपेट लिया, और पैरसे दबाकर उसकी टाँगोंको चूर-चूर कर दिया। वसुनन्दाने तलवारके वारसे हाथीके सूँड़को आधा काट लिया। हाथी चिल्लाकर पीछे लौटा। सुनन्दाकी सखियोंने उसे उठाकर ले जाना चाहा। जबकि उसके शरीरमें पीड़ाका कोई ठिकाना न था, उस वक्त सुनन्दाने बड़ी दृढ़ताके साथ सहेलियोंको बाक़ी बचे दो हाथियोंपर आक्रमण करनेकेलिए

कहा। उसकी आज्ञाको पूरा करनेमें वह सफल हुई। लेकिन सुनन्दाको जीवित नहीं देख सकीं। पूज्य गण! यौधेय-भूमिमें कौन है जो अपनी सुनन्दाकेलिए अभिमान न करे। सुनन्दाकी हरेक सखीके शरीरमें दस-दस, पाँच-पाँच घाव हैं। वसुनन्दा बुरी तरहसे घायल हुई है, लेकिन हमारे वैद्य कहते हैं कि उसका जीवन अब खतरेमें नहीं। हम इन यौधेयानियोंकी वीरताका सम्मान, उतना नहीं कर सकते, जितनेकी वह पात्र हैं। मैं पूज्य गणसे अवश्य प्रार्थना करूँगा, कि यौधेयानियोंको अपनी मातृभूमिकेलिए मरनेका वही अधिकार मिलना चाहिए कि जो हम पुरुषोंको है।"

जिस बातको करनेमें वर्षों लगते; वह घड़ियोंकी बात हो गई। शत्रुके इस ज़बर्दस्त प्रहारने यौधेय-भूमिको पलक मारते-मारते कितना बदल दिया! अब भी जालुक जैसे कुछ धनिक हमारे पास हमारे यहाँ मौजूद थे। मैं समझता हूँ कि विक्रमादित्यकी विजयसे उनको उतना खेद नहीं होता। धन मनुष्यको ऊपर उठाता है या पतनकी सबसे गहरी खड्डमें गिराता है, जालुक जैसे लोग इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। वह दब गये हैं, लेकिन साँपका सिर पूरी तौरसे कुचला नहीं गया है। तो भी हमें अब बहुत अच्छा अवसर मिला है और अपने एक क्षणको भी हमें बेकार नहीं जाने देना चाहिए इसको हम अच्छी तरहसे समझते थे। गण-परिषदने देश-रक्षाकेलिए नर-नारीका भेद उठा दिया, यह बड़ी सफलता थी। यदि धनी-ग़रीबका भेद उठा दिया जाता, तो यौधेय वह अभेद्य दुर्ग बन जाते, जिसकी एक ईंटसे दूसरी ईंटको अलग करना असंभव हो जाता। लेकिन संपत्तिके बारेमें हज़ारों वर्षोंसे जो धारणा, लोगोंके मनमें बैठ गई है उसे जल्दी निकाल फेंकना आसान नहीं है यह भी हम जानते थे। हाँ इतना ज़रूर हुआ, कि ग्रीष्मांतमें जब खेतोंको बाँटा जाने लगा, तो अग्रोदकाके अपने घरके पचास तरुण मालिकोंने सबकेलिए साझेहीके एक जगह खेत लिए। देखनेवाले आश्चर्य ही नहीं कर रहे थे बल्कि भीतर ही भीतर हँस रहे थे। शायद इन पचास घरोंमें यदि मैं और रेवतक न होते तो लोग खुल्लमखुल्ला मज़ाक उड़ाते। बूढ़ोंकी ज़बान तब भी नहीं रुकती थी। मैं निराश होनेकी कोई बात नहीं देखता था, लेकिन सहस्राब्दियोंसे चले आए रास्तेको छोड़कर बिल्कुल नये रास्तेको पकड़नेसे जैसे एक तरहकी

आशंका दिलमें होती है वह मेरे दिलमें भी थी। लेकिन वह सारी आशंका एक महीने भी नहीं चलने पाई जबकि हमने हलकी मुट्ठी पकड़ी। ग़रीब यौधेयोंके पास दास और मज़दूर नहीं होते थे। उन्हें अपना सारा काम अपने हाथों करना पड़ता था। लेकिन हमारी साझी खेतीमें मेरे जैसे आधेसे अधिक आदमी थे, जिनके यहाँ खेतीका बहुतसा काम दास और मज़दूर किया करते थे। बल्कि इधर जबसे गुप्त-दर्बारकी हवा हमारे कुछ धनिकोंमें फैलने लगी थी, तबसे अपने हाथसे खेती-बारीके कामको लोग नीची निगाहसे देखने लगे थे। उस दिन पहली बूँदें वर्षाकी पड़ी थीं। भूमि अभी बहुत नीचे तक भीगी नहीं थी। दूसरे यौधेय अभी एक झड़ीकी ओर प्रतीक्षा कर रहे थे लेकिन हम अपने सौ-हल लेकर खेतपर पहुँच गये थे। दासों और मजूरोंको हम उनके कामसे वंचित नहीं करना चाहते थे, क्योंकि फिर उनकी जीविकाका सवाल आता। लेकिन हमने अपने हल डेवढ़े कर दिये थे और काफ़ी कुदालें लेकर गए थे। हमने पहिले ही तय कर लिया था, कि कौन जगह कितने खेतमें मूँग बोई जायेगी और कितनेमें माष (उड़द), कितनेमें श्यामाक (साँवा) बोया जायेगा और कितनेमें मसूर। और यह भी कि कितने खेतको जोतकर गेहूँ बोनेकेलिए 'चौमास' तैयार किया जाय। सेनापति जय हल जोत रहे हैं, सेना-नायक रेवतक कुदाल चला रहे हैं, उपसेनापति माधव घास निकाल रहे हैं, बड़े-बड़े कुलोंकी यौधेयानियाँ फाँड़ बाँधकर मेंड ठीक कर रही हैं। अग्रोदकाके-लिए यह मनोरंजक तमाशा था, और सारा नगर उलटकर चला आया था। बूढ़े कह रहे थे—"चार दिनका उत्साह है। कुदाल चलाना ठट्टा नहीं है। जब चोटीका पसीना एड़ीकी ओर बहने लगेगा तब बचा लोगोंको याद आयेगा।"

कड़ाकेकी धूपमें भी कितनी बार हमें काम करना पड़ा। वह धूप हमें प्रिय नहीं लगती थी, इसे भी मैं मानता; हमारे अनभ्यस्त हाथोंमें छाले पड़-पड़कर फूट गये थे, उससे मन प्रसन्न नहीं होता था। दो घड़ीकी मेहनतमें ही कमर और हाथोंमें दर्द होने लगता। पहले महीने सब कड़ुवा ही कड़ुवा मालूम होता था। लेकिन यौधेयोंने इन सब कड़वाहटोंका उसी तरह स्वागत किया, जैसे युद्धके घावोंका। नन्दाने अपने पति रेवतकसे कहा—"आर्यपुत्र! ज़रा सुस्ता लो, तुम्हारी साँस फूल रही होगी।"

रेवतकने मुस्कुराते हुए कहा—"पहिली बात तो यह है कि अब तुम प्रासादोंमें बोले जानेवाले शब्दोंको छोड़ो, इस कीचड़से सने शरीरकेलिए आर्यपुत्र कहना या तो उस शब्दकेलिए अपमान है या इस शरीरकेलिए।"

"तो मैं कैसे बुलाऊँ ?"

"रेवतक कहो, या मच्छर, खटमल, पिस्सू कोई नाम रख दो।"

उसने मुँह टेढ़ाकर कहा—"यदि मेरा वीर वैसे नामका अधिकारी होता, तो वैसा नाम देनेमें न हिचकिचाती।"

"मैं कहूँगा नन्दा ! सीधे-सीधे रेवतक या रेवत रहने दो। और यह जो तुम साँस फूलनेकी बात कह रही हो, तो पहिले तुम्हीं क्यों न बैठकर सुस्ता लो।"

"मैं जो अपनी सहेलियोंकी मुखिया हूँ।"

"अच्छा ! हमारा मुखिया चूँकि जय है, इसलिए मेरे बैठकर सुस्तानेमें कोई हरज नहीं है।" मैं दोनोंकी बातोंको सुन रहा था, मैंने हँसते हुए कहा—"नन्दा भाभी ! यह क्यों नहीं कहतीं कि यहाँ खेतोंमें जैसे नाक रगड़वाना।"

"देवर ! तुम्हें वह बात भूली नहीं है, तुम दूध लूटने चले थे।"

"वह भला कभी भूलनेकी बात है।"

"लेकिन तुमने मुझे चकमा खूब दिया देवर ! मुट्ठीका खोलना अपनेसे सबल आदमीकेलिए मुश्किल होता है।"

"लेकिन तुम जो थी, कि पसीने-पसीने हो गई थीं। उत्तरीय (चादर) अलग गिर गई थी, वेणी खुल गई थी, और काले केश मुखपर पड़कर बिल्कुल चंद्रमाका अनुकरण कर रहे थे।........."

"रहने दो अपनी कविताको" कहते हुए नन्दाका आरक्त मुख और रक्त हो गया।

मैंने कहा—"कविताका भी प्रयोजन होता है। देखो मैं भी सुस्ता रहा हूँ, रेवत भी सुस्ता रहा है, भाभी नन्दा भी सुस्ता रही है और मेरी टोलीके बीस कुदाल चलानेवाले तथा घास अलग करनेवालियाँ भी सुस्ता रही हैं। सचमुच हम चार दिनमें अपनी हथेलीको पत्थर नहीं बना सकते और न साँस-को ठीक कर सकते हैं। यह भी व्यायाम है।"

रेवत—"और मैं समझता हूँ जय ! यह सभी व्यायामोंसे अच्छा व्यायाम

है, क्योंकि यहाँ व्यायाम के साथ-साथ हम कुछ धरतीको देनेकेलिए मजबूर करते हैं।"

नन्दा—"देवर तुमने क्या समझकर हम सबको इस कीचड़-पानीमें घसीटा।"

रेवतक—"सचमुच जय! तुम बड़े निष्ठुर हो। अपनी भाभीके कपोलों-को तुमने ज्यादा लाल तो करा दिया, किन्तु यह समय है मेंहदी लगानेका। बेचारी मेंहदी लगाए मचियापर बैठी रहती थी।"

नन्दा—"और रेवतक जाता, तो बड़े गौरवके साथ कह देती—'आर्य-पुत्र! उत्तरीय खिसक गई है, इसे ज़रा सिरपर रख तो दो।"

रेवतक कुदाल छोड़कर नन्दाके पास पहुँच गया और उसकी थोड़ी खिसक गई चादरको ऊपर खिसकाते हुए बोला—"रेवतकको यहाँ भी उसका अवसर मिल सकता है, लेकिन तुम्हें मेंहदीके बदले क्या मिला?"

नन्दा—"देखती हूँ रेवतक! तुम नाटक भी करने लगे हो। ज़रा यह भी तो देखो कि कितनी आँखें तुम्हारे ऊपर पड़ रही हैं।"

रेवतक—"जब नाटक ही करना है तब आँखोंकी कौन पर्वाह करता है।"

मैंने कहा—"भायर! साधु-साधु।"

नन्दा—"देवर! भूल गये हो घुटना टेकना। फिर घुटना टेकना पड़ेगा, नन्दा वहीं है।"

मुझे उस वक्त सुनन्दा भाभी याद आ गई, मेरा स्वर करुण हो गया जब मैंने कहा—"मैं तुम्हारे सामने हज़ार बार घुटने टेकूँगा। किन्तु ओह! अब भाभी सुनन्दा कहाँ मिलेंगी। उसने कैसे उस दिन दो लड़ते भैंसोंको हाथसे चीरकर अलग कर दिया था।"

"सबके चेहरेपर शोक छा गया था। हम फिर अपने काममें लग गये।"

हमने जब साझी खेती और अपने हाथसे काम करना शुरू किया था, तब इतना नहीं समझ सके थे कि वह हमारे जीवन में कितना परिवर्त्तन कर देगा, सबसे बड़ा परिवर्त्तन तो हमारे दासों और मज़दूरोंने देखा। खरीदे हुए दास मालिककेलिए पशुसे बढ़कर नहीं थे। मज़दूरसे ज्यादासे ज्यादा काम और कमसे कम दाम, और साथ-साथ जितना हो सके उतना अपमान सनातन-

से चला आया था। उनकेलिए निकृष्ट भोजन कुत्ते की तरह डाल दिया जाता था। लेकिन यौधेयानियाँ गेहूँकी मोटी-मोटी रोटियाँ, मसकेके लोंदे प्याजकी चटनी और घड़ों गाढ़े छाछको लेकर खेतपर पहुँचतीं। बैलोंके सामने हरा चारा डाल दिया जाता। नर-नारी हल, कुदाल, खुरपी छोड़कर मधुमक्खियोंकी तरह उन मटकोंके पास भनभनाने लगते और फिर सब एक साथ बैठ जाते। वहाँ न यौधेयका भेद था और न अयौधेयका, न नरका न नारीका, न दास-कमकरका न स्वामीका। अंगोछे पड़ जाते मसका और चटनी रखी रोटियाँ सामने आ जातीं और छाछ भरे लोटे घूमने लगते। सब एक साथ खाते और खाते-खाते मज़ाक भी करते जाते, जिसमें रोटी बनानेवाली यौधेयानियोंके पल्ले जितना पड़ता, उससे कम दासियोंको नहीं मिलता। कोई कहता—"आज तो चटनी जान पड़ती है किसी रंभा-उर्वशीने अपने हाथसे पीसा है।"

"पीसनेवाले हाथ सभी रंभा-उर्वशीके हो जाते हैं।"

"श्यामाने पीसा; श्यामाके हाथ चूमनेका मन करता"....

दासों-कमकरों और यौधेयोंकी दो दुनिया थी, लेकिन हमारी साझी खेती, हमारे साझे कामने इस खाईको पाटनेमें बहुत काम किया। हम सभी अनुभव करते थे, कि यौधेय-भूमिमें रहनेवाले दासों-कमकरों शिल्पियों-वणिकोंको गण-संस्थामें समान राजनीतिक अधिकार दिलाना अभी हमारी शक्तिसे बाहरकी चीज़ है, क्योंकि सारी गण-परंपरा रक्तके संबंधपर निर्भर थी। लेकिन हमारे सामने जो दृश्य उपस्थित हो रहा था, उससे हमें कम संतोष न था, और हमारे दास-कमकरोंकी .खुशीका तो कोई ठिकाना नहीं था। हमने व्यवहारसे दिखला दिया कि उन्हें हम अपने जैसा समझते हैं। जिस वक्त हमारी फ़सल कट रही थी, उस वक्त उनके शकल देखनेसे महान अन्तर मालूम होता, उनके शरीरपर सैकड़ों पैंवंद लगे वे फटे चीथड़े नहीं थे। उनके साफ़-सुथरे चेहरेको देखकर कोई भी कह सकता था कि अब वे नहाने-धोनेका विशेष ध्यान रखते हैं। अब उनकी हड्डियाँ मांस-पेशियोंसे ढँक गई थी। नीचे आँख करनेकी जगह वह दूसरेकी आँखोंसे अपनी आँखोंको मिला सकते थे। हमारे दास-कमकर अब अधिक और अच्छा खाना-कपड़ा पाते थे, किन्तु इसकेलिए हम नहीं समझते थे, कि उन्हें हमारा कृतज्ञ होना चाहिए अब वह .खुद अपने

मनसे दूना-तिगुना काम करते थे। किसीको टोकने या देख-रेख करनेकी भी कुछ आवश्यकता न थी, हमारी दासियाँ-कमकरिनियाँ अपने चर्खोंसे ख़ूब बारीक सूत निकालती थीं। बुननेवाले सुन्दर वस्त्र बुनते थे। सीनेवालियाँ अच्छा सीतीं और समय निकालकर उनपर हंस-चिह्न और फूल-पत्तियाँ निकालतीं। सभी समझने लगे थे कि हम जो कुछ पैदा कर रहे हैं, उसे भोगनेका हमें भी अधिकार है। इसका एक बुरा प्रभाव ज़रूर पड़ा कि हमारे पचास घरोंके दास-कमकरोंकी अवस्थाको देखकर दूसरे घरोंके दास-कमकर भी अपनी अवस्थासे असन्तोष प्रकट करने लगे। दास तो बेचारे बिके हुए थे, इसलिए वह कहाँ जा सकते थे; किन्तु कमकर (मजूर) हमारी खेतीमें आनेकेलिए बहुत आग्रह करते थे। वह अपने मालिकोंका काम भी करते थे तो पहलेसे और भी बेमनसे। जालुकने हमारे दास कुंभीलकके बुने हुए कपड़ेको दिखलाकर अपने दाससे कहा देख, कुंभीलक कैसा अच्छा कपड़ा बुनता है, क्या तेरे पास वैसा हाथ नहीं है? उसने जवाब दिया—"स्वामी! कहाँ कुंभीलक और कहाँ मैं। उसके शरीरको आपने देखा, उसके खाने-कपड़ेपर भी नज़र किया है?" जालुक चुप थोड़े ही रहनेवाला था, उसने लोगोंको भड़कानेकी कोशिश की। बूढ़ोंका कुछ सिर भी हिलने लगा। लेकिन हमारी तरुण सेना मौजूद थी। हम उन्हें हथियार चलानेकी शिक्षा बराबर नहीं दे रहे थे, बल्कि यह भी समझा रहे थे कि विक्रमादित्य अबकी सिर्फ पाँच सौ हाथियोंके साथ नहीं आएगा। वह यदि अपनी शक्तिको दसगुना बढ़ा रहा है, तो हमें बीस गुना बढ़ाना चाहिए। जब शरदमें फ़सलका हिसाब किया गया, तो मालूम हुआ कि हमारे खेतोंने दूसरेसे दूना अन्न पैदा किया है। हमने उनकी ख़ूब सेवा की थी। ख़ूब जोता था। एक-एक घासको निकाला था। पानीके आनेका और निकासका प्रबंध किया था। हमारे पचास घरों और उनके दास-कमकरोंका अब एक विशाल परिवार था। सभी प्रसन्न थे, सभी काम करनेमें होड़ करते थे। बच्चोंके मनोभाव तो और बदल गये थे। छोटे-बड़े सौ लड़के थे, जो उतनी लंबी-चौड़ी खेतीके पास जाते तो कहते—यह हमारा खेत है—दासों-कमकरोंके बच्चे भी इसमें शामिल रहते। कोई हमारे परिवारका बच्चा एक बड़ी चिर्भटिका (फूट) लेकर चौरस्तेपर बैठा

था, उसके चार-पाँच साथी अपने घरके थे लेकिन पाँच-सात बाहरी बच्चे भी अपनी छोटी-छोटी ककड़ियाँ लेकर आये थे। एक बाहरी बच्चेने कहा—"तेरी ककड़ी बहुत बड़ी है, कहाँ से लाया है? हमारे घरके एक लड़केने तुरन्त जवाब दिया—"तुम्हारी ककड़ी क्या बड़ी होगी; तुम्हारा खेत छोटा, तुम्हारा परिवार छोटा। हमारी ककड़ी बड़ी है, हमारा खेत भी बड़ा है, हमारा परिवार भी बड़ा है।" एक बाहरी लड़केसे सहा नहीं गया वह बोल उठा—"जा, तू क्या हमसे बात करेगा काली-दासाके लड़केका जूठ खाता है।" हमारे लड़केने कहा—"तुम्हें जूठ भी नहीं मिलेगा। तुम भूखे मरोगे। देखा, हमारे घरमें पहाड़ बराबर अन्न हुआ है।"

मैंने सिंहल की विशाल वापियोंको देखते समय खयाल किया था, कि यदि यौधेय-भूमिमें भी हम पानीका अच्छा प्रबंध कर सकते, तो हम एक सालका अन्न पाँच साल खाकर भी खतम न कर पाते। लेकिन इतनी बड़ी-बड़ी वापियोंके बनानेकेलिए बीसों हज़ार हाथोंकी ज़रूरत थी। फिर हमारे यहाँ बहुत कम जगहोंमें वैसी ऊँची-नीची ज़मीन थी, जिसमें ऊपरकी ज़मीनपर वापी बना कुल्यासे नीचेकी ज़मीनकी सिंचाई की जाती। तो भी मेरे दिमाग़में यह खयाल काम कर रहा था। अग्रोदकामें खेतोंकी सिंचाई कुएँके पानीसे होती थी और कुओंकी संख्या बहुत कम थी। हमने अपने खेतोंकेलिए कई कुओंके बनानेका निश्चय किया। यद्यपि हम जानते थे कि जो खेत आज हमें मिले हैं वह कल दूसरोंके हाथमें चले जा सकते हैं, यद्यपि पहिले यह बहुत कम होता था, किन्तु अब कुओंको देखकर बूढ़ोंके मुँहमें पानी भर आ सकता था। उपस्कर्त्ता बप्प पूरी तौरसे हमारे साथ थे और तरुण भी; इसलिए हम बूढ़ोंके विरोधसे उतने भयभीत नहीं थे। हमारे काम और फ़सलको देखकर सारे तरुण हमारे रास्तेपर चलना चाहते थे किन्तु अभी बागडोर बूढ़ोंके हाथमें थी, तो भी जब हमने अबकी साल पचास कुएँ बनानेकी योजना पेश की, तो तरुण सेनाने उसका स्वागत किया। हमने इसे नहीं पसन्द किया, कि कुएँ सिर्फ़ अपने खेतोंमें बनाए जायँ। इसमें इस डरका खयाल नहीं था कि हमारी जोती ज़मीन दूसरेके हाथमें चली जायगी, बल्कि यह खयाल ज्यादा काम कर रहा था कि हम अपने धान्यके बढ़ानेमें कमसेकम सिंचाईमें साझे कामकी आदत डालें।

वर्षा समाप्त होनेके साथ हमारे खेत कट चुके थे, और खाली खेतोंमें फिर उसी तरहसे जुताई शुरू हुई। हमने अपने खेतोंको खूब बारीक जोता, उनमें ढेलोंका नाम नहीं था। फिर चुने हुए गेहूँको बोया। गेहूँकी खेती ज्यादा की। कुछ चना, जौ, सरसों, आंतसी (अलसी), कुसुम, कलाय (मटर) भी बोया। यद्यपि इस फ़सलकेलिए हम उतनी आशा नहीं रख सकते थे क्योंकि इसका अच्छा होना बहुत कुछ हेमन्तकी वर्षापर निर्भर था, लेकिन बोवाई खतम होनेके साथ ही हम कुओंकी तैयारीमें लग गये। जिसमें सारे यौधेय तरुण-तरुणियाँ तथा दास-कमकरोंकी भारी संख्या शामिल थी। सैकड़ों आदमी जंगलोंमें लकड़ी काटनेमें लगे हुये थे, और एक बड़ी संख्या ईंटें पाथ रही थी। खेतोंमें हमने खूब गोबर डाला था। हेमन्तमें वर्षा अच्छी हुई, किन्तु अभी खेत-को ओलोंका खतरा गया नहीं था। जब तक चैतमें फ़सल कटकर खलिहानमें नहीं आ गई तब तक मेरे दिलकी घबराहट दूर न हुई। शरदकी फ़सलसे भी अच्छी हमारी वसंतकी फ़सल रही। हेमन्तकी वर्षाके अन्तमें हमने बड़े पैजावों-को लगाकर ईंटोंको फूँक दिया। और साथ ही चुने हुए स्थानोंपर कुएँ खोदे जाने लगे। पहिली फ़सलमें हमारा ध्यान ज्यादासे ज्यादा काम करनेका था। हम उत्साहसे काम कर रहे थे, लेकिन ऐसे कामका हमारे पास अभी कोई तजुर्बा नहीं था, लेकिन दूसरी फ़सल तक हमारे पास सामूहिक कामका अपार उत्साह ही नहीं था, बल्कि हम उसे बड़े मनोरंजक ढंगसे करने लगे। कामका समय नियत था और खानेका भी। कामके बोझको हल्का करनेकेलिए पहले भी गीत गाये जाते थे, किन्तु अब पचीसों नये तरहके गीत बन चुके थे। कुछमें जयका गौरव-गान भी किया गया था जिसे सुनते वक्त मुझे संकोच ज़रूर होता था। काम समाप्त करके घर आनेपर फिर हमारी नृत्यगीत मण्डली जमती। मुझे, रेवतक माधव जैसे मुखियोंको प्रबन्धकेलिए बहुत समय देना पड़ता था। लेकिन हम अक्सर नाचके अखाड़ेमें पहुँचते थे।

जिस वक्त हमारे कुएँ बनकर तैयार हो गए, तब भी वर्षाके आनेमें ढाई मास बाक़ी था। अग्रोदकामें जलाशय थे, मगर अब हमें उनकी संख्या और आकारको बढ़ाना था। हमने अबकी साल एक विशाल सरोवरके खोदने-में हाथ लगाया। हज़ारों फावड़े और टोकरियाँ जमा की गईं। ग्रीष्मका मौसम

था, और यौधेय-भूमिमें गर्मी काफ़ी पड़ती है। हमने दिनके बिचले यामको छुट्टी रक्खी, और काम प्रथम याम तथा संध्याके दो यामोंमें रात तक होता था। वैसे होता तो धनिक कुलीन यौधेयानियाँ अपने मयूर-पिच्छ जैसे मेचक रखनेवाले चिकुरोंपर धूलिका एक कण पड़नेको भी बर्दाश्त न करतीं, लेकिन अब उनके केश और सारा शरीर धूलिसे पिंजरित हो जाता था, और वे उसे शोभाकी चीज़ समझती थीं। नन्दाने ताना देते हुए एक दिन विनोद-गोष्ठीमें जयसे कहा—

"देवर! मालूम होता है तुम यौधेय-भूमिसे नारी सौन्दर्यको नष्ट करके रहोगे।"

मेरे कहनेसे पहले ही रेवतक बोल उठा—"हाँ, इस बातमें मैं अपने अर्द्धाङ्गसे सहमत हूँ। यौधेय-तरुणियोंकी अभी-अभी क़दर होने लगी थी लेकिन अब उन्हें कौन पूछेगा? देखते नहीं नन्दाके पद्म जैसे अरुण कोमल पाणि-पल्लव कितने बदरंग और कठोर हो गये हैं। बेचारी······"

नन्दा उतावली होकर बोल उठी—"बस, रहने दो, मालूम होता है रेवत! तुम कवि बनके रहोगे।"

रेवतक—"नारी-सौन्दर्यका गान हमेशा कवि ही करते रहे हैं। तुम्हीं नहीं मैं भी अपनेको अभागा समझता हूँ। कवि भी बनने लगा, तो ऐसे समय जबकि संगीतकी प्रेरणा ही नष्ट होना चाहती है। बेचारी······"

नन्दा—"रहने भी दोगे, बड़ा गान करने चले हैं।"

रेवतक—"मुझे अपने भाग्यपर रोने भी नहीं देना चाहती। मैं क्या ग़लत कह रहा हूँ?"

मैंने बीचमें दख़ल देते हुए कहा—"मैं भाभी! अपने अपराधको स्वीकार करने और उसके दंडको शिरोधार्य करनेकेलिए तैयार हूँ; लेकिन पहले यह तो सिद्ध करो कि वस्तुतः यौधेयानियोंका सौन्दर्य नष्ट हो रहा है।"

रेवतक—"जय! तुम घावपर नमक छिड़कना चाहते हो। बेचारियोंका जला हुआ दिल भीतर ही भीतर रो रहा है। कैसे उनके शरीरपर चर्बीकी तहकी तह जमती चली जाती थी, जिससे उनका शरीर मक्खनकी तरह कोमल

होता था, हाथ रखते ही फिसल जाता था। मैं तो सालभर पहलेकी नंदाकेलिए रो रहा हूँ।"

नन्दा—"तो तुम सौन्दर्य नहीं भैंस चाहते होगे?"

रेवतक—"ऐसा मत कहो मेरी प्यारी! मेरी नन्दा कभी वैसी नहीं थी। और मैं समझता हूँ यदि वैसा हो भी तो यौधेय अपना भाग्य सराहेंगे। यौधेय भैंसे सारे भारतमें अपने सौन्दर्यकेलिए प्रसिद्ध हैं। उनकी छोटी छोटी बल खाई सीनें, उनके बोतल जैसे चमकते शरीर, उनके घड़े जैसे पृथुल स्तन, उनके भूमिको छूते उदरको देखकर कौनसे हमारे पड़ोसी देश हैं जिनके मुँहमें पानी न भर आता हो?"

मैं—"तो नारी-सौन्दर्यकी आपकी यह परिभाषा है?"

रेवतक—"क्या तुम भी इसे ग़लत समझते हो जय! उस दिन भैंसको कोसनेवालोंके सामने तुमने कितना लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया था, क्या वह भूल गये?"

नन्दा—"देवर! तुमने रेवतकका मन बिगाड़ दिया है। वह अब अपनेको सेना-नायक ही नहीं बल्कि सौन्दर्य-पारखी कवि भी समझता है। यदि सौन्दर्यकी यह परिभाषा है, तो मैं रेवतकसे कहूँगी कि पहले अपने ही शरीर-पर उतारे।"

रेवतक—"मैं अपनेको अलग नहीं रखना चाहता स्वामिनी, लेकिन क्या करूँ? जय वैसा होने दे तब न। मैं जालुककी पत्नीको देखता हूँ तो मुझे बड़ी ईर्ष्या होती है।"

मैंने हँसते हुए कहा—"अच्छा, तो भायर रेवतक की नज़र जालुक-पत्नीपर गड़ी है।"

रेवतक—"अब तुम जय दोनों अर्द्धाङ्गोंमें भी झगड़ा लगाना चाहते हो?"

मैं—"मानो झगड़ा लगाना ही देवरका काम है। यह क्यों नहीं कहते, कि भाभीको तुम बारहो मास आसन्न-प्रसवा देखना चाहते हो।"

रेवतककी ओर भृकुटी तानकर नन्दाने कहा—"अर्थात् पूरी भैंस! आँखें भीतर घुसी हुईं, गाल बाहर निकले हुए, छाती भीतर धँसी हुई, पेट बाहर निकला हुआ! मेरे मर्दको क्या हो गया है?"

रेवतक—"स्त्रीका सौन्दर्य वही है जो कि मर्दको पसन्द आता है।"

नन्दा—"तुम्हारे जैसे मर्दको! देखते हो देवर मेरे मर्दका हृदय भीतरसे कितना काला है। मैं यौधेयानियोंके सौन्दर्यको और बढ़ानेको तुमसे कह रही थी और यह हमें जालुक-पत्नी बनाना चाहता है।"

रेवतक—"नाराज़ मत हो नन्दा। यदि हाथोंमें लाली और मक्खन-सी कोमलताके पीछे यौधेयानियाँ पड़ेंगी तो उन्हें जालुक-पत्नी ही होना होगा।"

मैं—"यह बात तो भैयाकी ठीक मालूम होती है भाभी। खूब घी-दूध मांस खानेको मिले, छायामें रहना पड़े, हिलने-डुलनेकी ज़रूरत न हो, तो जालुक-पत्नी छोड़ और क्या बनना पड़ेगा।"

"वसुनन्दा अभी तक चुप थी, उसने अब मुँह खोलना ज़रूरी समझा—"आप लोगोंको और कोई काम नहीं है जो सौन्दर्यका झगड़ा लेकर बैठे हैं?"

मैं—"तुम्हीं ठीकसे पंचायत कर सकती हो वसु!"

रेवतक—"वसु क्यों नहीं पंचायत करेगी, इनके सुनहले बाल तो धूपमें और निखर जाते हैं। यौधेय-भूमिमें इनको अपने किसी प्रतिद्वंद्वीका डर नहीं है। लेकिन वसु! यह भी ख्याल करो, ब्रह्माने तुम्हें पटरानी बनानेकेलिए बनाया था और यह जय मिट्टी ढुला-ढुलाकर मार डालना चाहता है।"

वसुनन्दा—"अच्छा तो भाई रेवत, अब बहनको छोड़कर मुझे दबानेकेलिए लगे हैं?"

रेवतक—"तुमने जब विक्रमादित्यके विक्रमको खंड-खंड कर दिया तो बेचारा रेवतक किस खेतकी मूली है। मैंने तो सौन्दर्यकी परिभाषा कर डाली, अब तुम बताओ, लेकिन ऐसी परिभाषा न करना, जिसे पहिले तुम अपने ऊपर घटा लो।"

नन्दा—(वसुनन्दाके सिरको अपने कपोलोंसे लगाकर)—"मेरी बछिया! देख रही हो न, अपने बहनोईको, कैसी फर-फर ज़बान चल रही है। मेरे रेऊ! मालूम हो गया तुम लोहेके तीर चलानेमें तेज़ नहीं हो बल्कि ज़बानकी तीरको भी उतनी ही फ़ुर्तीसे चला सकते हो।"

रेवतक—"उसे कहने भी तो दो। वह सौन्दर्यकी योग्य परिभाषा करेगी, रेवतक उसे मान लेगा।"

वसुनन्दा—"अच्छा तो सुनो भैया रेवत ! मैं पुरुषके सौन्दर्यके बारेमें कहती हूँ और वही बात क़रीब-क़रीब स्त्रीकेलिए भी है। शरीरमें खूब मांस-पेशी हो, लेकिन चर्बीका नाम भी न हो। कन्धा ऊँचा उठा हुआ हो और छाती चौड़ी हो, लेकिन कटिमें कहीं स्थूलता न दीख पड़े। बाहें खूब गठी और मुसलियोंसे भरी हों, और पंजे लोहेके पंजे जैसे दीख पड़ें।..."

'अर्थात् जय जैसा हो।"

वसुनन्दा बेचारी शरमा गई, नन्दाने अपने गालोंसे उसकी आँखोंको छिपा लिया।

वर्षासे पहले-पहल हमने अपने बड़े सरोवरको खोद डाला। मिट्टीके बड़े-बड़े भीटोंपर शीशमके बीज छींट दिये। जब वह बरसातके पानीसे लबालब भर गया, तो उसकी शोभा देखनेसे ही बनती थी। उपरकर्त्ता बप्पने उस दिन यौधेयोंकी बड़ी सभा बुलाई और सरोवरका नाम रखा सुनन्दा-सागर।

(१९)

ब्याह

वसुनन्दाको मैंने एकाध बार पहिले भी देखा था, उस वक्त वह एक भोली-भाली सुन्दर बालिका-सी मालूम होती थी। जब वह यमुनाके तीर घायल होकर अग्रोदकामें चारपाईपर पड़ी थी, तो मैं उसे देखने जाया करता था। उसके शरीरमें कितने ही घाव थे, लेकिन सबसे खतरनाक घाव था बाईं कोखमें। भाला कलेजेसे एक जौ भर नीचे रह गया था, नहीं तो उसे हम जीवित न देख पाते। वैद्यने तुरन्त दवा भरके घावको सी दिया। लेकिन, तो भी कई दिनों तक वह जीवन और मृत्युके बीच लटकती रही, बीच-बीचमें बेहोश हो जाती। उसका अरुण गौर मुख श्वेत कपास-सा दीख पड़ता था। शरीरमें खूनका पता नहीं था। उपरकर्त्ता बप्प तो प्रतिदिन एक घंटा उसके पास जाकर बैठते थे। सुनन्दा अपनी वीरताका पारितोषिक अपने जीवनमें नहीं ले सकी, लेकिन वसुनंदा बहुत सौभाग्यशालिनी थी। यौधेयोंकी सभी नगरियोंसे नरनारी उसके दर्शनकेलिए आने लगे। भीड़ देखकर हमें उसे बन्द करना पड़ा, क्योंकि उनके प्रसन्नमुखकी ओर देखते-देखते भी वह श्रान्त हो जाती थी। नन्दा

बराबर उसकी चारपाईके पास बैठी रहती। जब उसका घाव बहुत कुछ भर गया, और उसके शरीरमें कुछ ताक़त आने लगी, तो नन्दाने मुझसे कहा—"देवर! तुम्हारी बातोंको सुनकर वसुको बड़ा आराम होता है। तुम अपनी यात्राकी एक कथा कह देते हो और फिर वह बराबर उसके बारेमें सवाल-जवाब करती है। मैं समझती हूँ जल्दी स्वस्थ देखनेकेलिए उसे ख़ूब प्रसन्न रखना भी ज़रूरी है।"

मैं तब तक बराबर उसके पास घंटे दो घंटे बैठता रहा, जब तक कि वह खूब चलने-फिरने नहीं लगी। मैंने उसके उस मुँहको भी देखा था जबकि उसमें रक्तका कहीं पता नहीं था और वह बिल्कुल सूखा हुआ-सा मालूम होता था। लेकिन, तब भी उसकी बड़ी-बड़ी नुकीली आँखें और उनके ऊपर पतली कोमल भ्रू-लता बड़ी ही आकर्षक मालूम होती थी। उसके श्रान्त-मुख-मंडलपर एक अद्भुत मुग्ध-सौन्दर्य था। वह धीरे-धीरे बोलती लेकिन स्वर-माधुर्य बड़ा ही कर्णप्रिय मालूम होता था। जब मैं चन्द्रकी कोई परिहास-मूलक घटनाको कहता और वह मुस्करा देती, तो उसके पतले लाल होठोंके बीचसे समदन्त पंक्तियोंकी पतली-सी श्वेत-किरणें निकलकर उसके सौन्दर्यको और आलोकित कर देतीं। मैं एक दिन अपने पोत-भंगकी कहानी सुना रहा था। उसके चेहरे-पर अधिक सजीवता आ गई थी, जब मैंने तारे बिखरे आकाशके नीचे अगाध समुद्रमें हाथ-पैर चलानेकी बात कही। वह बोल उठी—"कैसा रहा होगा वह संग्राम?"

मैं—"लेकिन वसु! तुमने समुद्रके जलराशिसे उसके खतरेका अनुमान तो नहीं कर पाया होगा।"

वसुनन्दा—"कर पाया है तभी तो मुझे ईर्ष्या होती है।"

मैं—"जैसे तुम्हारे इस घावको देखकर मुझे ईर्ष्या होती रही है।"

वसुनन्दा—"यहाँ ईर्ष्याकी क्या बात है। यहाँ तो मृत्युसे लड़नेका उतना मौक़ा ही नहीं मिला। एक क्षणमें फ़ैसला हो गया। बहन सुनन्दाके साथ उसने विजय प्राप्त की, और मेरे साथ पराजय! मुझे मालूम भी नहीं हुआ कि मैंने कब उससे हाथ मिलाया और कब अखाड़ेसे निकालकर बाहर फेंक दिया।"

नन्दा—(वसुके सुनहले केशोंपर हाथ फेरते देखा)—"मेरी बछिया! अपने संघर्षको नहीं समझती। छ-छः दिन तक इसने मृत्युके साथ युद्ध की।"

मैं—"और मैं तो भाभी छः घंटा भी नहीं लड़ पाया।"

वसुनन्दा—"गुप्तोंके शेषशायी भगवान बने रहे, यही कहना चाहते हो न सेनापति? लेकिन मैं ख्याल करती हूँ उस हिम्मतके बारेमें जिसमें मृत्यु अपने विकराल दाढ़को खोले घूट रही हो और तुम काष्ठ-फलक पर गहरी तानकर पड़े हो। मृत्यु बेचारी क्या कहती होगी? इससे बढ़कर उसका क्या परिहास होगा? वह बेचारी तुम्हारे हृदयको भयभीत करने आई थी, और तुम्हारेलिए मानो वह कोई चीज़ ही नहीं थी। बहन! उस हिम्मतके बारेमें बताओ तुम्हारी क्या राय है?"

नन्दा—"मैं तुझसे सहमत हूँ, यह मेरा देवर जय कितनी ही बातोंको बहुत मामूली और तुच्छ समझता है, लेकिन हम जानती हैं कि उनसे कितनी निर्भीकता, स्थिरचित्तता, और उदात्त भाव प्रकट होते हैं।"

मैं—"भाभीके मुँहसे इन शब्दोंको सुनकर मेरा उत्साह बढ़ता है, किन्तु तुम्हीं बताओ मेरी सारी निर्भीकता वसुनन्दाके धैर्य-शौर्यके सामने क्या तुच्छ नहीं जान पड़ता? मैं समझता हूँ कि तुम्हें यह साफ़ कहनेमें संकोच होगा। अच्छा यह बताओ वसु! तुम क्यों उस दिन उस आगमें कूदीं और किसने तुम्हें प्रेरणा दी है।"

वसुनन्दा—"हम सबको प्रेरणा देनेवाली थी—बड़ी दीदी" कहते हुए उसकी आँखें डबडबा आईं फिर बोली—"लेकिन मुझे तो साथ लेनेसे सभी इन्कार करती थीं, दीदी नन्दा भी" कहते हुए उसने अपनी बहनकी ओर नज़र डालकर मुसकरा दिया।

नन्दा—"हम नहीं चाहती थीं, कि तीनों नंदा बहनोंमें एक भी संसारमें न रह जाय; और, यह भी तो देखो देवर, सोलह सालकी दुधमुँही बच्चीको खड्ग सँभालना चाहिए या·····"

वसुनन्दा—"या गुड़वा-गुड़िया खेलना चाहिए यही कहना चाहती हो न? लेकिन यौधेय-कन्याओंके हाथसे गुड़िया छीनकर उन्हें खड्ग किसने थमा दिया?"

नन्दा—"इन्हीं देवर जयने, और, उसपर भी हम लोगोंको हुकुम हुआ था कि तुम्हें रणक्षेत्रमें पैर भी नहीं रखना होगा। देवर! जब तुम लोगोंकी नियत साफ़ नहीं थी, तो क्यों हमारे हाथसे गुड़िया फेंकवाई? और जानती हो वसु, गण-परिषदमें गुप्तोंके खूनसे अपने खड्गको रँगनेकेलिए हमारी निन्दाकी है। और जानती हो सबसे पहले निन्दा करनेवाला कौन था?"

वसुनंदा—"कौन था दीदी?"

नंदा—"यही, जो तुम्हारे सामने बुद्धमूर्त्ति जैसे शान्त बनकर बैठे हुए हैं।"

वसुनन्दा—"हमारे सेनापति जय!"

नन्दा—"और·····?"

मैं—"अरे, मुझे भी कोई सफ़ाई देने दोगी या नहीं?"

नन्दा—"भरी परिषदमें हमारी निन्दा करते फिरोगे और अब चले हो सफ़ाई देने। मैं जिस वक्त इनके भाषणको सुन रही थी तो सच कहूँ वसु! मेरे दिलमें आग लगी थी। क्या करें इन पुरुषोंने हमें गण-परिषदमें बैठनेका अधिकार भी तो नहीं दिया है। स्त्रियोंके बारेमें एकतरफ़ा फ़ैसला करनेकी इनकी आदत हो गई है।"

मैं—"तुम्हारी दीदी बिल्कुल उल्टा कह रही है वसु! और फिर मुझे बोलनेका अवसर भी नहीं देना चाहती।"

नन्दा—"मानो आप लोगोंने हम स्त्रियोंको परिषदमें बोलनेका अवसर दिया था।"

मैं—"लेकिन मैंने परिषदके सामने यौधेयानियोंको यौधेयोंकी तरह ही युद्धमें भाग लेनेका अधिकार देनेकी बात कही या नहीं, और परिषदने उसे स्वीकार किया या नहीं।"

यह सुनते ही वसुनन्दाका चेहरा हर्षके मारे खिल उठा, उसने मेरी ओर सम्मान भरी दृष्टिसे देखते हुए कहा—"तो हमारे सेनापतिने हमारे हाथमें खड्ग ही नहीं दिया बल्कि पुरुषोंकी तरह हमें भी उसके उपयोगका अधिकार भी दिलाया। क्या यह बात ठीक है दीदी?"

नन्दा—"दिलवाया, किन्तु कितनी फज़ीहत करके।"

मैं—"तो गोया मैंने बिना आज्ञाके समरमें कूदनेके तुम्हारे अपराधका अपनेको ही अपराधी नहीं बनाया ?"

वसुनन्दा—"सेनापतिके ऊपर तुम्हें नाराज़ नहीं होना चाहिए दीदी, वह हमेशा यौधेयानियोंका पक्ष करते रहे। और लड़नेका अधिकार दिलाकर हम नारियोंपर बहुत उपकार किया।"

मैं—"हमने कोई उपकार नहीं किया तुमने अपने बलिदानसे इस अधिकारको प्राप्त किया।"

मैंने देखा कैसे उसके कार्पास श्वेत कपोलोंपर धीरे-धीरे अरुणिमा दौड़ने लगी उसके निर्मांसल मुखपर गोलाई आने लगी, उसकी दीर्घ आँखें और भी विस्तृत हो गई, उसके स्वर्ण केश और चमकने लगे! अब कितनी ही बार बैठे बैठे मुझसे कथाएं सुनती और प्रश्नोंकी झड़ी लगा देती। जब हमने अपनी साझी खेती शुरू की थी, तो वह चलने-फिरने लगी थी। नन्दाको धूलि-धूसरित लौटते देखकर उसने पूछा था—"दीदी! पहले मैं नये ढंगसे खेतीकी बात सुनकर ऐसा नहीं समझ रही थी, तुम्हारे मुखपर श्रमविन्दु, और कहीं-कहीं उससे सिक्त पांडुर धूलि कितनी अच्छी मालूम होती है।"

नन्दा—"अच्छा हुआ जो तू ऐसी अवस्थामें रही, नहीं तो दूसरी छोकरियोंकी तरह तू भी तूफ़ान मचाती।"

वसुनन्दा—"क्या दीदी! दूसरी छोकरियाँ तूफ़ान मचाती हैं? और मैं तो बहुत सीधी-सादी छोकरी हूँ।"

नन्दा—"जान पड़ता है कि तू नन्दा-सुनन्दाकी बहन नहीं जो इतनी भोली बनती है। मैं जानती हूँ यदि तू भली-चंगी होती, तो खेतमें सबसे पहले पहुँचती।"

वसुनन्दा—"लेकिन दीदी! और छोकरियाँ क्यों इतना खेतमें जानेके-लिए मार करती हैं?"

नन्दा—"जैसे तू उस दिन रणमें न जानेकी बात कहनेपर दीदीसे लड़ पड़ी।"

वसुनन्दा—"लेकिन हमारे सेनापतिने क्या गुड़ रख दिया है कि सभी चींटियाँ दौड़ी-दौड़ी जाती हैं।"

नन्दा—"हमारा सेनापति, ठीक कह रही हो बच्ची उसके रोम-रोममें सिर्फ़ गुण ही गुण भरे हैं। अपने आगमें कूदनेकेलिए पहले तैयार होता है, फिर हज़ारों तरुण-तरुणी उसके पीछे जान देनेकेलिए तैयार हो जाते हैं। भला इस धूपमें कोई यौधेयानी खेतमें जानेका भी नाम लेती, बोने-गोड़नेकी बात तो अलग रही। लेकिन सब दौड़ी-दौड़ी जाती हैं। निराई हो रही है और उधर दल बाँध करके गीत हो रही है। साँवा काट रही हैं, और उधर एक हाथमें पूली दूसरे हाथमें हँसिया लेकर तरुणियाँ थिरक भी रही हैं।"

वसुनन्दा—"मुझे अफ़सोस है दीदी!"

नन्दा—"सो मैं जानती हूँ तू दूसरी छोकरियोंसे दस क़दम आगे रहनेवाली है। हाथों-पैरोंमें पूरी ताक़त होती तो तू भला बैठी रहती?"

वसुनन्दा—"तो वहाँ कुछ काम नहीं, खेल मालूम होता है।"

नन्दा—"ऐसे मनोरंजक ढंगसे होता है कि समय बीतते पता ही नहीं लगता। कहीं छोकरियोंका एक दल एक गीत शुरू करता है। 'सावन घन बरस रहे' एकने कहा तो दूसरा दल गाने लगा 'दिसि-दिसि छायी हरियाली', जान पड़ता है कि हँसुवा-खुरपी अपने आप चल रहे हैं। छोकरियाँ तो गानेकी होड़में रहती हैं। और, रोज़ न जाने कहाँ-कहाँसे नये-नये गाने निकलते आ रहे हैं।"

सुनन्दा—"दीदी! अब मैं देर तक दुर्बल नहीं रहूँगी मैं जल्दी ही तुम्हारे साथ काम करने चलूँगी।"

वसुनन्दा जब स्वस्थ हो गई, तब भी उसके बड़े घावकी चमड़ी कमज़ोर थी, लेकिन लोगोंके मना करनेपर भी वह खेतमें जाने लगी। गेहूँके खेत जब कट रहे थे, तब तो उसे हमारी तरुणियोंने अन्नपूर्णा देवी बनाया था। उसके सुनहले बालोंको हरी फलियों वाली कलाय-लतासे सजाया गया, जिसमें कहीं-कहीं गेहूँकी पीली बालों और अलसीके नीले फूलोंको बीच-बीचमें गूँथा गया था। उसके गलेमें चनेकी हरी फलियोंकी माला थी, कानोंमें कुसुंभके फूलोंके कर्णफूल लटक रहे थे। उसके एक हाथमें मंगल-कलश, हरित आम्र-पल्लव और जौकी हरी बालियोंसे ढँका था, दूसरे हाथमें गेहूँकी बालोंका एक बहुत बड़ा गुच्छा था। उसके साथ दूसरी तरुणियाँ भी कलाय-लता, अलसी-पुष्प

आदिसे सजी थीं और वह देवीके पीछे-पीछे अपने मधुर कण्ठसे वनकी कोइल-को लजवा रही थीं। उस दिन छोकरों और छोकरियोंमें ख़ूब नृत्य-प्रतिद्वंदिता रही। रासकनृत्य भी हुए और युग्मनृत्य भी। उस दिन वसुनंदाको जब जोड़ी लेनेकी बारी आई, तो छोकरियोंने मेरी ओर इशारा कर दिया। बेचारी लजा रही थी, मैं देख रहा था, उसका पैर मेरी ओर नहीं बढ़ रहा है। मैं ख़ुद आगे बढ़कर बोला—"वसु! मैं तुम्हारे साथ नाचनेकेलिए तैयार हूँ।"

वह पहला अवसर था, जबकि मैं वसुनंदाके साथ नाचा। मैं कह चुका हूँ कि वह वसंतकी फ़सल हमारी बहुत अच्छी हुई थी। हमारे तरुण कवियोंने उस अवसरके कई सुन्दर गीत बनाए थे। आज मुझे वे गीत और भी मधुर लगते थे, नृत्य और भी प्रिय मालूम होता था। हमने अपने एक सालके परिश्रमको अपने चारों ओरके स्वस्थ चेहरोंकी मुस्कानके रूपमें साकार देखा।

मेरा अपना घर था। किन्तु, उसमें मेरे सिवा कोई नहीं था। मेरी दोनों बहनें कभी-कभी आ जातीं; तो घर भरा दिखाई देता। बच्चोंकी किलकिलाहटसे वह गूँज उठता। अपने जानेके पहिले ही साल मैं रेवतकके साथ शामिल हो गया। रोटियाँ भाभी नन्दाके हाथकी खाता और रहता अपने घरमें। जैसे-जैसे हमारा तरुण दल अधिक संगठित होता गया मेरा घर अब वैयक्तिक घर छोड़ सामूहिक घर बन गया। मेरी गोशालाकी गाएँ रेवतकके साथ मिला दी गईं और उसका घर अश्वशाला बन गया। इस प्रकार खाने-पीनेका घर तो मेरेलिये भाभी नन्दाका घर था, अब भी वही बात थी। हमारी साझी खेतीमें अगले वर्षोंमें और भी परिवार शामिल हुए। खेती हमारी इकट्ठा होती थी, लेकिन अन्न कामके अनुसार बाँट दिया जाता था, और बँटवारेमें दासों और कमकरोंका भी बराबरका हिस्सा होता था। वस्तुतः हमारेलिए और दूसरोंके-लिए भी वह दास-कमकर नहीं रह गये थे। अपने घरोंसे दासताको तो हमने विजयके तीसरे वर्ष हटा दिया था। हमारे दास अब भी साथ ही रहते थे किन्तु अपनी इच्छा से। हाँ, हम अपने इन मुक्त कमकरोंको राज-काजमें समान अधिकार नहीं दे सके।

घाव अच्छा हो जानेपर वसुनंदा भी बहनके साथ ही रह गई। हम रोज़ एक-दूसरेको देखते थे, लेकिन समय बीतनेके साथ बात करनेमें उसका संकोच

बढ़ता गया। जिसके साथ रोज़-रोज़ देखा-देखी हो उसके रूप-परिवर्त्तनका ख्याल देखने वालेको नहीं आता। मैं वसुनन्दाके सौन्दर्य-वृद्धिकी मात्राको नाप सकता था। इसके अंग-प्रत्यंग पहले हीसे सुन्दर थे, किन्तु अब हमारे खेतीके परिश्रम, नृत्य, सैनिक व्यायामके कारण वह सौन्दर्य और सुगठित होता जा रहा है। जब मैं उससे कोई बात पूछता, तो वह सेनापतिको बहुत नम्रतापूर्वक उत्तर देती, किन्तु उसकी दृष्टि पहलेकी तरह निस्संकोच भावसे मेरे चेहरेपर गड़ी नहीं रहती थी। मुग्ध सौन्दर्य कितना अनुपम सौन्दर्य है इसे मैंने उसीको देखकर जान पाया। लेकिन जब मेरी दृष्टि उधर नहीं होती थी तो वह ज्यादा चावसे मेरे मुँहकी ओर देखा करती। जिस वक्त मैंने उसकी वीरताको सुना, उसके घायल शरीरको देखा, उसी वक्तसे मैं उसे एक विशेष तरुणी समझने लगा था। एक साल तक लोगोंके सामने वीरताकेलिए मैं वसुनन्दाका उदाहरण दिया करता, लेकिन पीछे इसमें संकोच होने लगा, जिसका कारण भाभी नन्दाका विनोद हुआ—यह कहना पूरी तौरसे ठीक नहीं होगा। शायद भाभीकी नज़रोंमें उससे भी पहले भाँप लिया, जबकि मुझे अपने मनकी पूरी बात मालूम नहीं थी। न जाने कितने समय तक मैं अपनेको वसुनन्दाके सौन्दर्य का तटस्थ दर्शक समझता था। शायद किसी दिन वसुकी प्रशंसा करते मुझे देखकर मुस्कुरा दिया, उस दिनसे मुझमें झिझक शुरू हुई। यह बात अन्नपूर्णा वसुके साथ नाचनेसे पीछेकी है।

हम यौधेयोंको सिर्फ़ बहुधान्यक बनाकर ही संतुष्ट रहनेवाले नहीं। गो, महिषी, अश्व, अज, मेष सारे पशु-धनकी वृद्धिकी ओर भी हमारा उतना ही ध्यान था। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती थी कि सन्तानकेलिए सिर्फ़ अच्छे साँड़ोंके रहने देनेके कारण हमारे पशुओंकी नसल अच्छी होती जा रही है। हमें पूरी आशा है कि दस वर्षसे भीतर जो उन्नति हमने इस ओर की है, उसे देखते अगली पीढ़ीको अपने घोड़ोंकेलिए सिंध, कम्बोज और काबुल नहीं देखना पड़ेगा। फिर बहुपशु होनेके साथ यौधेयोंको अपने शिल्पको भी बढ़ाना था। उसे भी सफलतापूर्वक हमने आगे बढ़ाया फिर हमारा सबसे बड़ा धन था यौधेय शिशु, यौधेय तरुण। वही यौधेयोंकी दिव्य भूमिको दिव्य रख सकते हैं। शारीरिक व्यायाम तो हमारे बच्चे धूल-मिट्टी खेलनेके साथ ही शुरू कर देते

अपनी बातको जारी रखते हुए कहा—"भाभीकी बातको तो आप लोग देवर-पर छोड़ रहे हैं; लेकिन अच्छी सन्तान पैदा करनेका ख़याल मेरे दिमाग़से पहले-पहल नहीं निकल रहा है, भाई जयसे पूछिये, इन्होंने मुझे बतलाया था कि किसी यवनगणने इसकेलिए बाक़ायदा कानून बनवाया था।" सबने एक ओरसे कहा—"हाँ, सेनापति। हमें भी सुनाइये उस गणकी बात।"

मैंने कहा—"हाँ, यवन देशमें कई गण थे, जिनमेंसे एकका नाम था स्पार्ता। उनके यहाँ यह रिवाज़ था कि बच्चेको पैदा होते ही एक पहाड़के ऊपर छोड़ आते थे, यदि सर्दी-गर्मीको बर्दाश्त करके वह चौबीस घंटे जीता रहा, तो समझा जाता था कि वह स्पार्ताका नागरिक होने लायक है। नहीं तो ऐसे कमज़ोर बच्चोंको वह अपने यहाँ जीने नहीं देते थे।"

बंधुकने कहा—"यह बात तो भाई यौधेयोंमें नहीं चलने पायेगी, जानते हैं न? हमारे यहाँ कितने ही भाई जैन भी हैं।"

माधव—"जिनकी चले तो खटमल-पिस्सू-जूँ सबको कोई हाथ न लगाने पाये।" मैंने एक दिन जालुकसे कहा था—"श्रेष्ठि! बेचारे खटमल बहुत तकलीफ़ पा रहे हैं। यौधेय इतने क्रूर हो गये हैं कि गरम पानी करके खाटों-के पावोंमें डाल देते हैं। आपको इसकेलिए कुछ करना चाहिए, और करोड़ों जीवोंकी प्राण-रक्षा करनेका पुण्य लेना चाहिए।" उसने मेरी मुख-मुद्राको गंभीर देखकर समझा कि मैं दिलसे कह रहा हूँ। वह बोला—"जबसे यह नास्तिक जय आया है तबसे यौधेय तरुण तो और भी अरहतोंके बताए रास्तेका मज़ाक उड़ाने लगे हैं। उनकी चलती तो पशुओंको यमुना पार भेजनेकी जगह यहीं हज़म कर गये होते। बेचारे खटमलोंकी कौन बात सुनेगा।" मैंने कहा—"खटमलोंके बचानेका उपाय तो मैं बतला सकता हूँ। पुरानी खाटोंको मैं घर-घरसे माँगकर ला दूँगा और आप उनकेलिए एक धर्मशाला बनवा दें। लेकिन एक बात है पुरानी खाटोंकी जगह नई खाटें देनी होगी।" बूढ़ा मक्खी-चूस बोल उठा—"तुम तो मज़ाक कर रहे हो युवक! धर्मशाला बनानेपर भी बेचारे खटमल खाएँगे क्या?" मैंने कहा—"यह सवाल तो मुश्किल है और खटमल फलाहारी होते नहीं। ऐसा क्यों न करें उन खाटोंपर सोनेकेलिए कुछ लोगोंको पैसा देकर तैयार किया जाय?" उसने मुस्कुराकर कहा—"तुम तो

हर जगह पैसे-पैसेकी बात करते हो। भला जहाँ यह हालत हो वहाँ कमज़ोर बच्चोंको किसी पहाड़ी पर छोड़ आना कैसे हो सके।"

रेवतक—"तो स्पार्तीके लोग बड़े मज़बूत होते होंगे।"

मैं—"बड़े मज़बूत और बड़े बीर। कमज़ोर दुबले-पतले नाटे-ठिंगने नर-नारी वहाँ दिखलाई नहीं पड़ते थे।"

रेवतक—"हम भी यौधेयोंमें बेहतर सन्तानें पैदा करनेकेलिए कुछ कर सकते हैं?"

मैं—"हम पशु नहीं हैं जो नर-मादाके मनोभावोंका कुछ भी ख़्याल न किये बिना मनमानी सन्तान पैदा करनेकेलिए लोगोंको मजबूर कर सकें और फिर हमें सिर्फ़ शारीरिक बलकी ही आवश्यकता नहीं है, मनुष्य अपने बुद्धि-बल-से प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ हुआ है। हमको क्या पता है कि जो शरीरसे दूबर है वह अवश्य ही बुद्धिसे भी दुर्बल होगा। इसलिए यदि संभव भी होता तब भी हम स्पार्तीके क्रूर प्रयोगको अपने बच्चोंपर न करते।"

माधव—"तो फिर मानव-सन्तान् पैदा करनेकेलिए हम यौधेयोंमें सबको स्वच्छन्द छोड़ दें?"

मैं—"नहीं, हम अच्छे स्वस्थ बलिष्ठ पति-पत्नियोंको अधिक सन्तान उत्पन्न करनेकेलिए प्रोत्साहित करें।"

बंधुक—"तो भैया जय! रेवतकके तो हम यहीं हाथ पैर-पड़ते और भाभी नन्दाको तुम मना लो, तुम्हारी बात वह बहुत मानती है। धृतराष्ट्र-गांधारीने सौ पुत्र पैदा किये थे, भाभी बीसकेलिए हमपर कृपा करे।"

रेवतक—"बंधुक! तुम बहुत बढ़-बढ़कर बात कर रहे हो, यह न समझो कि यह बात यहीं रह जाएगी। यदि नन्दाने सुन लिया, तो चाँद गंजी कर डालेगी।"

माधव—"स्वस्थ बलिष्ठ लोगोंसे हाथ-पैर जोड़ना लेकिन, जालुक जैसे लोगोंकेलिए तुम्हारी क्या राय है?"

मैं—"हम जिस रास्तेपर अपनी तरुणियोंको ले जा रहे हैं उससे कुछ दिनोंमें कोई जालुक जैसे बुद्धि-बलशून्यकी ओर नज़र डालना भी पसन्द न करेंगी।"

माधव—"तो हम सिर्फ़ भविष्यके तरुण-तरुणियोंपर ही आशा रख सकते हैं?"

मैं—"सिर्फ़ क्यों कहते हो यह कम नहीं है। पुराने लोग कितने दिनों तक ज़िन्दा रहेंगे। सारा भविष्य तो हमारा है। फिर जो दम्पति एक स्वस्थ सन्तान पैदा करनेकी क्षमता रखता है, उसे हम अपने पुराने विधानके अनुसार अलग करा सकते हैं।"

माधव—"और यदि दोनों क्षमता न रखते हों?"

रेवतक—"मैं एक उपाय बतलाऊँ, उनको जैनों-बौद्धोंके मठोंमें भेज दिया जाय।"

सब ठठाकर हँस पड़े। माधव बोला—"भाई जय! हम भी कई साल इन मठोंमें बिता चुके हैं। लेकिन हमें यह नहीं सूझा था। रेवत भैया! तेरा बेटा जिये ये मुण्डक और नङ्गे हर नगर हर गाँवमें फैले हुए हैं। इनके पास सुन्दर-सुन्दर मकान हैं और सावक (श्रावक) लोग अच्छासे अच्छा भोजन उनके पास पहुँचाते हैं। वहाँ जानेवालोंको दुःख भी नहीं होगा।"

रेवतक—"लेकिन हमारे तरुणोंको इन भदन्तों और मुनियोंका परिहास छोड़ देना होगा।"

माधव—"नहीं भाई! हमें उनकी साष्टांग दण्डवत् करनी होगी। सारे यौधेय-वंशकी पीढ़ियोंकी संचित अलाय-बलायको जो साफ़ करें, उनको हमें सम्मानकी दृष्टिसे देखना ही चाहिए।"

रेवतक—"यदि सम्मानकी दृष्टिसे देखा गया और उधर खाने-रहनेका इन्तज़ाम है ही, ऊपरसे निर्वाण और स्वर्गका प्रलोभन भी कम नहीं है।"

माधव—"फिर तो हम भेड़ोंके झुण्डकी तरह इन्हें मठोंमें पहुँचा देंगे।"

बन्धुक—"बुड्ढा खुर्राट जालुक है बड़ा होशियार। होशियार न होता, तो उपाश्रय (मठ)में अनशन करके शरीर छोड़ स्वर्ग जानेकी जगह मथुरासे ख़रीदकर दूसरी तरुण-पत्नी लाता और हमारे देशको नरक बनानेकी कोशिश करता!"

यौधेय राजनीतिक तौरसे ही स्वतन्त्र नहीं थे, बल्कि उनमें बौद्धिक

स्वतन्त्रताकी भी ज़बर्दस्त लहर चल रही थी यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी।

नन्दाको सचमुच ही माधव और बन्धुककी खबर लग गई। एक दिन हम अखाड़ेमें थे नाच आरंभ हो गई थी। नन्दाको अपनी ओर आते देखते ही माधव तो खिसक गया, लेकिन बंधुकको तब पता लगा जबकि, उसका दाहिना हाथ नन्दाके बज्र हाथोंमें कसकर पकड़ा जा चुका था। उसने भृकुटी तानकर ज़ोरसे कहा—"क्यों रे बँधुआ। तेरी यह मज़ाल है कि भरी सभामें सो भी पीठ पीछे मेरा उपहास करता फिरता है।"

बंधुक सिटपिटाकर गिड़गिड़ाने लगा—"नहीं, मेरी दयालु भाभी! सब झूठ है, तेरी शपथ। किसीने झूठी चुग़ली की है।"

रेवतकने गंभीर होकर कहा—"नहीं, नहीं, उसी तरह सिंह बनकर क्यों नहीं अपनी बातोंको दुहराते!"

बंधुक—"भाभी! तुम किसीकी बातमें मत पड़ो, यह मुझसे बदला निकालना चाहते हैं। मैं कान पकड़कर उठने-बैठनेकेलिए तैयार हूँ यदि मैंने एक शब्द भी तुम्हारे बारेमें कहा हो।"

मंगलक बोल उठा—"और वह जो जालुककी खटमलशालामें भेजनेकी बात कहता था, एक दीनार दे देना, नन्दा भाभी एक रातकेलिए एक लाख खटमलोंको भूखसे बचा देंगी।"

नन्दाने बंधुकके कन्धेपर दूसरा हाथ रखा और खूब ज़ोरसे झकझोरना शुरू किया। बंधुक चिल्ला उठा—"बाप रे बाप! दोहाई नन्दा भाभीकी! ये सब अपने मनसे गढ़-गढ़कर झूठी-झूठी बात बना रहे हैं। भैया जय! तुम्हीं भाभीको समझाओ।"

नन्दाने एक और झटका देकर कहा—"जयका डर दिखला रहा है! जब सेनाका काम होगा तो हमारा सेनापति है और नहीं तो वह भी कुछ कहके देख ले।" मैंने हाथ जोड़ कान पकड़ते हुए कहा—"भाभी! क्षमा, मैं तुम्हारा सदाका दास देवर हूँ। लेकिन जालुकके खटमलशालावाली बात मैंने नहीं सुनी।"

नन्दा बंधुकको छोड़कर मंगलककी ओर लपकी, मगर तब तक दोनों तमाशा देखनेवालोंके पीछे छिपकर भाग निकले। लोगोंने ख़ूब ठहाका लगाया।

विजयके तीन वर्ष हो गये थे। वसुनन्दा अब उन्नीस सालकी थी। प्रौढ़ यौवनके साथ सौन्दर्य भी खूब निखरा हुआ था। हम एकसे अधिक बार एक दूसरेके साथ नाचे थे। जब मैं अग्रोदकामें रहता तो अक्सर वही मुझे खाना खिलाती। कभी-कभी एकाध विनोदकी भी बात हो जाती। लेकिन, हमने कभी खुलकर प्रेम प्रदर्शित नहीं किया। यद्यपि नन्दा भाभीकी बहन होनेसे मुझे परिहास करनेका बहुत दूर तक अधिकार था लेकिन कामोंकी भीड़ बहुत थी। दूसरे सालके बाद तो मैं अपने खेतमें बहुत कम ही काम करने पाता था। हमारे यौधेयके दूसरे ग्रामों और नगरोंमें भी साझी खेतियाँ शुरू हो गई थीं। उन्हें परामर्श देनेकेलिए भी वहाँ जाना पड़ता था। इसपर सैनिक-शिक्षाकी देख-रेख करना भी मेरा काम था। समयका अधिक भाग मुझे घोड़ेकी पीठपर बिताना पड़ता था। काम बहुत था सोने तककेलिए बहुत कम समय निकाल पाता था लेकिन मैं इस जीवनसे बहुत संतुष्ट था। मैं अपने कामोंके फलको अपनी आँखोंके सामने देख रहा था। छोटे-छोटे बच्चे भी विक्रमादित्यकी लड़ाईका अभिनय करते थे। नन्दा बहनोंका तो खेल और मशहूर हो गया था। पाँच-बच्चे कंबल ओढ़कर हाथी बन जाते फिर तीन यौधेययानी बनकर उनपर बिना फलके तीर चलातीं और चंद्रगुप्तके बलाधिकृतको कान पकड़कर खींच लाते। दस-दस बारह-बारह वर्षके लड़कोंको बिना काठी-लगामके केसर पकड़े छिपकलीकी तरह चिपके घुड़दौर करते देख कभी-कभी मेरी आँखोंमें आनन्दाश्रु उमड़ आते।

मैं इसी तरह चक्कर लगाकर उस दिन अग्रोदका पहुँचा था। भाभी खाना खिलानेकेलिए बैठी यह कोई नई चीज़ नहीं थी। उन्होंने स्वयं बात शुरू की—"देवर! मुझे मालूम हो गया था कि बेचारा बंधुक नाहक उस दिन मेरी झपेटमें आ गया। सब तुम्हारी कार्रवाई थी!"

मैंने भाभीकी उत्फुल्ल आँखोंकी ओर देखते हुए कहा—"तो क्या झूठ

था ? हमारे सिंह-शावक जैसे चार भतीजे हैं, वैसे सोलह और हों, तो यौधेय-भूमि क्या अपनेको धन्य-धन्य नहीं समझेगी ?"

नन्दा—"और यदि वैसे छत्तीस हों तो फिर ?"

मैं—"ओह भाभी ! तब तो मैं सारी यौधेय-भूमिमें बधावा बजवाऊँगा और तेरे चरणोंपरसे तीन दिन तक अपने सिरको न हटाऊँगा।"

नन्दाने मेरी पीठपर एक थपकी देकर कहा—"तुम बड़े दुष्ट हो।"

मैं—"जब भाभी देवरको दुष्ट कहती है, तो जानती हो उसका क्या मतलब है ?"

"इसका मतलब है यह" कहकर नन्दाने मेरे दोनों गालोंपर दो हलके-हलके चपत लगा दिए।

मैंने कहा—"आज भाभी देवरपर बहुत ख़ुश है आज उसका भाग्य खुलेगा।"

नन्दा—"हाँ, मैं देवरका भाग्य खोलना चाहती हूँ।"

मैं—"कैसे ?"

नन्दा—"चालीस यौधेयोंमें बीस-बीसका हमारा-तुम्हारा हिस्सा रहा।"

मैं—"भाभी और देवरमें हमारा-तुम्हारा क्या ?"

नन्दा—"तुम हो निरे शिशु। तुम दूसरोंको ही उपदेश देते रहोगे। और, अपने कुछ नहीं करोगे ?"

मैं—"आज्ञा करो। भाभीकी आज्ञा कभी मैंने टाली ?"

नन्दा—"तो ब्याह करना होगा और बीस यौधेय पैदा करने पड़ेंगे।"

मैं—"ब्याह ? क्या मुझे ब्याह करना चाहिए ?"

नंदा—"क्या ज़िन्दगी भर क्वारे ही रहोगे ? यदि क्वाँरा रहना था तो भले बौद्ध-बिहारमें पड़े हुए थे।"

मैं—"लेकिन दुलहिन भी कहीं है ?"

नन्दा—"बड़ी अच्छी दुलहिन, देखकर दिल ख़ुश हो जायगा। वैसी सुन्दरी तो इन्द्रलोकमें भी नहीं मिलेगी अप्सरा है, अप्सरा !"

मैं—"कहाँ है वह अप्सरा ज़रा बतलाओ भी तो ?"

नन्दाने इधर-उधर झाँककर धीरेसे कहा,—"मैंने बातचीत कर ली है। सब ठीक है, तुम्हारी स्वीकृति बस चाहिए।"

मैं—"सुनूँ भी तो कौन है वह?"

नन्दा धीरेसे—"जालुककी बड़ी लड़की।" कहकर हँसने लगी।

मैंने तिरछी निगाहसे उसकी ओर देखते हुए कहा—"और उससे तुम चाह रही हो बीस यौधेय पैदा कराना।"

नन्दा—"यौधेय नहीं खटमल, वह खूसट जालुक की खटमलशालामें रहेंगे। यौधेय पैदा करनेका ज़िम्मा मैंने अपने ऊपर लिया है।"

मैं—"बंधुक उसे उपाश्रयमें भिजवा रहा है।"

नन्दा—"उपाश्रयमें नहीं जायेगी तो बेचारी क्या करेगी? तीस साल की तो हो चुकी। वैसे होता तो जालुक हज़ार दो हज़ार दीनार देकरके किसीको फँसाता, लेकिन अब यौधेय छोकरे तुम्हारे मारे उसके यहाँ पैर भी नहीं रखना चाहते। सब मेनका और तिलोत्तमा चाहते हैं।"

मैं—"तो भाभी! अब तुमने इन बेचारियोंके उद्धार करनेका बीड़ा उठाया है?"

नन्दा—"गुप्तोंने गौ-ब्राह्मण रक्षाका ढोल पीटना शुरू किया है, मैंने सोचा कि इन अभागी कुमारियोंकी रक्षाका भार मैं अपने ऊपर लूँ।"

मैं—"तुम्हारा कंधा बहुत मज़बूत है, लेकिन भाभी मेरा कंधा बहुत कमज़ोर है।"

नन्दाने मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा तो मैं तुम्हारे कमज़ोर कंधे लायक हलका भार देती हूँ।"

मैं—"देखो तुम्हारी बातमें आकर आधा भी भोजन नहीं कर सका और तुम्हारी पहेली लम्बी होती जा रही है।"

नन्दाने मेरी पीठसे लगकर अपने केशोंको मेरे कपोलसे लगाते हुए अत्यंत मधुर स्वरसे कहा—"देवर जय! तुम्हारी और वसुनंदाकी जोड़ी कैसी रहेगी?"

मैंने बाएँ हाथको नन्दाके शिरपर रखकर उसे अपने कपोलोंसे और लगाकर कहा—"भाभी ! तुम्हें सहस्रशः धन्यवाद।"

नन्दा—"अर्थात् आज्ञा शिरोधार्य है।"

मैं—"एक बार नहीं हज़ार बार शिरोधार्य, यदि वसु मुझे अपना चरण-सेवक बनने लायक समझें।"

नन्दा दौड़ गई, और वसुका हाथ पकड़े मेरे सामने लाकर उससे बोली—"वसु ! लाज मत करो। मैंने देवरसे कह दिया है कि मेरी बहन तुम्हारे ऊपर मर रही है, तुम एकाध बार आँख भरकर देख तो लिया करो।"

वसुनन्दाके गाल बहुत लाल हो गये थे। वह कुटिल भ्रू हो उसकी ओर देख रही थी और हाथ छुड़ानेकी कोशिशमें थी। मैं अब भोजन समाप्त कर चुका था और वहीं थालीमें हाथ धो अंजलि बाँधकर वसुके चरणों-की ओर करके कहा—"वसु ! तुम नन्दा भाभीको जानती हो। वह किसीको नहीं छोड़ती। मैंने कितने ही दिनोंसे सोचते-सोचते आज भाभीसे प्रार्थना की। जय तुम्हारी चरण-सेवाकेलिए तैयार है, यदि तुम उसे इसके योग्य समझती हो।"

वसुनंदाकी तनी भृकुटी फिर अपने पूर्व स्वरूपमें आ गई, उसने एक बार मेरी ओर नज़र डाल आँखोंको नीचे कर लिया। बिजलीकी तरह एक क्षणकेलिए ही उसकी बड़ी-बड़ी आँखें मेरी ओर घूमीं, लेकिन वह मेरे अन्तस्तलमें समा गई थीं। उन्होंने एक क्षण हीमें इतनी बातें कह डालीं जिन्हें कहनेकेलिए आदिकविको एक कांड लिखना पड़ता।

नन्दाने मेरा हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा—"देवर उठो, मेरी बहन गूँगी है, मैं उसकी ओरसे तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करती हूँ। पहले मेरे चरणोंकी धूलि अपने सिरपर चढ़ाओ।" मैं उसके पैरके तलवोंको छूकर शिर-पर लगा उठ खड़ा हुआ। उसने मेरे हाथको वसुनन्दाके हाथसे मिलाकर कहा—"यह लो, अब वसु तुम्हारी हुई और तुम वसुके हुए।" फिर अपनी आँखोंसे आनन्दाश्रु बहाकर हम दोनोंको कहा—"जाओ, मैंने अपना कर्त्तव्य पूराकर दिया।"

(२०)

सन्तान ही हमारा भविष्य

यद्यपि अग्रोदकामें धानकी खेतीका रिवाज़ नहीं था। लेकिन हम सिर्फ़ रिवाज़के पीछे चलनेवाले नहीं। हमने खलतिकासे बहुत सुन्दर गंध-शाली (बासमती)का बीज मँगाया था और बड़े उत्साहके साथ पाँच करीस (प्रायः दस एकड़)में धान रोपा था। दो-दो हाथ धान बढ़ आया था। उस दिन वसुके साथ मैं अपने धानको देखने गया। जिस वक्त हम वहाँ पहुँचे थे; आकाश ज्यादातर नीला था, कहीं-कहीं सफ़ेद बादल पूर्वसे पच्छिमकी ओर तैरते दिखाई पड़ते थे—जान पड़ता था कि नीले सागरसे फेन निकल रहा है। हम अपने खेतकी मेड़पर घूम रहे थे तब तक बादल बढ़ने लगा और पूर्वमें श्याम घटा उमड़ रही थी। हल्की हवाके झोंकेसे सघन धानके लहराते पौदे जान पड़ते थे, घन-हरित सरोवर लहरें मार रहा है। उसी तरह कहीं पौदा पूरा खड़ा, कहीं एक ओरको आधा झुका, लहरोंके आरोहा-वरोहसा दिखाई पड़ता था। हम कभी-कभी पत्तोंको हाथसे छूते थे। मैंने एकदो पत्ते नोच लिये थे। वसु भी तरंगित शस्यको हाथ लगा रही थी। किन्तु, उसने जब मेरे हाथोंमें उन दो-तीन खंडोंको देखा तो कहा—"प्रियतम! यह शस्य कितने सुन्दर हैं, कितने हरे हैं, इनका स्पर्श कैसा सुखद मालूम होता है; लेकिन तुमने यह नोंच क्यों लिया; जिस वक्त वह इस शब्दको मुँहसे निकाल रही थी, उस वक्त मैं उसकी आँखों-की ओर देख रहा था। उनमें वेदना थी। मैंने नोचे टुकड़ोंको वहीं छोड़ दिया और उसके हाथको अपने हाथमें ले कहा—"प्रिये! ठीक है यह कोमलता स्पर्श करनेकेलिए ही है, यह सौन्दर्य लहरी आँखोंको तृप्त करनेकेलिए है।" उसी वक्त बिजलीकी चमक हमारी आँखोंमें आई हम पूर्वकी ओर मुँह करके देखने लगे। अति सघन-श्याम मेघावली आधे नभको ढाँप चुकी थी और बड़ी तेज़ीसे आगे बढ़ रही थी। उसी वक्त दूसरी बार भी बिजली चमकी। वसुने देखकर कहा—"देखो प्रियतम देखो—बादल! जान पड़ता है कहीं विशाल अग्निराशि गीले ईंधनसे ढँकी, उससे घना धुआँ निकलकर आकाश-की ओर बढ़ रहा है।"

मैं—"और जान पड़ता है आग भीतर ही भीतर काफ़ी सुलग चुकी है और उसमेंसे जब-तब स्वर्ण-स्फुलिंग निकल पड़ते हैं।"

"बिजलीसे लोग इतने डरते क्यों हैं?"

"क्योंकि उसका निर्घोष कानोंको फाड़ने लगता है, वह जिसपर पड़ती है उसे जला देती है।"

"लेकिन पड़ने-जलानेका अवसर तो बहुत कम आता है। वैसे तो जीवन-में कभी न कभी कोई खतरा आ ही जाता है।"

"आदमीकी चले, तो वह बिना छिलकेकी शाली (चावल) पैदा करना पसन्द करता। लेकिन बे-छिलकेकी शालीका बहुत कम भाग घरमें आ पाता। चिड़ियाँ खेत हीमें चुँगकर निहाल हो जातीं।"

"मैं भी समझती हूँ जीवनके दूसरे पहलू-खतरेके न रहनेपर मनुष्य अकर्मण्य रहता है।"

"शरीर हीसे अकर्मण्य नहीं मनसे भी अकर्मण्य रहता और तब जानती हो प्रिये! मनुष्य क्या होता? मांसका लोंदा।"

"वह क्या जीवन होता।"

"हाँ, जीवन गतिका नाम है, गति हर क्षण-क्षण नये रूप उपस्थित करती है और हर रूप अपनेमें सुंदर सफल। जब हमने धानको यहाँ रोपा था, तो उस वक्त यह पौधे छोटे-छोटे थे। वह हरेकी अपेक्षा पीले ज्यादा थे; उनका आकार भी एक बित्तासे अधिक नहीं था। कुमारियाँ जौको घरके भीतर बोतीं, उन्हें टोकरीसे ढाँप देतीं, देखा है, वह उगे हुए पौदे कैसे मालूम होते हैं?"

"पीले-पीले थोड़ा सफ़ेद भी।"

"हमने जब धानको रोपा था, उस वक्त उतना पीला नहीं था। पानीमें गाड़ते वक्त वह लेट गया था। फिर वह खड़ा हुआ। उसका पीलापन गया, हरियाली आई और फिर वह काली हरियालीमें परिणत हो गई। फिर इनके शिर कुछ मोटे होने लगे। मालूम होगा, उनकी पतली यष्टि इस स्थूल शिरको सँभार न सकेगी।"

"मैंने अभी ऐसे धानको नहीं देखा।"

"अभी तो अग्रोदकामें पहले-पहल धान रोपा है। अब देखोगी।"

"शिर क्यों भारी होता है।"

"क्योंकि जीवनका जहाँ यह धर्म है कि अपनी चरम वृद्धिके बाद धीरे-धीरे निःशेष हो जाय। उसी तरहसे उसका दूसरा भी धर्म है और सबसे बड़ा धर्म है, अपने स्थानकेलिए नये जीवनको पैदा करना।"

वसुने अनाशंकित हो मेरे कंठमें अपने दोनों हाथोंको डाल दिया और मैंने गाढ़ालिंगन करते उसके मुखको चूम लिया।

वह बोली—"जीवनका यह धर्म कितना सुंदर है—अपनी जगहकेलिए नया जीवन पैदा करना!" यह कहते-कहते उसके नेत्र पुलकित हो गये थे उनमें मनोहर स्निग्धता थी।

अब काली-घटा पूरी तरह आकाशमें छा गई थी। यद्यपि अभी एक याम (चार घंटा) दिन था; किन्तु जान पड़ता था कि समयसे पहले ही अंधकार सबको ढाँक लेना चाहता है। जब तब बिजली भी कड़क उठती थी। मैंने वसुके हाथको पकड़े आगे क़दम बढ़ाते हुए कहा—"प्रिये! वर्षा आना ही चाहती है। हम घर नहीं लौट सकते, चलो सुनन्दा-सागरके इस ऊँचे भीटे-पर।" हम उधर चल पड़े। बूँदें अभी दो-चार ही हमारे शरीरपर पड़ी थीं, किन्तु वह मोटी-मोटी थीं। बादल बार-बार गरज रहा था और उनकी प्रतिध्वनि-की तौरपर कुंजोंमें मोर केकाकर उठते थे। वसुका मुख बहुत प्रसन्न था। वह कहने लगी—"बाह्य प्रकृतिका सौन्दर्य मनुष्यको कितना प्रभावित करता है!"

"हमारे सौन्दर्य, हमारे जीवनका सबसे अधिक भाग यही बाह्य-प्रकृति है। आज यह घने बादल छाए हुए हैं, एक ओर सुनन्दा-सागरकी जल-राशि-की विशाल श्वेत चादर तनी हुई है और दूसरी ओर यह हरित-शालीकी साटी। घन शब्दके साथ मयूर केका मिश्रित हो रही है। ऊपरसे शरीरमें शीतल मंद पुरवा लग रही है। किसे प्रकृतिका यह रूप पुलकित न करेगा।"

इसी वक्त हमारे पास हीसे केका-ध्वनि सुनाई पड़ी। हमने वहाँ झाड़ीके पास देखा। एक मोर अपने पिच्छोंको चक्राकार फैलाये नृत्य कर रहा है। उसके नृत्यका केन्द्र है मोरिनी।

वसुने मेरे कंधेपर हाथ रखकर कहा—देखो-देखो प्रियतम ! इसके चक्र-वत् पिच्छ कितने सुन्दर मालूम होते हैं। इसकी मंदगति कितनी मधुर मालूम होती है।

"और देखो यह दो हैं, शायद यदि मोहिनी न होती, तो ये पिच्छ खुलते ही नहीं" कहकर मैंने उसके शिरको अपने कंठसे लगा लिया।

उसने कहा—"कितना सुन्दर, कितना मनोहर।"

"और यह भी इस जीवनके सुखके अनुभव और नव-जीवनकी तैयारी। मोरका यह नृत्य प्रेयसीके सामने प्रणय-निवेदन है, उसकी यह मधुर केका प्रेयसीके भयभीत हृदयकी सांत्वना है।"

"तो यह पक्षी भी मनुष्यों जैसा ही हृदय रखते हैं!"

"क्योंकि जीवन एक है। जीवनके स्वरूप, विलक्षणतासे भरे हैं; किन्तु जीवनके सुख और सृष्टिके विधान एकसे ही हैं। अपनी प्रेयसीके प्रेमको पाकर इस मयूरको कितना आनन्द आता होगा ? लेकिन उनका आनन्द अपने ही तक उसी क्षण तक समाप्त नहीं हो जायगा, वह नये जीवनकी सृष्टि करेगा, उस जीवनकी जो इस जोड़ेके न रहनेपर भी नये रूपको लेकर फिर अपने नृत्यको जारी करेगा।"

"प्रियतम ! जीवन देखनेपर तो आदमीको आशा ही आशा होती है।"

"मृत्युको क्या देखना, वहाँ देखनेको रह क्या जाता है ?"

"और पुनर्जन्म ?"

"पुनर्जन्मको मैं मानता हूँ। पुनर्जन्म मुझे बहुत प्रिय है। प्रिये ! तुम आँखसे देखे जानेवाले पुनर्जन्मको पसंद करती हो या उसको जिसमें भारी संदेह है ?"

"आँख-देखी चीज़के सामने अनदेखीको कौन पसंद करेगा ? लेकिन क्या पुनर्जन्म आँखसे भी देखा जा सकता है ?"

"हाँ, देखा जा सकता है। लेकिन उस पुनर्जन्मको लाना एक आदमी-के वशमें नहीं है। ये मोर-मोरिनी अपने पुनर्जन्मकी तैयारीमें हैं।"

वसुने मेरी आँखोंकी तरफ़ देखते हुए मुस्करा दिया। मैंने उसे कंठा-लिंगन करते हुए कहा—"क्यों, मुस्कराई क्यों प्रिये ?"

"हम भी पुनर्जन्म लेने जा रहे हैं।"

मैंने वसुके मुखको चूम लिया। हर्षातिरेकके मारे मेरी आँखें स्निग्ध हो गईं तो भी मैं उसके मुँहकी ओर देखने लगा। जान पड़ता था उसका सौंदर्य कई गुना बढ़ गया है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें आवेशके साथ अपार आनन्द भरा हुआ था। वह कहने लगी—"दोके सहयोगसे पुनर्जन्म! एक अकेला अपने जीवनको अनंत काल तक क़ायम नहीं रख सकता। दो प्रियतम जीवनोंका मिश्रण एक नये जन्मका प्रादुर्भाव है।"

"नये जीवनका आरंभ भी कितने सुन्दर ढंगसे होता है? और उस जीवनमें दोनोंके जीवनका सर्वस्व सम्मिलित रहता है। उनका बल, उनकी बुद्धि, उनका साहस, उनकी प्रतिभा कोई चीज़ छूटने नहीं पाती।"

"कोई चीज़ लुप्त होने नहीं पाती।"

"बूँदें तेज़ पड़ रही थीं। हमारे कपड़े भीग चुके थे, वसुके हर्षालोकित मुखको प्रक्षालित करके उसे उन्होंने और स्फीत, मनोरम बना दिया। मैं जैसे मोतीकी झालरोंके बीचसे उसे देख रहा था उसके स्वर्णाभ केश-पाश जलसे भर गये थे। मैंने वेणीको खोल दिया, और जलकण बिखरे केशोंके ऊपरसे फिसलते हुए नीचे गिर रहे थे। हम कितनी ही देर तक असंख्य क्षुद्र धाराओं-को सुनन्दा सागरपर पड़ते देखते। कभी सामनेके हरित शालि-क्षेत्रकी ओर झाँकते, कभी मैं वसुकी ओर देखता। उसकी कंचुकी भीगकर शरीरसे सट गई थीं, जिसमें उसके सुन्दर वक्षका सारा उतार-चढ़ाव, उसकी एक-एक रेखा दीख पड़ती थी। एक कंधेपर पड़ी उसकी चादर भीगकर भारी हो गई थी, जिससे हवाके हिलोर उसे अधिक कँपा नहीं सकते थे। मैं उसके सुन्दर अंग-प्रत्यंगको अतृप्त दृष्टिसे देख रहा था। मैंने कहा—"जान पड़ता है, मैं तुझे बिल्कुल नई देख रहा हूँ। पहले भी तेरी रूप-राशिको देखा था पहिले भी उसने हृदयमें आनन्द तरंगित किया था, किन्तु आज वह उससे सौ गुना अधिक आकर्षक मालूम होती है।"

वसुने मेरे छोटे-छोटे भीगे केशोंपर हाथ फेरते हुए बड़े स्निग्ध स्वरमें कहा—"क्यों मैं तो वही वसु हूँ?"

"जान पड़ता है जिस तरह जीवन वहीं नहीं रहता उसी तरह वह क्षण-क्षण अभिनव सौन्दर्यको धारण करता है !"

हम युगों अतृप्त हो इस तरह देखते और बात-चीत करते रहे। वर्षा कम होनेकी जगह और तेज़ होती जा रही थी। घटाने दिशाओंको अंधकारावृत कर दिया था, इसलिए सूर्यास्त, गोधूलिका पता नहीं लगा। जब निशाने वस्तुतः अपने हाथोंसे दिगंतपर मसि पोतना शुरू किया तब हमें ख्याल आया कि अब घर चलना चाहिए।

× × ×

मुझे अपने कामसे महीने-महीने भर अग्रोदकासे अनुपस्थित रहना पड़ता था। विक्रमादित्यको हमने पराजित नहीं किया था बल्कि आहत करके छोड़ दिया था। घायल चीता बहुत ख़तरनाक होता है। हम, बड़ी सतर्कताके साथ उसकी गति-विधिको देख रहे थे। अपने राज्य कोषको वह भरता जा रहा था, लेकिन साथ ही प्रजाको संतुष्ट भी रखना चाहता था। रास्तोंको अब उसने चोरों और डाकुओंसे अंकटक कर दिया था। पांथों और सार्थोंके ठहरनेकेलिए जगह-जगह पांथशालाएँ, कूप और वापी बनवाई थीं। सड़कोंके किनारे फल-दार वृक्ष लगाए और जिसमें वह शकटों और आदमियोंके चलने लायक बराबर बनी रहे इसकेलिए खास तौरसे प्रबन्ध किया था। उसके दीनारोंमें बहुत शुद्ध सोना था, और वह तरह-तरहके थे। कुछमें सोना समुद्रगुप्त और देवपुत्रके सिक्कोंसे भी अधिक था। किसीमें उसकी मूर्ति हाथमें धनुष लिए थी, और ऊपर लिखा था श्रीविक्रम। किसीमें वह सिंहपर बाण छोड़ रहा है, किसीमें कोई वामन उसके ऊपर छत्र धारण किये हुए था। दीनारोंके दूसरी ओर लक्ष्मीकी मूर्त्ति रहती। मुद्राओंको भी उसने अपने रोबदाबके फैलानेका साधन बनाया था और उनपर प्रभावोत्पादक छोटे वाक्य अंकित किये थे— "नरेन्द्रचंद्रप्रथितो दिवं जयत्यजेयो भुवि सिंह विक्रमः" "सिंह विक्रमः", "सिंह चंद्रः", "देव श्री महाराजाधिराजा श्री चंद्र गुप्तः"। वह अपने प्रयत्नमें कितना सफल हुआ इसका एक उदाहरण यही है, कि छत्र धारण करनेवाले वामनको देखकर कुरुके एक गाँवमें कोई आदमी कह रहा था—विक्रमादित्य-को कोई परास्त नहीं कर सकता। आदमी नहीं राक्षस, दानव, वैताल तक

उसकी आज्ञाको शिरोधार्य समझते हैं। उस भोले ग्रामीणकेलिए चंद्रगुप्तके सिक्केका वामन और कोई नहीं वही वैताल था।

हमें दक्षिणसे भय नहीं था। हमारे गण संघ और महाक्षत्रप रुद्रसिंहके बीचमें मालवोंका गण है, यह सोचकर नहीं; बल्कि हमें मालूम था कि रुद्रसिंहकी स्वतंत्रता तब तक स्थायी नहीं है, जब तक चंद्रगुप्त निर्बल नहीं हो जाता। हमें पच्छिमसे भी उतना डर नहीं, क्योंकि हमारे पड़ोसी देवपुत्रशाही खुद ही पारसीक शाहंशाहके सम्मत थे। और उन्हें अपनी पश्चिमोत्तर सीमापर हूड़ोंका खतरा बना हुआ था। यद्यपि चंद्रगुप्तके पराजयसे, कुषाण देवपुत्र हमारी शक्तिको जान गया था; लेकिन साथ ही वह यह भी जानता था, कि कुणिन्द-यौधेय-आर्जुनायन गणसंघ विपाश (व्यास) और शतद्रु (सतलज)-से आगे नहीं बढ़ना चाहता। चंद्रगुप्त भी जानता था, कि हम यमुना पार होना नहीं चाहते, किन्तु वह तो आ-समुद्र क्षितीश बनना चाहता था, फिर हमसे करारी हार खा चुका था उसकी बढ़ती हुई शक्ति हमारे दिलोंमें चिन्ता पैदा कर रही थी। इसीलिए हम एक क्षण भी गाफिल नहीं रहना चाहते थे, और मुझे तो बराबर घूमते रहना पड़ता था। मैं उस दिन खंडिलामें था। दिनमें धनुष-बाण, घुड़सवारी खड्ग आदिकी प्रतिद्वंदिता देखता रहा, शामको हमारी मित्र-गोष्ठी जमी हुई थी, उसी वक्त माधव आया। अब भी वह अश्वारोहके वेशमें था और उसके हाथमें कशा थी। हम सब उसकी ओर देखने लगे। माधवने नमस्कार करते हुए कहा—"भायर जय! बड़ी खुशखबरी लाया है, और वह खुशखबरी तुम्हारे ही लिए नहीं हम सबकेलिए है।"

मैंने प्रसन्नता दिखलाते हुए कहा—"क्या है वह खुशखबरी? क्षत्रप और विक्रमकी ठन गई क्या? सचमुच ही यह बड़ी खुसखबरी होगी।"

"तुम्हारी तो भैया जय! हमेशा दूर-दूर ही नज़र रहती है।"

"आज हरेक यौधेयकी नज़र दूर-दूर तक जानी चाहिए। यौधेय-भूमिपर कभी इतना बड़ा संकट नहीं आया था विक्रमादित्य हमारी जड़ तकको खोद डालनेका संकल्प कर चुका है।"

"हमने एकबार विक्रमके छक्के छुड़ाये हैं, अगर उसका हौसला पूरा नहीं हुआ है, तो फिर आकर देख लें। मैं दूसरी तरहकी खुशखबरी लाया हूँ।

भाभी वसुने एक यौधेयको जन्म दिया है।" कहकर वह मेरे आधे खड़े हुए शरीरमें आकर लिपट गया। सभी यौधेय मेरा आलिंगनकर हर्ष प्रकट करने लगे। मुझे भी बहुत आनंद हुआ, किन्तु मैं उसे उतना शब्दोंमें नहीं प्रकट कर रहा था जितना कि हमारी मित्र-मंडली।

माधवने कहा—"भैया जय! एक नये यौधेयके आनेपर यौधेयोंको खुश होना ही चाहिए। यौधेय एक पीढ़ीकी वीरतासे 'जय यंत्रधारी' नहीं बने!"

"हाँ, हमारेलिए इस बातका अभिमान होना उचित है कि यौधेय माताएँ सदा वीर-प्रसवा रही हैं। और अब तो तुम्हारे परिश्रमसे यौधेय माताएँ सिर्फ़ वीर-प्रसवा ही नहीं हैं बल्कि स्वयंवीरा हैं।"

खंडिलाके पुरस्कर्त्ताने मेरे हाथको अपने हाथमें लेकर कहा—"जय! मैं चाहता हूँ मेरे पौत्रका नाम विजय हो।" सबने एक स्वरसे कहा—"हाँ, हमें ऐसा ही नाम चाहिए।"

माधवने यह भी कहा—"जयने यौधेयोंकेलिए जो कुछ किया है वह सदा स्मरणीय रहेगा, हम जयके पुत्रको एक क़दम और आगे बढ़े हुए विजय-के रूपमें देखना चाहते हैं।"

मैंने कहा—"चाचा पुरस्कर्त्ताकी आज्ञाको कौन टाल सकता है।"

उस दिन रातको मुझे देर तक नींद नहीं आई। मैं कभी आजकी अवस्थाको सोचता कभी यौधेयोंके भविष्यकी ओर यह सोचकर मुझे प्रसन्नता होती कि यौधेयोंकी आनकी रक्षाकेलिए दो और हाथ आ गये हैं जो उस वक्त खूब बलिष्ठ होकर अपने काममें लग जाएँगे जब मेरे हाथोंकी शक्ति क्षीण हो जायेगी। मैं उतावला हो रहा था कि कब सबेरा हो, और मैं अग्रो-दकाकेलिए रवाना होऊँ।

अग्रोदका खंडिला (खण्डेल)से सोलह योजनसे अधिक दूर था लेकिन हम सिर्फ़ एक दिन रास्तेमें ठहर दूसरे दिन वहाँ पहुँच गये। भाभी नन्दाके सामने जाते ही उन्होंने मेरे धूलि-धूसरित स्वेद-सिक्त ललाटको चूमते हुए आनंदाश्रु बहाते कहा—"देवर मैं कितनी खुश हूँ। हमारे घरमें एक और यौधेय आया, और सचमुच उसका मुख तेरे ही जैसा है।"

मैंने भाभीके कंधेपर हाथ रखकर कहा—"यौधेय आया सो तो ठीक है लेकिन चार दिनके बच्चे हीमें मेरे चेहरेको कैसे देख रही हो?"

भाभीने मुस्कराते हुए कहा—"यह विद्या हम स्त्रियाँ ही जानती हैं।"

माधव बोल उठा—"और बिल्ली अपनी सारी विद्याएँ बाघको नहीं सिखलातीं। लेकिन भाभी! गुस्सा मत होना, मैं प्रचलित कहावतको दुहरा रहा हूँ।" मैंने भाभीकी तिरछी नज़रको माधवकी ओर घूमते देखकर कहा—"कहावतके नामपर कुछ भी कह जाओ, किन्तु मालूम है न तुम कौन-सी भाभीके सामने खड़े हो?"

भाभीने मेरा हाथ पकड़कर कहा—"यदि भाभी बिल्ली है तो माधव पहले ही भीगी बिल्ली बन गया। चलो थके हुए हो, पहले कुछ खाओ-पिओ। फिर तुम्हें अपने पुत्रको दिखलाऊँ,..."

माधवने कहा—"और भाभी। जानती हो खंडिलावालोंने इस यौधेयका नाम भी रख दिया?"

भाभी—"उन्होंने नाम रख दिया है! नाम मैं रक्खूँगी कि?"

मैं—"हमारे खंडिलाके पुरस्कर्त्ता और दूसरे मित्रोंके मुँहसे अनायास विजय नाम निकल आया यदि तुम्हें पसंद हो तो रक्खो।"

भाभीने खुश होकर मेरे हाथको अपने दोनों हाथोंमें दबाते हुए कहा—"बिल्कुल मेरे मनका नाम है। मैं अपने पुत्रका नाम विजय ही रक्खूँगी।"

भाभीने हमें भोजन कराया। फिर पुरानी कापिशेयीका एक कुतुप और चषक ला रक्खे। हम बात करते हुए पान कर रहे थे और उधर आँगनमें यौधेयानियाँ पुत्रोत्सवके गीत और नृत्यमें लगी हुई थीं। मैंने वैसे बहुतसे यौधेयानियोंके गीत सुने थे, किन्तु पुत्रोत्सवके गीतोंको इतना एकाग्र होकर सुननेका मौक़ा नहीं मिला था। और यह गीत क्या थे, मानों यौधेयोंके पीढ़ियोंकी वीरकर्म गुम्फित कर दिये गये थे। रुद्रदमाको "रुद्द अ" (रुद्रक) कहकर तिरस्कार प्रकट करते हुए उससे भिड़नेवाले यौधेय वीरोंका यशोगान हो रहा था। यौधेयानियाँ ऐसे ही पुत्र पैदा करनेका स्वप्न देखती हैं। जब वह पुत्रोत्सवकी बधाई गाती हैं, तब भी उनके सामने सारा यौधेय इतिहास, यौधेय गौरव रहता है।

मैंने भाभीसे कहा—"यौधेय पुरुषोंको उनकी वीरताका श्रेय उचितसे अधिक मिलता है। मैं तो कहूँगा भाभी! यौधेय जो आज यौधेय हैं, उसमें सबसे बड़ा हाथ यौधेयानियोंका है।"

भाभी—"लेकिन देवर! हम यौधेयानियाँ तुम्हारे कामको भूल नहीं सकतीं। हम नाममात्रकी यौधेयानी रह गई थीं।"

"यह क्या कह रही हो भाभी। जो यौधेयानियाँ, बच्चेके कान खुलनेके साथ ही इस तरहको वीरगाथाएँ सुनाएँ, जो इस तरहकी गीतोंको रचकर हमारे इतिहासको पीढ़ियों तककेलिए सुरक्षित कर दें जो हमें घुट्टीके साथ वीररसका पान करायें; उन्हें कौन यौधेयानी नहीं कहेगा।"

"मैं मानती हूँ देवर! लेकिन हम मा, बहिन, और पत्नीके तौरपर यौधेयानी रहीं। तुमने हमें अधिकारके तौरपर यौधेयानी कहने लायक बनाया। मैं चाहती हूँ, अब हम हमेशा यौधेयानी ही बनी रहें।"

भाभीने दूसरे दिन सबेरे ही बच्चेको दिखलानेकेलिए कहा था। मैं सबेरे ही मुँह-हाथ धोकर तैयार हो गया। इस जल्दीकेलिए बल्कि उन्होंने रेवतकसे कहा भी—"देख रहे हो रेऊ। एक यह भी पिता है और एक तुम थे।"

रेवतक—"क्यों मुझसे क्या कसूर बन पड़ा।"

नन्दा—"कसूर! जब मुझे पहला पुत्र हुआ तो तुम भी इतने उत्सुक थे पुत्रका मुख देखनेकेलिए?"

मेरे चेहरेपर लज्जाका चिह्न देख भाभीने आकर मेरे कन्धेसे अपने कपोलोंको लगाकर कहा—"नहीं देवर! लजानेकी बात नहीं" और हाथ पकड़े हुए मुझे प्रसूति-गृहमें ले गईं।

मेरी नज़र बच्चेसे पहले वसुके चेहरेपर पहुँची और वहीं मुग्ध होकर ठहर गई। अब वह अरुणोद्भासी पद्म-मुख नहीं, जीर्ण पांडुर वदन था, उस-पर कुमार सुलभ-चापल्य नहीं था, मातृत्वकी गम्भीर मुद्रा थी। मयूर-मेचक सदृश चमकते नहीं शिथिल रूखे कृष्ण चिकुर, शरीरके एक-एक अंगसे नव-जीवनकेलिए जो उपादान ग्रहण किया गया था उसके खात सभी जगह मौजूद थे। वैसे देखा जाता, तो यह सुन्दर नहीं मालूम होते; किन्तु मुझे उसमें एक

अनुपम सौन्दर्य दिखाई पड़ रहा था, साथ ही यह भी मनमें आ रहा था कि नारी-मातृत्वकेलिए कितना उत्सर्ग करती है। फिर देखा भाभीको शिशुको हाथमें लेते वसुकी विशाल आँखें अपने इस हृदय खंडको कैसे देख रही थीं। उनकी श्वेतिमामें गर्व था, उनके कृष्ण तारकोंमें स्नेहकी चमक थी। मैंने उस छोटेसे पद्म-पुष्प जैसे कोमल शिशुको देखा। भाभीके हाथोंमें उसका अंग-अंग हिल रहा था। सिरपर कोमल-कोमल छोटे-छोटे पीत केश थे आँखें खुली हुईं अपने नील वर्णसे वसुके नेत्र-सौन्दर्यको चुराये मालूम होती थीं। मुँह, चिबुक, कंठ, हाथ, पैर कितने छोटे, कितने कोमल थे लेकिन यही बीस वर्ष बाद एक प्रकांड यौधेयके रूपमें परिणत होगा, मुझे खयाल हो रहा था विशाल कार्यका आरंभ भी कितने छोटेसे होता है। मैं एकटक शिशुकी ओर देखता रहा और वसु मेरी ओर। अपनी मूक भाषासे हम अपने अन्तर्निहित गर्वको व्यक्त कर रहे थे। हम संसारमें बालूके पद-चिह्नकी तरह लुप्त नहीं होंगे, बल्कि हम अपना प्रतिनिधि छोड़ जाएँगे।

भाभीने कहा—"देखा देवर! कितना सुन्दर बालक है, और है न तुम्हारे ही जैसा?"

मैं—"सुन्दर है, मगर भाभी है यह तुम्हारे जैसा।"

भाभी—"मेरे जैसा! अर्थात् वसु जैसा। हाँ, इसके केश इसके नेत्र वसु जैसे मालूम होते हैं, लेकिन ललाट, चिबुक? और मैंने कहा नहीं कि हम स्त्रियोंके पास एक और विद्या है जिससे हम जान लेती हैं कि छोटा-सा शिशु बीस वर्ष बाद कैसा होगा।"

मैं—"बीस वर्ष बादकी बात आज कह रही हो, ज्योतिष होगा यह।"

भाभी—"नहीं देवर! मैं ठीक कह रही हूँ, विजयके केश-नेत्र माँके होंगे और बाक़ी सारा शरीर पिता जैसा।"

भाभीने बच्चेको माँके हाथमें दे दिया, वसुने मेरी ओर नज़र किया वह मुस्कुरा रही थी। भाभी मुझे साथ लिये बाहर आईं कह रहीं थीं—"कितना चमत्कार है! कुछ माँके गुण, कुछ पिताके गुण और फिर शून्यसे ऐसे सजीव पिंडका प्रादुर्भाव होना!"

मैं—"हरेक नव-निर्माण चमत्कार है, फिर जीवन तो विश्वकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु है, और उसमें भी मानव-जीवन, फिर इतना चमत्कार क्यों न हो। लेकिन शून्यसे नहीं भाभी ! वहाँ माता-पिताका रज-वीर्य मौजूद रहता है, और उस क्षुद्र रज-वीर्य बिन्दु युगलमें उनकी और उनके पूर्वजोंकी हज़ारों पीढ़ियोंकी शारीरिक तथा मानसिक संपत्ति सूक्ष्म रूपमें मौजूद रहती है। वहाँ साँचा भी है, संस्कार भी है और मूर्त्ति ढालनेका पिंड भी। इसलिए यह शून्यसे आरंभ नहीं है. सूक्ष्मसे आरंभ है, जो सूक्ष्म होते भी विशाल है।"

भाभी—"मानो हज़ारों पीढ़ियोंकी अर्जित संपत्ति है।"

मैं—"वह हज़ारों पीढ़ियाँ एक-दूसरेमें कितनी गुँथी हुई हैं यह भी सोचो। यहाँ हैं मेरे माता-पिताका दायभाग और वसु अर्थात् माता-पिताका दायभाग, इस प्रकार दूसरी पीढ़ीने छः जीवनोंका दायभाग लेकर यह छोटा-सा शिशु संसारमें आया है।"

भाभी—"अर्थात् तीसरी पीढ़ीमें दादीके माता-पिता, दादाके माता-पिता, नानीके माता-पिता और नानाके माता-पिता, आठ और अपने दायभागको देनेवाले हैं।"

मैं—"तो देखा न भाभी अभी आपका विजय सिर्फ़ दोकी शारीरिक-मानसिक संपत्तिका दायभाग मालूम होता था। तुमने केश-नेत्रको माँसे मिलाया और बाक़ी शरीरको पितासे; लेकिन जय और वसुनन्दाकी यह शारीरिक-मानसिक संपत्ति पीछे चार स्त्री-पुरुषोंकी देन है। इस प्रकार जो शिशु इस पीढ़ीमें एक है, वह पीछेकी ओर चलनेपर दूसरी पीढ़ीमें दो, तीसरीमें चार, चौथीमें आठ, पाँचवीमें सोलह—और एक-एक पीढ़ीकी इन संख्याओंको गिनो गोया पाँचवीं पीढ़ीमें ही तीस हैं—इसे दायभाग देनेवाले। इसलिए इसका आरंभ सूक्ष्म होनेपर भी विशाल है और भविष्य उससे भी अधिक विशाल है क्योंकि यहाँ दूसरी पीढ़ी दो हीसे नहीं चार-छः-आठसे शुरू हो सकती है और तीसरी-चौथी पीढ़ीमें दायभागका इतना विस्तार हो जाता है कि हम उसे अमर प्रवाह कह सकते हैं।"

भाभी—"देवर ! तुम जो कहा करते हो कि मरनेके बाद कोई पुनर्जन्म

नहीं, कोई परलोक नहीं; मैं इसे उतना नहीं समझ पाती; लेकिन यह अच्छी तरह समझती हूँ कि अपनी औरस-संतानके रूपमें जनमना हमारा सुन्दर पुनर्जन्म है।"

मैं—"साथ ही यह भी समझो कि वह काल्पनिक पुनर्जन्म बिल्कुल आत्म-केन्द्रित, विनाशके भय और वैयक्तिक-लोभका स्वरूप है; जबकि यह पुत्र-पुत्रीके रूपमें हुआ, पुनर्जन्म आत्म-विस्तार, स्वार्थत्याग, और आशासे भरा बड़ा गौरवशाली जन्म है। इस पुनर्जन्मसे हमें यह प्रेरणा मिलती है कि जिसमें हम पैदा हुए और हमारे ही जन्मांतरके रूपमें हमारी हज़ारों संतानें पैदा होंगी उसे एक क्षण भी हमें उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखना है।"

भाभी—"आशा तो यहाँ भी है। जब मैं विजयकी आँखोंको देखती हूँ तो समझती हूँ कि वसुकी आँखोंने नया जन्म लिया है, अति तरुण और अधिक चिरस्थायी रूपमें। इस तरह हरेक नया जन्म पुरानी शारीरिक-मानसिक सम्पत्तिको बिल्कुल तरुण रूपमें प्रकट करता है। आखिर हम जिसे छोड़ते हैं वह तो बहुत दुर्बल जीर्ण-शीर्ण रूपमें पहुँच गया रहता है—आँखोंमें ज्योति नहीं, शरीरमें कान्ति नहीं, मनमें स्मृति और समझ नहीं फिर उस मानसिक-शारीरिक संपत्तिके विलोपसे खिन्न होनेकी आवश्यकता क्या।"

मैं—"हाँ, मैं न रहूँगा—यह है विचार, जो कि कायरोंके दिलको डरा देता है, और उन्हें यह कल्पना बहुत सुन्दर मालूम होती है कि मरनेके बाद भी संतान रूपमें नहीं बल्कि स्वच्छन्द हम फिर नया शरीर धारण करेंगे और फिर वही हास-विलास, वही केलि-क्रीड़ा हमारेलिए सुलभ होगी।"

भाभी—"तो क्या यह कल्पना ही है?"

मैं—"कल्पना है या नहीं इसके बारेमें ज्यादा बहस करना नहीं चाहता, किन्तु अत्यन्त संदिग्ध है, इसमें तो सन्देह नहीं है फिर यह कितनी खुदग़रजी। मनुष्यने अपने आनन्दको सिर्फ़ अपने भोग ही तक सीमित नहीं रखा उसे अपनोंके आनन्दमें भी आनन्द मिलता है। पुनर्जन्म सदा एकमात्र अपने भोगकी पर्वाह करनेका ही प्रलोभन हमारे सामने रखता है।"

(२१)

कालिदास और यौधेय

समय बीतता गया, यौधेयोंकी समृद्धि बढ़ती गई—कृषि, पशु और मनुष्य-के उपयोगकेलिए गाँव-गाँवमें बड़े-बड़े जलाशय और कुएँ बने। यौधेय-भूमिके-लिए अनावृष्टि और दुष्कालका भय जाता रहा। गेहूँ, चना, मूँग, माष, कलाय ही नहीं हमारे यहाँ सुन्दर शाली पैदा होते। पुंड्रइक्षु (पौंड़ा ईख)को हमने बड़े प्रयत्नसे पुण्ड्र वर्धन भुक्ति (उत्तर वंग)से मँगाकर अपने यहाँसे फैलाया था जिसकेलिए ख्याति हो गई थी कि पक्षिके चंचु-प्रहारसे रस निकलने लगता है। पुंड्रइक्षु रस निस्संदेह ज्यादा होता है किन्तु चंचु-प्रहारसे रसस्राव होना अतिशयोक्तिमात्र है। दाड़िम, द्राक्षालता, उदुम्बर आदि गंधार-कम्बोज-के फलोंको भी हमने अपने यहाँ लगाया। पिछले बीस सालोंमें यौधेय सिर्फ़ सैनिक बलमें ही बहुत नहीं बढ़ गये, बल्कि उनके ग्राम-नगरोंकी काया पलट गई, उनके खेतों और बाग़ोंको देखकर मन प्रसन्न हो जाता था। उनके गाय, भैंस, घोड़े, भेड़, बकरियाँ भी एक-दूसरी जातिकी बन गई थीं, और हमारे पड़ोसी देशों तथा दूर-दूर तक उनकी बहुत माँग थी। हमारी मानुष-सम्पत्ति भी उसीके अनुसार बढ़ी थी। भाभीके कहे अनुसार मैं बीस सन्तानोंका पिता तो नहीं हो सका किन्तु विजय, रिपुंजय, संजय, मेरे तीन लड़के हुए। विजय अब सोलह वर्षका हो रहा था उसके शारीरिक-मानसिक बलको देखकर कोई पिता अभिमान किये बिना नहीं रह सकता। दूसरे बारह और आठ सालके हुए। वसु मेरे सब कुछमें सहभागिनी थी। भाभी नन्दा अब भी उसी तरह हमें हँसाने-डरानेकेलिए तैयार थी। हमने यौधेय-भूमिमें विद्या और शिल्पका खूब प्रचार किया। हमारे यहाँसे कम्बल, कपास, वस्त्र तथा दूसरी दन्त-काष्ठ-पाषाण-धातुकी वस्तुएँ बनकर बाहर जातीं। हमने अपने शिल्पियोंको अपने समान माना—केवल उन्हें गण-संस्थाका सदस्य बनानेकी क्षमता हम अपनेमें नहीं पाते थे। यौधेय-भूमिसे हम अब दास-प्रथाको भी उठा चुके थे। यौधेय सब तरहसे संतुष्ट और प्रसन्न थे। मैं भी उनका सहभागी था। लेकिन महा-सेनापति बप्पके मरनेके बाद मैं यौधेय-गण पुरस्कर्त्ता और महामंत्री बनाया गया।

अपनी जन्मभूमिकी शक्ति और समृद्धिसे मुझे अपार प्रसन्नता ज़रूर थी, किन्तु साथ ही जब यमुनापारमें जो घटनाएँ घट रही थीं उनकी ओर मैं ध्यान देता, तो दिल विकल होने लगता। चंद्रगुप्तने पूर्वमें लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) और समुद्रपर अपने राज्यको विस्तृत कर लिया था। पश्चिम समुद्र तकके स्वामी वाकाटकको अपनी मुट्ठीमें लानेकेलिए जो कौशल चंद्रगुप्तने दिखलाया, उसे देखकर तो मैं दंग रह गया। पृथ्वीषेणने समुद्रगुप्तके अन्तिम समय सर उठाया। वाकाटकोंका राज्य नर्मदासे कृष्णा, पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ है उनके पास भारी सेना थी। मैं आशा करता था कि चंद्रगुप्त वाकाटक राजासे भिड़ेगा, वह दिन हमारेलिए कितना अच्छा होगा। दोनों अत्याचारी आपसमें लड़कर खतम हो जायेंगे। लेकिन चन्द्रगुप्तने एक भी तीर नहीं चलाया, एक भी भट नहीं खोया और सारी वाकाटक भूमि चंद्रगुप्तके प्रभावमें आ गई। चंद्रगुप्तकी दूसरी रानी कुबेर नागासे प्रभावती नामक पुत्री हुई। जान पड़ता है पिताके गुण-अवगुणका सबसे अधिक भाग पुत्रीके पास जाता है। प्रभावती विक्रमादित्यके घरमें सरस्वतीका अवतार बनकर पैदा हुई थी। इस तरहकी प्रसिद्धिमें कहाँ तक सत्य है, यह नहीं कह सकते किन्तु वह बड़ी चतुर और मनस्विनी तरुणी है, इसमें तो कोई सन्देह नही। पृथ्वीषेणका पुत्र रुद्रसेन प्रभावतीका पति और विक्रमादित्यका जामाता नहीं बल्कि अब वह विक्रमका एक अति सम्मानित सामंत है। वाकाटकोंकी सारी-सेना अब विक्रमकी सेना है।

दूसरी ओर मालवोंने भी गुप्तोंके सामने सर झुका दिया। जय वर्मा और सिंह वर्मा दोनों पिता-पुत्र पहले हीसे मालवगणको अपने परिवारकी सम्पत्ति समझते थे। मालव समयपर सजग नहीं और अब तो जय वर्माके पोते नर वर्माने मालवोंको विक्रमके हाथमें बेच डाला। नर वर्माने कितना विश्वासघात किया! कैसे कोई गण-सन्तान इतना पतित हो सकता है। छिः! छिः!! चंद्रगुप्तने नर वर्माको सम्मानित किया, गणके शासनको उठाकर उसकी बागडोर नर वर्माके हाथमें देनेमें मदद की। विश्वासघाती नर वर्माने समझ लिया है कि अब उसका वंश अनंतकाल तक मालवोंपर, शासन करेगा। जब नर वर्माके विश्वासघातकी बातें मैंने सुनीं; तो कितने ही दिनों तक मैं रात-रात

सोचा करता था, मैं इसे मालवोंकी पराजय नहीं अपनी पराजय समझता था। मैंने अपने बंधुओंको कह दिया कि चंद्रगुप्तने बिना एक बूँद खून बहाये ही इससे बदला ले लिया।

महाक्षत्रपकी अवस्था और भी खतरेमें थी उसके पूर्व और दक्खिनमें चंद्रगुप्त और प्रभावती-पति घेर ही चुके थे, उत्तरमें नर वर्माके विश्वासघातने मालवको चंद्रगुप्तके हाथमें दे दिया। अब तीन तरफ़से महाक्षत्रपको विक्रमने घेर लिया था। मैं जानता था, चंद्रगुप्तको सबसे अधिक लोभ है क्षत्रपकी भूमि—अवंतीलाट और सौराष्ट्रका; क्योंकि वह समझता है कि सौराष्ट्र लाटके पत्तनों (बन्दरगाह) पर ही पश्चिमी मेघ सुवर्णकी वर्षा किया करते हैं। लेकिन कौन कह सकता है कि चंद्रगुप्त अपने विक्रमको पहले यौधेयोंके सामने प्रदर्शित करेगा या महाक्षत्रपके सामने। मेरे हृदयमें हर वक्त चिन्ता बना रहनी स्वाभाविक बात थी।

चंद्रगुप्तका सैनिक बल और कोषबल अपने पितासे कहीं अधिक है, यह मुझे स्पष्ट है। साथ ही, वह उससे कहीं ज़्यादा समझदार, कूटनीतिज्ञ और निष्ठुर है, यह भी मुझे मालूम है। वह अपने सैनिक बलको तभी इस्तेमाल करना चाहता है जबकि कोई दूसरा चारा न रह जाय। वाकाटकोंको अपनी कन्या देकर, उसने दिखला दिया कि वह कितनी दूर जा सकता है। ऊपरसे प्रजाकी सद्भावना अपनी ओर खींचनेकेलिए वह हज़ार तरहसे कोशिश करता है। उसने भी कितने मंदिर बनवाये हैं लेकिन उनके साथ ही कोने-कोनेसे कलाकारोंको बुलाकर मूर्त्ति, चित्र और स्थापत्यके श्रेष्ठ नमूनोंको प्रदर्शित करनेकेलिए जहाँ उन्हें भारी पारितोषिक और सम्मान प्रदानकर अपना आभारी तथा प्रशंसक बना लिया है; वहाँ श्रद्धालु जनताके सामने भी धर्मराजके रूपमें आया है। एक बैताल हीके किस्से नहीं, अपने संबंधके सैकड़ों किस्सोंको फैलानेकी वह ख़ुद प्रेरणा करता है; जिसमें लोग समझें कि विक्रमादित्य असाधारण मनुष्य नहीं कोई महान् देवता उसके रूपमें अवतीर्ण हुआ है। वह परमवैष्णव तो अपनेलिए लिखता ही है, लेकिन साथ ही लोगोंके दिलोंमें बैठा देना चाहता है कि वह भू-वराह है जिसने कि म्लेच्छोंसे धरती माताका उद्धार किया। मैंने स्वयं उसके बनवाये एक बराह-मंदिरको मथुरामें देखा।

मूर्त्तिका केवल सिर वराहका है बाकी सारा शरीर एक बलिष्ठ पुरुषका। वराहके दन्तसे लग्न पृथ्वीको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मुझे विश्वास नहीं था कि चंद्रगुप्त इतना दूर तक जायगा। वह मूर्त्ति पृथ्वीकी नहीं ध्रुवदेवीकी थी। मूर्त्ति अत्यन्त सुन्दर थी यह मैं एक कलाकारके तौरपर कह सकता हूँ, लेकिन चंद्रगुप्त-ने क्यों अपनी पत्नीकी मूर्त्तिको वराहकी दंष्ट्रामें लटकाया ? यह ठीक है कि उसने कुषाण देवपुत्रके हाथसे ध्रुवस्वामिनीका उद्धार किया। यह भी संभव है यदि उसने साहस न दिखलाया होता तो गुप्त राजलक्ष्मी नष्ट हो गई होती। लेकिन इसको महावराहकी तरह पृथ्वी-उद्धार रूपमें परिणत करना चंद्रगुप्तका ही काम है। जो ध्रुवदेवीके कथाको जानते हैं, वह इस रूपमें इसका अर्थ लेंगे, जो नहीं जानते हैं वह इसे भू-वराह समझेंगे, जो कला-प्रेमी हैं वह इस अद्‌भुत मूर्त्तिको देखकर परमभट्टारककी प्रशंसा करते न थकेंगे।

प्रथम विजयके उन्नीस साल हो गये थे, और इस बीचमें हम बराबर अपनी सैनिक शक्तिको बढ़ाते रहे, तो भी हमारा भय कम होनेकी जगह बढ़ता ही गया। आज हरेक यौधेय बाल-वृद्ध, नर-नारीको सिर्फ़ एक ही बातका ख़्याल है कि कैसे चंद्रगुप्तको अंतिम पाठ पढ़ाया जाय। चन्द्रगुप्तको मेरी सारी बातों-का पता लगता रहा, वह अफ़सोस करता था कि यदि वह वाकाटकोंके साथ अपनी चालमें सफल हुआ, तो उसका अपना मामा कैसे हाथसे निकल गया। ध्रुवदेवीने न जाने कितनी चिट्ठियाँ मेरे पास भेजी थीं, और अपनी बहिनकी ओरसे प्रेम-संदेशोंके जालमें फँसानेकी कोशिश की थी। लेकिन पहिले युद्धके बाद मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। ध्रुवदेवीने दूतद्वारा यह भी इच्छा प्रकट की कि मैं अज्जुकाकी जन्मभूमिको देखना चाहती हूँ। शायद उसको विश्वास था कि अग्रोदका आकर मेरे मनको घुमानेमें सफल होगी। मैं उससे डरता था, कहीं वह यहाँ पहुँच न जाये। मुझपर उसका जादू क्या चलता, लेकिन ख़ाम-ख़्वाह इस बलाको क्यों मोल लें। मैं बहाने करके टालता रहा। चन्द्रगुप्त पंद्रह सालोंसे बराबर मेरे पीछे पड़ा रहा। बड़ेसे बड़ा पद ही देनेको तैयार नहीं था बल्कि वाकाटकोंकी तरह अपने मातुलवंशको भी वह एक प्रतापशाली राजवंशके रूपमें परिणत करनेकी बात करता था।

वर्षा समाप्त हो गई थी, यद्यपि अब भूमिमें पंक नहीं दिखलाई पड़ता था, किन्तु अब भी वह हरित शष्पसे ढँकी हुई थीं। हमारे धानोंके खेतोंकी सुनहली बालियाँ हवाके हल्के झोकोंसे झूम रही थीं। मैं रेवत और वसुनन्दाके साथ शामको मेड़ोंपर घूम रहा था इसी वक्त दो मुसाफ़िर उधरसे गुज़रे, उनमें-से एक घोड़ेपर था और दूसरा उसका परिचारक मालूम होता था। मुसाफ़िर-ने मेरे पास आकर पूछा—"आर्य! आप बतला सकते हैं महासेनापति जय यौधेयका घर कहाँ है?"

मैं—उसके मुँहकी ओर देखने लगा। उसकी उम्र तीस-पैंतीसकी रही होगी। चेहरेपर विनम्रता थी, मगर उसकी चमकीली आँखें मेरे ध्यानको अपने ओर खींचे बिना न रहीं। उसके शरीरपर श्वेत कंचुक, श्वेत उष्णीष, श्वेत अन्तर-वासक और कन्धेपर श्वेत उत्तरीय (चादर)के सिवा और कोई आभूषण न था। मैंने नम्रतापूर्वक पूछा—"आर्य। कहाँसे आये हैं।"

"मथुरासे आया हूँ। महासेनापति जय एक प्रौढ़ विद्वान् और कला-मर्मज्ञ हैं, मैं भी एक तुच्छ कलाकार हूँ, और इसी नाते उनके दर्शनकेलिए सुदूर दक्षिण अवन्तिपुरीका निवासी यह ब्राह्मण उनके पास आया है।"

मैंने दोनों हाथ जोड़कर कहा—"आर्य! बन्दे। मैं भी एक कला-भक्त तुच्छ यौधेय हूँ। लेकिन जान पड़ता है, हमारे महासेनापतिके बारेमें किसीने झूठे ही प्रशंसाके शब्द आपके कानोंमें डाले हैं। वह एक योद्धा हैं, यह यौधेय-भूमिमें सभी जानते हैं, लेकिन कला और विद्यासे उनसे क्या मतलब?"

आगंतुकने ईषत् प्रहसित वदन हो कहा—"आर्य! शायद आपको पता न हो, मैंने बहुत ही विश्वस्त पुरुषोंके मुखसे सुना है, इसलिए मुझे सन्देह नहीं है। आप यदि मुझे महासेनापतिका घर बतला सकें, तो बड़ा अनुग्रह होगा।"

जिस वक्त मैं इस तरह बातें कर रहा था, उस वक्त रेवतक और वसुनन्दा-को हँसी रोकनी मुश्किल हो रही थी। मैंने कहा—"आर्य! मैं आपके विश्वास-के बारेमें क्या कहूँ? वह हमारा महासामन्त है, लेकिन, उसके पास अपना घर नहीं।"

आगतुकने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"फिर महासेनापति रहते कहाँ हैं ? मैंने सुना है कि वह अग्रोदकामें रहते हैं।"

मैं—"अग्रोदकामें उसकी जन्मभूमि है, उसके भाई-बंधु रहते हैं। वह तो बराबर घूमता रहता है। जब कभी यहाँ रहना होता है, तो बंधुओंके हाज़िर है।"

आगंतुकने कुछ निराश-सा हो कहा—"आजकल महासेनापति हैं तो घर हीपर ?"

मैं—"मुझे खेद है कि आर्य ऐसे समय आये जबकि महासेनापति बाहर निकले हुए हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे कब तक लौटेंगे।"

आगंतुक—"मैं उनसे ज़रूर भेंट करना चाहता हूँ, वह जहाँ भी होंगे, उन्हें ढूँढ़कर मिलूँगा।"

मैं—"आपको कितना कष्ट उठाना पड़ेगा ? एक बार मैं भी किसी कामसे उनके यहाँ उनसे मिलने गया था। लेकिन मुझे बीस दिन तक पीछे-पीछे दौड़ना पड़ा। जिस गाँवमें पहुँचता, वहाँसे उन्हें आगे चला गया सुनता। और फिर एक दिनमें दो चार योजन नहीं, बारह-बारह चौदह-चौदह योजनकी मंज़िल मारना कितना मुश्किल है।"

"ख़ैर, मुझे तो मिलना ज़रूर है" कहते हुए आगंतुकका चेहरा उतर गया।

मैं—"आप यदि मिलना ही चाहते हैं, तो कमसे कम अब तो आगे जानेका समय नहीं रहा। आर्य ! क्या आज मेरा आतिथ्य स्वीकार करेंगे ?"

आगंतुकने प्रसन्नता दरशाते हुए मेरे आतिथ्यको स्वीकार किया। हम उन्हें लेकर अपने घर पहुँचे। सचमुच ही मैंने अपने पैतृक घरको अपनी सम्मिलित खेती तथा उसके कमकरोंको दे दिया था और मैं स्वयं रेवतकके घरमें रहता था। हम आगंतुकको अपने कोठेके सबसे अच्छे कमरेमें ले गये। पैर धुलवाया, फिर मधु-मिश्रित उदक तथा फलसे तृप्त किया। आगंतुकके बारेमें मैं अभी इतना ही जान सका था कि वह अवन्तिपुरीका एक ब्राह्मण कलाकार है। अधिकतर मेरा ध्यान चित्रकला और मूर्त्तिकलाकी ओर जाता था, किन्तु उसने स्वयं भोजनसे पहिले बतला दिया था कि मैं एक छोटा-सा कवि हूँ। यही नहीं

उसने मधुमदान्वित तरुणीके सौन्दर्यपर अपना एक पद्य भी सुनाया। मैंने पूछा—"आर्य ! आपको मदिरासे इनकार तो नहीं होगा ?"

आगंतुक—"नहीं आर्य ! कवि ही क्या यदि उसने मदिरासे इन्कार किया उसपर मैं भगवती कालीका दास हूँ।"

अब मुझे सन्देह नहीं रह गया कि मैं महाकवि कालिदाससे बात कर रहा हूँ, तो भी मैंने अभी अपनेको प्रकट करना नहीं चाहा।

हमारे घर भरको बहुत प्रसन्नता हुई। हम महाकविका नाम सुन चुके थे, और उनके "मेघदूत"के पद्य तो हमारे तरुणोंके जिह्वापर रहते थे। मैंने भी उसे पढ़ा था और इसकेलिए रंज भी हुआ था कि मेघको अलकापुरी भेजते वक्त कविने रास्तेमें पड़नेवाली यौधेय-भूमिका वर्णन क्यों नहीं किया। भोजनोपरान्त जब चषक चल रहे थे और कविके गौर-कपोलपर कुछ अरुणिमा छा गई, तो मैंने पूछा—"महाकवि।..."

कालिदास—"नहीं मुझे महाकवि न कहें।"

मैं—"आपके कहनेसे कुछ नहीं होता आर्य।...यौधेय-भूमि महाकवि कालिदासको अच्छी तरह जानती है।"

कालिदास—"इसकेलिए मैं यौधेय-भूमिका कृतज्ञ हूँ। किन्तु मैंने ऐसा कौनसा महाकाव्य किया ? अश्वघोष, सौमिल्ल और भासके समाने मेरी क्या गिनती ?"

मैं—"नहीं, हम आपकी मुँहदेखी प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। आपका 'मेघदूत' घर-घरमें गाया जाता है। वह छोटासा काव्य ही आपकी प्रतिभाको व्यक्त करनेकेलिए काफ़ी है। महाकवि, अलकाके रास्तेमें तो हमारी यौधेय-भूमि पड़ती है, किन्तु आपने उसका कोई ज़िक्र नहीं किया।"

कालिदास—"मैंने यौधेय-भूमिको कभी देखा नहीं, अब मैं जानता हूँ कि यौधेय-भूमि कितनी रमणीय है।"

महाकविने हमें अपनी कितनी ही कविताएँ सुनाईं जब उन्होंने देखा कि मैं उनके काव्य-सौन्दर्यको परख सकता हूँ। मैंने भी वीणापर उन्हें कुछ गीत सुनाये। वह मेरे अतिथि-सत्कार हीसे नहीं बल्कि कला-प्रेमके कारण भी

बहुत संतुष्ट हुए। जब उन्होंने दूसरे दिन प्रस्थान करनेकी बात की, तो मैंने आगेकी मेहनतके बारेमें बतलाकर एक-दो दिनके आराम करनेकेलिए कहा।

अग्रोदकामें कालिदासको मैंने एक सप्ताह तक रखा, और सत्कार-सन्मान इतना अधिक किया गया, कि कालिदासने स्वयं अपने मुँहसे कहा—"यौधेय-भूमिने मेरा जो अकृत्रिम सम्मान किया है, जिस प्रकार मुझे अपने हृदयमें स्थान दिया, उसके सामने महाक्षत्रपकी अभ्यर्थना और विक्रमादित्यका प्रसाद कुछ भी नहीं है।"

हमने उनकेलिए खासतौरसे नृत्य और संगीतके उत्सव कराये, उनके ताज़ा बनाये गीतोंको यौधेय तरुणियोंने अपने मधुर कण्ठसे गाया। सभी उनके सामने नम्रता प्रदर्शन और आतिथ्य करनेकेलिए होड़ लगाये हुए थे। मैंने काव्य-कला छोड़ और कोई बात नहीं छेड़ी। मैंने यह ज़रूर चाहा कि महा-सेनापतिसे मिलनेका खयाल वह छोड़ दें। लेकिन अब भी वह अपने विचार-पर दृढ़ थे। मैंने एक दिन संध्या-पानके समय कहा—"मुझे क्षमा कीजियेगा, महाकवि! मैंने इतने दिनों तक आपको भ्रममें रखा जिस जय यौधेयसे आप मिलना चाहते हैं, वह यह आपके सामने उपस्थित है।"

कालिदासने एक बार विस्फारित नयनोंसे अवाक् रह देखा फिर वह दोनों हाथोंको आगे बढ़ाये उठ खड़े हुए और मुझे अपने पास खड़ा देख दृढ़ परिष्वंग किया। कुछ देर तक और निर्निमेष देखकर मेरा हाथ पकड़े बैठ गये फिर मुँह खोला—

"मित्र जय! नहीं, महासेनापति जय यौधेय।..."

मैं—"नहीं, पहला ही संबोधन मुझे ज़्यादा प्रिय है, आपकी अमृत मधुर वाणीसे वैसे जो भी निकले, जय, उसमें ही अपनेको कृतार्थ समझेगा।"

कालिदास—"अच्छा मित्र जय! मुझे अपने प्रतिद्वन्द्वीकी ओरसे भेजा गया दूत समझो। लेकिन मेरेलिए अब यह कहना मुश्किल है कि मैं तुम्हारा दूत हूँ या विक्रमादित्यका। मैं यह मानता हूँ कि यौधेय-भूमिने मुझे जीत लिया। मैं यह भी समझ रहा हूँ कि यौधेय-भूमिसे अधिक सुखपूर्ण जीवन प्रजाको कहीं मिल रहा होगा इसमें भारी सन्देह है। और यहाँके नर-नारियोंमें जो स्वच्छन्दता और आत्म-सम्मानका भाव देखा, यदि अपनी आँखोंपर

विश्वास नहीं करता तो मेरेलिए यह स्वप्नकी चीज़ें थीं। मित्र! क्षमाकी कोई बात नहीं तुम मुझे पहले ही दिन जान गये थे, लेकिन साथ ही मैं यह भी समझता हूँ कि सात-सात दिन तक अग्रोदकाके सारे नर-नारी मेरे सामने अभिनय नहीं कर रहे थे; बल्कि अपना वास्तविक जीवन दिखला रहे थे। यौधेय-भूमिने कविके हृदयको कितना जीत लिया यह प्रकट करना किसी दूसरे समयकेलिए रखता हूँ। अब सावधान हो तो मैं अपने उस उद्देश्यको तुम्हारे सामने रखना चाहता हूँ जिसकेलिए कि मैं यहाँ आया हूँ।"

मैं—"मैं सावधान हूँ महाकवि! आप निःसंकोच जो कुछ भी दिलमें हो कह डालें।"

कालिदास—"तुमने पहले ही मेरे संकोचको दूर कर दिया है। हाँ, यदि इसके कारण कोई अनुचित बात मेरे मुखसे निकले तो उसका ख्याल न करना, साथ ही यह भी ध्यानमें रखना कि मैं जो कुछ कहूँगा उसके पीछेसे चन्द्रगुप्त बोल रहा है।"

मैं—"क्या चन्द्रगुप्तने आपको भेजा है? लेकिन आप तो उज्जयिनी के·····"

कालिदास—"हाँ, महाकालकी नगरीमें जन्म लेनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है।"

"और महाक्षत्रपोंके समृद्ध शासनमें उज्जयिनीका वैभव, विद्या, कला-प्रेम बहुत बढ़ा।"

कालिदास—"शायद प्रद्योत और उसके वंशजोंके सौ-सवा सौ सालके छोड़ देनेपर उज्जयिनीको यह महत्त्व कभी नहीं प्राप्त था, जो कि महाक्षत्रपोंके समय था।"

मैं—"मैं समझता हूँ कि महाक्षत्रप रुद्रसिंह और उसके पुत्र उसी तरह सरस्वतीके भक्त हैं, जैसे उनका पूर्वज महान रुद्रदामा।"

कालिदास—"सरस्वती-पूजा क्षत्रप वंशके रुधिरमें है।

मैं—"फिर महाकवि! आपने अपनी जन्म-नगरीको छोड़कर पाटलिपुत्र-का आश्रय क्यों लिया?"

कालिदास—"पाटलिपुत्रमें प्रतिष्ठा, शायद मित्र! तुम्हें मालूम नहीं हो, अब विक्रमादित्यका अधिक रहना यमुना-गंगा संगमपर ही होता है।"

मैं—"गंगा-यमुना संगम परमभट्टारकको इतना पसन्द क्यों आया?"

कालिदास—"वहाँके बारेमें 'तनुत्यजां न शरीर बन्धः' मैंने लिख डाला है।"

मैं—"शायद परमभट्टारक वहाँ तनुत्याजकर मोक्ष-प्राप्तिकी आशासे नहीं रहते?"

कालिदास—"परमभट्टारकके बारेमें मित्र तुम मुझसे ज्यादा जानते हो।"

मैं—"लेकिन वह युगोंकी बात है।"

कालिदास—"ठीक युगोंकी बात है किन्तु मनुष्यके मनोभाव एक ही प्रवाहमें चलते हैं और फिर 'छः मासका कुत्ता बारह वर्षका पुत्ता हुआ सो हुआ नहीं तो गया' यह कहावत तो प्रसिद्ध ही है; तुमने जब चन्द्रगुप्तको छोड़ा तब वह पूरा मनुष्य हो गया था।"

मैं—"हाँ, बीस सालका और कई सालों बाद राजा हो जानेपर जब मैंने उसे देखा तो महाकवि! तुम्हारी बात ठीक है उसमें कोई उतना परिवर्त्तन नहीं आया था। हाँ, मैं सुनना चाहता था आपके उज्जयिनी छोड़नेकी बात।"

कालिदास—"उज्जयिनीने मुझे जन्म दिया, पाला पोसा, विद्या सिखलाई। कालिदास जो कुछ है, उज्जयिनीका ही बनाया हुआ है और क्षत्रपकुलने दिल खोलकर मेरा सम्मान किया, उस समय भी जब कि कवि अपनी तोतली बोलीको ही निकाल सकता था। कविने डरते-डरते कुछ स्फुट कवितायें लिखीं, उसीपर उज्जयिनीके राजा-रंक सभीने उसे हाथोंपर उठा लिया और मेघदूतके लिखनेके बाद तो महाक्षत्रप रुद्रसिंहने अपने अन्तःपुरमें मुझे बुलाया। कहाँ, मैं उनकी प्रसन्नता मात्रसे अपनेको कृतकृत्य समझता, कहाँ उन्होंने मुझे अपना अर्धासन दिया। अपनी सबसे अधिक मधुरकंठी गायिकाको मेघदूतका गायन करनेकेलिए कहा। गान-समाप्तिके बाद महाक्षत्रपने द्रवित स्वरमें कहा—'तरुण कवि! क्या सचमुच तुम अभिशप्त हो, किसीने तुम्हारे प्रेममें बाधा डाली? मैं कहने लगा—'नहीं भट्टा! यह तो कविकी कल्पना

है।' इसपर महाक्षत्रपने मुस्कुराते हुए कहा—'तुम्हें कहनेमें संकोच लगता है किन्तु सिर्फ़ कल्पनामें इतनी शक्ति नहीं है, यह वस्तुतः अभिशप्त हृदयकी उसास है। क्षत्रप-वंश हमेशा विद्वानोंका चरण-सेवक रहा है, यदि कोई 'क्षत्रप-कुमारीके प्रेमने भी तुम्हें अभिशप्त बनाया हो तो कहो तुम्हारेलिए कोई वस्तु अदेय नहीं रहेगी।' तुम समझ सकते हो महाक्षत्रपके बारेमें मेरा क्या भाव है और उस वक्त जब कि अभी कालिदासके संगीत शिप्राके कूलों तक ही गूँज पाये थे।"

मैं—"हाँ, महाकवि! मैंने दूत बनकर आनेकी बात सुनके ख्याल किया था कि महाक्षत्रप रुद्रसिंहने ही आपको भेजा होगा।"

कालिदास—"और उस समय शायद मेरा भी कर्त्तव्य हलका होता और तुम्हारा भी।"

मैं—"बहुत ही हल्का। यौधेय और महाक्षत्रप एक ही तीरके शिकार हैं।"

कालिदास—"शोक, कि मैं अपनी नगरीका दूत बनकर नहीं आया। लेकिन अपने दूत-कर्मके पालन करनेसे पहिले मुझे अपने बारेमें कुछ कह देना ज़रूरी था। मेघदूतके बाद मैं जब कभी कुछ लिखता गया, उन्हें उज्जयिनी और अवंतिके लोग अपने शिर-आँखोंपर चढ़ाते गये, मुझे यश प्राप्त हुआ, सम्मान प्राप्त हुआ, उसीके साथ भोग प्राप्त हुआ, और सभी अति मात्रामें। किसी क्षत्रप-कुमारीका मेघदूत लिखनेके समय मुझसे प्रेम नहीं था, लेकिन अब मेरे इंगित मात्रकी आवश्यकता थी, फिर नवनीत-श्वेत कोमलांगी शक तरुणियाँ मेरे ऊपर सर्वस्व निछावर करनेकेलिए तैयार थीं। कवित्वके साथ मुझमें तारुण्य और बहुत नहीं तो कुछ-कुछ सौन्दर्य भी।"

मैं—"कुछ-कुछ नहीं, महाकवि! काफ़ी सौन्दर्य।"

कालिदास—"अवन्तिने मुझे कवि बनाया, सन्मान दिया, साथ ही भोग सुलभ कर दिया, लेकिन मैंने अपनेको अतिमात्रामें जानेसे रोका नहीं। यदि अपनी ही ओरका आकर्षण होता तो शायद बचनेका रास्ता निकलता। लेकिन तुम जानते हो अवंति सुंदरियोंकी खान है, फिर यवनी, शकानी, आभीरानी तरुणियोंका वह सौन्दर्य जिसके चित्रणकेलिए कालिदासको पहले-पहल नई

तूलिका बनानी पड़ी, नई शब्द-सामग्री जमा करनी पड़ी। उनके मक्खनसे श्वेत कपोलोंपर हल्कीसी उछली हुई लालिमा, उनके स्वभावतः बिंब-विद्रुम सदृश लाल अधर, किस-किस अंगके बारेमें कहूँ, वहाँ किसी अतिशयोक्तिकी आवश्यकता नहीं थी, प्रकृति-वर्णन भी हीनोक्तिमें परिणत हो जाता था। फिर यदि वह दीर्घ सुन्दर नैन चाह भरकर अपलक देखते रहें, वह बिंबाधर व्याजोक्ति या स्मित मात्रसे कविकी ओर हाथ बढ़ाये, तो तुम्हीं सोचो मित्र ! तरुण कविकी दुनियामें कौन रक्षा कर सकता है। मैं संयमी योगी नहीं था, मैं योगियोंके संयम-योगपर विश्वास भी नहीं करता। शायद वह बहुत कुछ ढोंग है भी। मैंने प्रेमको असीम जलराशिमें गोते लगानेकेलिए छोड़ दिया, और कितने ही वर्षों बाद जब उसके रूपको निहारकर देखा, तो उसकी कांति क्षीण हो गई थी, उसका माधुर्य फीका पड़ गया था, और अब वह प्रेम निरन्तर मादक मदिरामें क्षणिक उत्तेजक साधारण पान जैसा बन गया। इसको चाहे कोई किसी दृष्टिसे देखे, मैं कहूँगा, किसीकेलिए अपना आचरण अरुचिकर न होने देना भी एक भारी भूल थी। जिस प्रेमका मैं अपनी कविताओंमें गान करता हूँ मित्र अब वह मेरे जीवनमें नहीं है।"

मैं—"प्रेमका इतना अपव्यय ! आखिर इसका दूसरा परिणाम क्या होगा ?"

कालिदास—"और अब मैं मदिरा भी पीता हूँ, किन्तु तृप्ति नहीं; मैं मदिरेक्षणाका भी आलिंगन करता हूँ, लेकिन उससे भी तृप्ति क्षण भरकेलिए ही होती है। वस्तुतः न मैं उसी मदिराको दो बार पी सकता हूँ न उसी मदिरेक्षणाको फिर-फिर आलिंगन कर सकता हूँ। जो प्रेम मुझे जीवनमें नहीं मिल रहा है उसे मैं कल्पनामें प्राप्त करनेकी कोशिश करता हूँ। इस प्रकार मित्र जय तुमने देखा अवंतिपुरीके घर-घरकी सुरा और सुंदरिया मेरा स्वागत करनेकेलिए तैयार थीं। महाराना और परमभट्टारकोंके लिए भी यह बात सुलभ है किन्तु प्रभुताके बलपर। जो आकर्षण प्रेममें होता है वह प्रभुतामें कहाँ हो सकता है और मेरा आकर्षण था प्रेमका। मैं अपनी ही तृप्ति नहीं लाभ करता था, बल्कि दूसरोंको भी तृप्ति प्रदान करता था। मेरे कानोंमें अब भनक आने लगी कि कालिदासकी वाणी अब पूर्व-पश्चिम तोयनिधियोंकी लहरोंमें मिश्रित

हो रही है, हिमालयके श्वेतशिखरों तकमें वह प्रतिध्वनित हो रही है। तब प्रेमसे भी बढ़कर मुझे बड़ी चीज़ मालूम हुई, वह था यश। मेरे यशके शतांशसे ही प्रेमका काम चल जाता था—प्रेमको मैं यहाँ बिल्कुल स्थूल अर्थोंमें कह रहा हूँ। मुझे अपना यश इतना बड़ा मालूम हुआ, कि उसके अक्षुण्ण रखनेकी ओर ज़्यादा ध्यान देने लगा।"

मैं—"यशको विस्तृत करनेमें आपने कोई प्रयत्न नहीं किया, यह कालिदासकी भारती थी। जिसने सुना उसने अपने हृदयमें रखा, और वह ऐसे ही बनकी आग बन एक हृदयसे दूसरे हृदयमें होती सारे भारतखण्डमें फैल गई। फिर यश अक्षुण्ण रखनेका प्रयत्न क्यों?"

कालिदासने उस दिन इतने हीपर बात खतम कर दी और आगेकी बातका अपने दूत-सन्देशसे सम्बन्ध होनेके कारण दूसरे दिन कहनेकेलिए छोड़ दिया।

मैं रातको वैसे भी चारपाईपर देरसे जा पाया फिर भी मेरा मन कविके वार्त्तालापका बहुत देर तक पुनरनुचिन्तन करता रहा। कालिदासकी प्रतिभा तीक्ष्ण थी मगर हृदय कुटिल नहीं था, उसके हृदयमें सौन्दर्य-प्रेम था किन्तु जुगुप्सनीय कामुकता नहीं थी, कलिदासमें जितनी भी कमियाँ मुझे मालूम हुई उसका ज़िम्मेवार मैं उसे अकेले नहीं बना सकता।

दूसरे दिन कविको लेकर मैं अप्रोदकासे बाहर अपने उद्यानमें गया। अभी भी वृक्षोंके नीचे हरी-हरी घास मौजूद थी। हम पुष्करिणीके शिलाबद्ध घाटपर बैठे, कालिदासने चारों ओर दृष्टि फैलाते हुए कहा—"मेरी कविताके उपकरण यहाँ प्रचुर परिमाणमें मौजूद हैं, किन्तु उसकेलिए मुझे फिरसे नये प्रयोग करने पड़ेंगे, कितनी ही बार तो मित्र जय मैं अपनेसे असंतुष्ट हो जाता हूँ।"

मैं—"नहीं महाकवि! मैं समझता हूँ, कि तुम्हें अपने असंतोषका दूर करना होगा, तुम्हारी वाणीमें त्रुटि हो सकती है, लेकिन वह उसके सौन्दर्यको शशि-कलंककी भाँति घटानेका नहीं बढ़ानेका काम करेगा।"

कालिदास—"शायद यौधेयों और उनकी भूमिको स्नेहसे देखनेका अवसर न मिला होता तो ऐसा न होता। खैर, मैं कलकी बातको खतम करता हूँ।

यह तुम ठीक कहते हो, कि अपने यशको फैलानेमें मैंने कोई प्रयत्न किया और न उसकी आवश्यकता थी। मगर मैं सोचता था कि दूसरे भी कवि हुए जिनकी कृतियोंकी कोई-कोई झलक जब-तब हमें मिलती है, किन्तु उनको पूर्णरूपमें हम नहीं देख पाते। मैं इसे माननेकेलिए तैयार नहीं कि वाल्मीकि, अश्वघोष, मातृचेट, भास, सौमिल्ल और पाँच-सात और कवियोंके अतिरिक्त हमारे यहाँ और महान कवि हुए ही नहीं। मैं सोचने लगा। मेरी कविताके साथमें भी क्या जाने वही बर्त्ताव हो। जब लिखने-पढ़नेका रिवाज़ नहीं था—मेरी समझमें यही बात थी जब हमारे प्राचीन ऋषि उन कविताओंको बना रहे थे जो वेदोंमें जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं; उस समय सुनकर ही कविताएँ एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती थीं। अब तो मैंने भी अपनी कविताओंका सिर्फ़ मनमें जोड़नेसे सन्तोष नहीं किया, बल्कि उन्हें भूर्जपत्रों और उनसे भी अधिक तालपत्रोंमें लिखा। उन्हें लिख-लिखकर लोग दिशाओंमें ले जा रहे हैं। लेकिन कविताओंको इतने हीसे चिरस्थायित्व नहीं मिल सकता। व्यासका महाभारत और वाल्मीकिका रामायण इतना प्रचलित न होता, यदि ब्राह्मणोंने उन्हें अपनाया न होता। मेरी कविताओंको उन ऋषि-काव्योंका स्थान नहीं मिल सकता क्योंकि वह बहुत आधुनिक हैं; यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे पूर्वज जो ऋषि काव्यकार हुए कालिदाससे अधिक संयमी नहीं रहे होंगे। मैंने यह भी देखा कि ब्राह्मणोंकी आशा छोड़ देनेपर, राजा ही ऐसे हैं जो मेरी कविताको चिरस्थिति प्रदान कर सकते हैं।"

"लेकिन राजा तो स्वयं चिरस्थायी नहीं होते?"

"मित्र! यह मत ख्याल करो कि कालिदास चंद्रगुप्त या उसके पुत्र कुमारगुप्तपर काव्य लिखने जा रहा है या गुप्तवंशको आसमानपर उठाने जा रहा है।"

"तो महाकवि! फिर विक्रमादित्य आपकी कृतियोंको चिरस्थायित्व प्रदान करनेकी क्यों कोशिश करेगा?"

"'श्लेष-उक्ति'को भी कविका चमत्कार कहते हैं। मैं रघुवंश काव्य लिख रहा हूँ। मैंने परमभट्टारकको कह दिया कि वहाँ दिलीप और कोई नहीं, तुम्हारे दादा चंद्रगुप्त हैं। और नंदिनीकी सीमाकी बीचमें तिलक लगानेवाली

सुदक्षिणा तुम्हारी ही पितामही कुमारदेवी है। दिग्विजयी रघु दिवंगत परम-भट्टारक समुद्रगुप्त, और अजके नामसे तुम्हारे यशको अमर कर रहा हूँ।"

"किन्तु महाकवि! क्या विक्रमादित्य इतनेसे संतुष्ट हो सकता है?"

"महाकाव्य लिखनेमें बहुत सुभीता रहता है। मैंने राजाको स्वार्थसे बिल्कुल शून्य चित्रित किया है। सुनो—

'प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥'

मैंने हँसते हुए कहा—"महाकवि! क्या यह झूठ नहीं है प्रजाकी भलाई-केलिए ही राजा उनसे कर लेता है। परमभट्टारक, युवराज, राजकुमार राजकुमारों, परमभट्टारिका और उनकी हज़ारों सौतों और सहेलियोंपर जो कोटि-कोटि दीनार ख़र्च होते हैं, क्या यह प्रजाकी ही भलाईकेलिए? फिर सूर्यकी तरह थोड़ा रस खींचकर हज़ार गुना देनेकी बात तो सुनने हीसे कानमें पीड़ा होने लगती है। राजाके पास जो कुछ भी धन आता है उसका स्रोत केवल प्रजाका परिश्रम है। किसी राजाके घरमें दीनारके वृक्ष नहीं लगे हुए हैं, फिर वह हज़ार गुना करके कैसे दे सकता है?"

कालिदास—"मैं झूठसे कब इन्कार करता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि यदि झूठ बोलना भी हो तो छोटा झूठ नहीं बोलना चाहिए, ख़ूब बड़ा बोलना चाहिए। इतना बड़ा कि हाथ फैलाकर भी लोग उसके ओर-छोर को न पा सकें। फिर ऐसे झूठका बोलनेवाला मैं अकेला नहीं हूँ, व्यास, वाल्मीकि जैसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हमें रास्ता दिखला गये हैं। विक्रमादित्यको तुम जानते हो वह भोला-भाला आदमी नहीं है।"

मैं—"वह अकेले चंद्रगुप्त मौर्य और कौटिल्य दोनोंको मिलाकरके ही बुद्धि-बलमें बढ़-चढ़कर है।"

कालिदास—"वह मेरी इन उक्तियोंसे बहुत प्रसन्न है। मैंने 'भुवा महा-वराहदंष्ट्रायां' करके एक श्लोक लिखा, और जानते हो, विक्रम श्लोक सुनते ही फड़क उठा, कहा कि हमें इस श्लोक वर्णित भावको पाषाणोंमें अंकित करना होगा। जब पहिली महावराहकी मूर्त्ति एक दक्ष माथुर शिल्पीने तैयार की

तो वह मुझे अपने साथ दिखानेकेलिए ले गया। मित्र, हम तुम राजाओंको उनके भीतर पैठकर नग्नरूपमें देख चुके, इसलिए हमें उनकी कोई बात आश्चर्यमें नहीं डाल सकती। मगर उस दिन मुझे ज़रूर आश्चर्य हुआ। वराह के रूपमें उसने अपनी मूर्त्ति बनवाई थी, तो भी उसमें शिर अपना नहीं रखा था, किन्तु दंष्ट्राग्रलग्न भूदेवी साफ़ ध्रुवदेवी थी।"

मैंने हँसते हुए कहा—"मैंने भी एक ऐसी मूर्त्ति मथुरामें देखी है।"

कालिदास—"मथुरामें भी! मित्र! मैंने उस दिन झूठे ही मथुरासे आनेकी बात कही थी। नहीं तो तुम्हें भी देखकर ज़रूर वही ख्याल आया होगा जो मेरे दिलमें आया। लेकिन विक्रमादित्य इन सबको पसंद करता है। उसने सीधे अपने या अपने कुलके ऊपर कविता लिखनेकेलिए मुझसे नहीं कहा, यदि कहता तो मैं नहीं समझता कि मुझे क्या करना पड़ता। मैं अपनी कविताओंमें उस अमर सौन्दर्य और अन्तर्वेदनाको गाता हूँ, जिन्हें जब तक मनुष्य है तब तक मरना नहीं है; साथ ही मैं राजाओंके स्वार्थोंकी रक्षाकेलिए इतनी बातें लिख जा रहा हूँ कि गुप्तवंश ही नहीं हरेक राजवंश उन्हें सुरक्षित करनेका प्रयत्न करेगा।"

मैं—"लेकिन यह बात तो महाक्षत्रप भी कर सकता था?"

कालिदास—"नहीं, क्षत्रप-वंशमें वह शक्ति नहीं है यद्यपि कितने ही दूसरे शत्रु राजाके आश्रित ब्राह्मणोंकी तरह मैं शकोंको म्लेच्छ विदेशी नहीं समझता। क्षत्रप किसी बातमें भी पल्लव, वाकाटक गुप्त, राजवंशसे कम नहीं हैं। वह भी ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं, विद्याका सम्मान करते हैं। अपनेको भारतभूमिकी सन्तान समझते हैं, धर्मकी रक्षा करते हैं। फिर उन्हें हम कैसे विदेशी म्लेच्छ कह सकते हैं। विक्रमादित्यके मुँहसे भी मैंने इस तरहका शब्द सुना है लेकिन मैं एक बात समझता हूँ क्षत्रप-वंश बहुत पुराना हो गया है। कोई राजवंश सौ दो सौ वर्षसे ज्यादा अपने वैभवको क़ायम नहीं रख सकता।"

मैं—"और क्षत्रप-वंश तो तीन सौ वर्षसे भी अधिकका हो चुका है।"

कालिदास—"अस्ताचलपर पहुँचकर भी सूर्यकी वही लाल किरणें होती हैं जो कि प्रातःकालमें, किन्तु आशा आदमी बालसूर्यसे ही कर सकता है।"

कालिदास—"हो सकता है मैं ग़लतीपर होऊँ। मैंने तो विक्रमादित्यका पल्ला पकड़ लिया है, इसके कारण मुझे सारे भोग भी सुलभ हैं और अक्षय यशकी आशा भी रखता हूँ। मैं विक्रमादित्यकी ओरसे आया हूँ।"

मैं विहसित वदन हो बोल उठा—"यह तो मैं जान चुका हूँ।"

कालिदास—"लेकिन जिन तर्कोंका प्रयोग करनेकेलिए मैं तैयार होकर आया हूँ, वे सभी मुझे तुम्हारे सामने कुंठितसे मालूम होते हैं। प्रलोभन तुम्हें क्या आकृष्ट करेंगे जब कि अग्रोदकामें तुमने खानेकेलिए एक घर भी नहीं रखा है। यदि मैं विक्रमादित्यकी ओरसे कहूँ कि यौधेय और मालवभूमि ही नहीं निकट भविष्यमें जीती जानेवाली अवंति और सौराष्टकी भूमिको भी तुम्हारे चरणोंमें डाल दिया जायगा, तो तुम इसे अपना भारी अपमान समझोगे।"

मैं—"मुझसे विक्रमादित्य मालवराज बननेकी आशा नहीं रख सकता।"

कालिदास—"यह तो मैंने पहिले ही कह दिया। किंतु विक्रमादित्य सारे भरतखंडपर दृढ़ एक छत्रराज स्थापित करना चाहते हैं।"

मैं—"और वह भी धर्मकेलिए, परोपकारकेलिए, चिरस्थायी शांतिकेलिए, विदेशी आक्रमणसे भरतभूमिको बचानेकेलिए! चंद्रगुप्त मौर्य और कौटिल्यने ऐसा ही सोचा था।"

कालिदास—"और वह असफल हुए यही कहना चाहते हो न? लेकिन विक्रमादित्यका कहना है, गणोंने हमें सफल नहीं होने दिया।"

मैं—"गण निरंकुश राजाओंकी आँखोंमें काँटेकी तरह चुभते रहे हैं। विक्रमादित्यके समय तो अब उतने गण भी नहीं हैं। मालवको वह निगल गया अब यही यौधेयगण संघ रह गया है। वह इसे भी निगल जाना चाहता है और ब्राह्मण तथा आप कवि लोग भी इसकेलिए तैयार हो गये हैं, कि विक्रमादित्य जब इन गणोंके नामको शेष कर दे, तो आप लोग अपनी चुप्पीसे उस नामको भी इतिहाससे मिटा दें।"

कालिदास—"संभव है तुम्हारा कहना ठीक हो, विक्रमादित्य जानता है कि यौधेयोंका निगलना सबसे कठिन होगा।"

मैं—"वह ठीक समझता है। यौधेयोंमें उसे कोई विभीषण नहीं मिलेगा।"

कालिदास—"और इसका परिणाम क्या होगा ?"

मैं—"वह एक-एक करके कट मरेंगे।"

कालिदास—"विक्रमादित्य यौधेयोंकी हरी-भरी भूमिको श्मशान बना देगा क्या इसे तुम नहीं देखते ?"

मैं—"संभव है। लेकिन जीते जी यौधेय नामको मिटते देखना भी तो हम पसंद नहीं करेंगे।"

कालिदास—"वीरोंका सदा सम्मान होता आया है, इससे कौन इन्कार कर सकता है। लेकिन, यमुनासे लौहित्य और हिमालयसे कृष्णवेरणा (कृष्णा नदी) तकके सारे सैनिक बलका यौधेय कैसे मुक़ाबिला कर सकते हैं ?"

मैं—"मुक़ाबिला करनेसे पहिले हथियार रख लेना कहाँकी बुद्धिमानी है और जब कि सवाल यौधेयोंके जन्म-मरणका है। मैं चंद्रगुप्तसे और क्या कह सकता हूँ, यौधेय अब भी उस शर्तको माननेकेलिए तैयार हैं जिसे उन्होंने समुद्रगुप्तके सामने स्वीकार किया था।"

कालिदास—"लेकिन विक्रमादित्य राजोच्छेत्ता झूठे ही कहा जाता है, वह अगर है तो सर्वगणोच्छेता है। वह कहता है कि गणोंको रखते हुए हम भरतखण्डके बलको दृढ़ नहीं कर सकते।"

मैं—"अर्थात् राजाके इशारेपर मुँह बाँधे लाखों भट भेड़की तरह कटने-केलिए तैयार नहीं होंगे। शायद वह समझता है कि एक राजाके हुक्मपर मरनेवाली सारी प्रजा जिस दिन हो जायगी, उस दिन इशारा भर कर देनेकी आवश्यकता होगी, और वह भेड़ोंकी तरह किसी भी विदेशी शत्रुको नोंचकर खा जायेंगी। लेकिन वह दूसरी ओर दृष्टि नहीं डालता, जिस वक्त भरतखण्डमें बीसियों परमभट्टारक हो जाएँगे उस वक्त यह भेड़ें अपने-अपने परमभट्टारकों-के संकेतपर भरतखण्डके भीतर ही एक-दूसरेको खाने लगेंगी, उस वक्त भरत-खण्ड सबल होगा या निर्बल ?"

कालिदास—"निस्संदेह निर्बल होगा।"

मैं—"गणोंमें ऐसी भेड़ें नहीं मिल सकतीं। यौधेय भट लड़नेमें कितने बहादुर हैं, इसकी प्रशंसा शताब्दियोंसे हमारे शत्रु करते आये हैं। लेकिन वह योद्धा ही नहीं हैं उनमें विवेक भी है। यदि मैं उनका महासेनापति और पुरस्कर्त्ता

आज उनसे भेंड़ बननेकेलिए कहूँ तो क्या वह विक्रमादित्यके सामने हथियार डालकर उसके शासनको स्वीकार कर लेंगे ?"

कालिदास—"नहीं, वह तुम्हींको खा जायेंगे।"

मैं—"मैं इसे पसंद करता हूँ। चंद्रगुप्त सारे देशको भेड़ बनानेमें सबल बननेकी आशा रखता है, मैं सारे देशको विवेकी योद्धा बनानेमें सबल होता देखता हूँ।"

कालिदास—"लेकिन मित्र! यह तभी संभव था, यदि सारे देशमें यौधेयोंकी भाँति गण ही गण होते। तुमने तो अपने सामने ही देखा मालव-गणको भी लुप्त होते।"

मैं—"तो मैं क्या यौधेयोंको भी लुप्त होनेमें सहायता करूँ? कुछ भी हो, मैं भरतखंडको भेड़ बनानेके पक्षमें नहीं हूँ, यदि प्रजा भेड़ हो गई, तो यह भूमि सदा देशी, अपने भीतरके गिद्धोंका शिकार होगी और एक-दो गिद्धके विश्वासघातसे विदेशियोंके हाथमें चली जायेगी।"

कालिदास—"तो तुम सारे भरतखंडमें यौधेयोंका एक छत्रगण देखना चाहते हो?"

मैं—"यौधेयोंका एक छत्रगण नहीं, यौधेयोंने स्वयं ऐसी एकछत्रतासे इन्कार कर दिया है। हमारे गणसंघमें कुणिन्द, यौधेय और आर्जुनायन तीन गण बराबरके साझीदार हैं। मज़बूरीके कारण नहीं सभी स्वेच्छासे संबद्ध हुए हैं। मैं भरतखंडको इसी तरह स्वतंत्र गणोंका स्वच्छंद संघ देखना चाहता हूँ।"

कालिदास—"यह स्वप्न है।"

मैं—"लेकिन उन स्वप्नोंसे कहीं अच्छा है जो हमारे आत्मवादी वियोगी देखा करते हैं। और फिर कौन कह सकता है कि जितने समयमें हम प्रथम राजपुरोहितों—विश्वामित्र, वशिष्ठ, भरद्वाज—के राज स्थापना कालसे विक्रमादित्य तक पहुँचे हैं, उतना आगे चलनेपर दुनिया यहीं रहेगी।"

कालिदास—"दुनिया तो बदलती ही रहती है।"

मैं—"तो मैं भी आशा रखता हूँ कि मेरा स्वप्न कभी सच्चा होगा।"

कालिदासको मेरे उत्तरसे निराशा हुई, किन्तु विदा होते वक्त वह यौधेयोंके प्रति स्नेह ही लेकर गये। संभव है, कालिदास अपनी प्रतिभाका अंश हमारे गणोंकेलिए इस्तेमाल करें, लेकिन मुझे डर लगता है कि कहीं कालिदासकी आशंका सच्ची न उतरे और उनकी कविताका वह भाग पीढ़ियोंके प्रभुओंकी द्वेषाग्निमें नष्ट हो जाय।

(२२)

अन्त

आगेका वृत्तांत लिखनेके पहिले लिखनेवाला नहीं रह गया, यद्यपि लिखनेको अब भी काफ़ी बाकी था; और यह काम शोकाकुल-हृदय हो आज माधवसेनको करना पड़ा—

कालिदासके जानेके बाद जयने समझ लिया कि विक्रमादित्य अब यौधेयोंपर आक्रमण करनेमें देर नहीं करेगा और अब उसने युद्धकी अन्तिम तैयारी शुरू की। शायद यदि यौधेय विक्रमकी राज-सीमाके भीतर जाकर लड़ते, और उनका युद्ध सिर्फ़ रक्षणात्मक न होकर आक्रमणात्मक भी होता, तो कौन जानता है उसका परिणाम दूसरा ही होता। यद्यपि यौधेय दूसरेकी भूमि नहीं चाहते न दूसरे लोगोंको कष्ट देना चाहते थे। उनकी रणनीति परिशुद्ध थी, वह निर्मल हथियारोंसे लड़े। जयका जबसे मुझसे उज्जयिनीमें साक्षात्कार हुआ था, तबसे हम दोनों एक साथ रहे। मृत्यु ही हमारी जोड़को फोड़नेमें समर्थ हुई। मैं भी उस दिन रोहितकीमें मौजूद था, जब कि जयने यौधेयानियोंके एक विशाल सभामें भाषण देते हुए कहा था—

"यौधेय-यौधेयानियो! तुम यौधेय माँ, बहिन और बेटियाँ, तुम्हींने इतिहास-प्रसिद्ध यौधेयोंको पैदा किया, अपना दूध पिलाया। लेकिन तुम यौधेय माता नहीं, खुद भी यौधेयानी हो। आज हमारे सामने जो संकट आया है, वैसा संकट शायद हमारे सारे इतिहासमें कभी नहीं आया था। किसी शत्रुने हमसे यह माँग नहीं की थी कि तुम यौधेय नाम छोड़ दो, यौधेय धर्म छोड़ दो। चंद्रगुप्त हमें इस शर्तपर जीने देना चाहता है कि हम यौधेय नाम छोड़ दें, यौधेय धर्म छोड़ दें। जब हमारा नाम और धर्म चला गया तो जीना किस

कामका ? हम जानते हैं कि शत्रु बहुत बलवान है, आधे भरतखंडका धनबल, जनबल उसके पास है; लेकिन यौधेयोंने राजाओंके धनबल, जनबलकी कभी पर्वाह नहीं की। हमने एक मर्तबे चंद्रगुप्तको हराया था, शायद वह उसकी स्मृतिमें नहीं रही, इसलिए फिर उसे ताज़ा करना होगा। और अबकी बार यौधेयोंकी तरह ही यौधेयानियोंको भी हथियार उठानेका पूरा अधिकार है। सुनन्दाने तुम्हारेलिए रास्ता दिखलाया। मुझे हर्ष है कि आज सुनंदाओंकी संख्या बहुत अधिक है। घर-घरमें सुनंदाएँ हैं। यौधेयानियाँ ही नहीं कुणिन्दानियों और आर्जुनायनियोंमें भी आज सुनंदाएँ पैदा हुई हैं। यौधेय नर-नारीको वीरके कर्त्तव्यपालनकी बात कहना उनका अपमान करना है।"

हमें बीस सालसे कम तैयारी करनेका मौका नहीं मिला था। गुप्तोंका संवत् ८० (३८० ई०) चल रहा था, जय पचास सालका हो रहा था जब कि उसे आखिरी बार हथियार उठाना था। अबकी बार उसे मालूम था, कि विक्रमादित्य सिर्फ़ एक जगह आक्रमण करके सीधे अग्रोदका जानेकी कोशिश नहीं करेगा। इसलिए अबकी उत्तर और पच्छिम छोड़ दो तरफ़से आक्रमण होनेका डर था। मालवोंने गुप्तोंकी दासता स्वीकारकर दक्खिनसे भी हमारे-लिए खतरा पैदा कर दिया।

युद्धका विस्तृत वर्णन करनेकी मुझमें शक्ति भी नहीं है, इच्छा भी नहीं है, क्यों, इसे पाकर आगे समझनेमें हमने अपने पूर्वी और दक्खिनी सीमापर अपने दुर्ग स्थापित किये। घोड़े और पैदल सेनापर ही मैंने ज्यादा विश्वास किया था, जब कि गुप्तोंके पास रथ और बहुत भारी संख्या हाथियोंकी थी। पहिला आक्रमण स्रुघ्न (अंबाला) सुघ्नकी ओरसे हुआ। हमने वहाँ उन्हें यमुना पार नहीं करने दिया। फिर थोड़ी-थोड़ी दूरपर वहाँसे मथुराके पास तक उन्होंने यमुना पार करनी चाही। लेकिन कहीं सफलता नहीं हुई। मथुरा तो पहिले हीसे उनके हाथमें थी यह हमारेलिए सबसे खतरनाक साबित हुई। गुप्तसेना मथुराके रास्ते यमुनाके दाहिने तटसे ऊपरकी ओर बढ़ने लगी। जय वैसे तो गण-संघकी सारी सेनाका महासेनापति था, किन्तु वह मथुरावाले मोर्चेके महत्वको समझता था उसने यहाँ गुप्तोंकी सेनाको रोका ही नहीं उन्हें पीछे ढकेल दिया। गुप्त एक महीने तक आगे बढ़नेमें

समर्थ नहीं हुए। विक्रम स्वयं मथुरामें बैठा, वहाँसे वह सारी सेनाका संचालन कर रहा था। उसने अपने सेनापतियोंको हुकुम दिया कि मृत्यु-संख्याकी ज़रा भी पर्वाह किये बिना आगे बढ़ो। मथुराके मोर्चेपर यदि शत्रुको बहुत क्षति पहुँच रही थी, तो हमारी भी हालत बेहतर नहीं थी। हमें दूसरे मोर्चे-से सेनाको हटाकर वहाँ भेजना पड़ा। पूरे ढाई महीनेके घमासान युद्धकेबाद शत्रुसेना यमुना उतरने और आर्जुनायन भूमिमें घुसनेमें सफल हुई। लेकिन यौधेय एक-एक अंगुल भूमिकेलिए मरे। जब गुप्तसेनाने दक्षिणसे आर्जुनायन और पूर्वमें यमुना पार करके मथुरावाले मोर्चेके पीछे पहुँच जानेका खतरा पैदा किया, तो जयको अपना मोर्चा पीछे हटाना पड़ा।

इन्द्रप्रस्थके पास गुप्तसेनाने यौधेयोंको सबसे ज़बर्दस्त हार दी। और उनकी सबसे ज्यादा क्षति हुई, अपने महासेनापतिको खोना। महासेनापति जयको किसी तरह भी जीते पकड़ लेनेका विक्रमादित्यने हुक्म दे रखा था, उन्होंने जीतेजी पकड़ भी लिया, लेकिन वह तभी पकड़ पाये, जब सारा शरीर क्षतविक्षत हो हमारा सेनापति रणभूमिमें गिर गया था। यौधेयोंने फिर-फिर हमला करके घायल सेनापतिको ले आना चाहा, मगर गुप्तसेनाने अपने शरीरसे एक प्रचण्ड दुर्ग बना लिया था। जयके पास जब वीरसेनने आकर प्रणाम करके अपना परिचय दिया तो वह सिर्फ़ इतना ही कह सका—"यौधेय-भूमिसे मेरे शवको ही ले जा सकते हो।" वीरसेनने अपने बड़े-बड़े चिकित्सकों-को बुलाया, मगर जय थोड़ी देर बाद चल बसा।

यद्यपि उनका महासेनापति मर चुका था, लेकिन जयने जैसा कहा था, यौधेय भट सिर्फ भेड़ें नहीं थीं, वह एक-एक नाले, नदी, जंगल, पहाड़ और गाँवों-में लड़े। स्त्रियाँ भी लड़तीं, पुरुष भी लड़ते। उनका मोर्चा, उनका युद्धक्षेत्र कोई एक मैदान नहीं था बल्कि विस्तृत यौधेय-भूमि युद्धक्षेत्र हो गई थी। विक्रमादित्यने अग्रोदका, रोहितकी खंडिला, पृथूदकों आदि यौधेय नगरोंपर अधिकार किया। वहाँ जो भी पुरुष उनके हाथमें आया उसे क़तल किया। यौधेय लड़ाके जंगलोंमें भाग गये और वह बराबर लड़ते रहे। दस साल तक तो गुप्तसेना सिर्फ़ नगरों और उनके पास-पासकी थोड़ीसी ज़मीनपर ही अधिकार कर सकी थी। सीमान्तसे नगरों तक पहुँचनेवाले मार्ग भी पूरी तौरसे उनके हाथमें

नहीं थे। हर जगह यौधेयोंके आक्रमणका भय बना रहता था। विक्रमादित्यको सारी यौधेय भूमिमें जगह-जगह सैनिक छावनियाँ बाँधनी पड़ी। लाखों यौधेय कुणिन्द आर्जुनायन नर-नारियोंने अपनी स्वतंत्रताकेलिए सर्वस्वका बलिदान किया। गुप्तसेनाने अपराधी-निरपराधका कोई भी भेद किये बिना हर यौधेयको मार डालना अपना कर्त्तव्य समझा। यौधेयोंकी सुन्दर भूमि श्मशान हो गई। रोहितकी, अग्रोदका, खंडिला, पृथूदका जैसे नगर उजाड़ हो गये। विशाल जलाशय और उनके बाँध नष्ट हो गये। कितने ही यौधेय पड़ोसी देशोंमें जानेकेलिए मज़बूर हुए। जो तलवारके धनी थे वह व्यापार करके जैसे-तैसे अपना जीवन बिता रहे हैं। अभी भी उनके दिलोंमें आशा है कि किसी दिन वे यौधेय-भूमिमें लौटेंगे।

और विक्रमादित्य-१ यौधेयोंपर विजय प्राप्त करते ही उसने अवंतिपर हमला कर दिया। मालव और वाकाटक सेनाएँ भी उसके साथमें थीं। जयने इस ख़तरेको बतलाया था, किन्तु क्षत्रप यौधेयोंके साथ मिलकर विक्रमादित्यसे लड़नेकेलिए तैयार नहीं हुआ। अब उसका कोई साथी नहीं था। चष्टन और रुद्रदामाका रक्त अब भी रुद्रसेनके नसोंमें बह रहा था। वह और उसकी सेनाने मुक़ाबिला किया। लेकिन कहाँ तक मुक़ाबिला करते। कुछ ही महीनोंमें अवंती, लाट, और सौराष्ट्रने विक्रमके सामने सर झुकाया। क्षत्रपवंश सदाकेलिए लुप्त हो गये। विजयोत्साहमें विक्रमादित्यने अपने कितने ही चाँदीके सिक्के चलाये, जो एक दीनारमें सोलह होते थे। उसपर उसने लिखवाया था—"श्रीगुप्त कुलस्य महाराजाधिराजश्रीचंद्रगुप्तविक्रमादित्यस्य।"